एक पंखड़ी की तेज़ धार

०.८६

७.२

शमशेरसिंह नरुला

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

एक पंखड़ी की तेज़ धार

लेखक की अन्य रचनाएँ

आधी रात का सूरज (कहानी-संग्रह)

हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास (भापा-विज्ञान)

एक पंखड़ी की तेज़ धार

शमशेरसिंह नरूला



राजकमल प्रकाशन

प्रकाशक :
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटिड
दिल्ली-६

मूल्य : ~~पाँच रुपये~~
प्रथम संस्करण, १९६५

मुद्रक :
श्री सत्यप्रकाश गुप्ता,
नवीन प्रेस, दिल्ली-६

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि
लोकोत्तराणां चेतांसि ...

—भवभूति

गांधीजी की हत्या की परिस्थितियों पर आधारित होने के कारण इस उपन्यास में कुछ प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तियों और उनसे सम्बद्ध घटनाओं और संस्थाओं का उल्लेख ज़रूरी था। उनके अतिरिक्त सब पात्र, घटनाएँ और संस्थाएँ कल्पित हैं। इसमें उल्लिखित किसी पात्र या घटना का किसी व्यक्ति-विशेष से कोई सम्वन्ध नहीं और न ही उन्हें औपन्यासिक रूप देते हुए कोई व्यक्ति-विशेष ध्यान में था।

इस उपन्यास में वर्णित कथावस्तु के नितान्त कल्पित होने पर भी अगर इसमें किसी व्यक्ति-विशेष का किसी प्रकार न्यूनाधिक प्रतिबिम्ब है, तो यह बिलकुल आकस्मिक और अप्रत्याशित है।

एक

रात बारह बजकर एक मिनट; चारों तरफ जहाँ तक नज़र जाती थी तिल धरने को जगह नहीं थी। भीड़ के रेले तेज़ से तेज़तर होते जा रहे थे और जनसमूह के इस बढ़ रहे प्रवाह में वह निश्चेष्ट आगे होता चला जा रहा था। पाँव सड़क पर टिक नहीं रहे थे। भरसक कोशिश पर भी वह अपने उखड़ते पाँव सँभाल नहीं पा रहा था। भीड़ के इस ठाठें मारते हुए दरिया में तिनके की भाँति बेबस वह अनमना-सा कनाट प्लेस से यहाँ बहा चला आया था।

उसकी नज़र फिर नई दिल्ली टाउन हॉल की घड़ी पर पड़ी—बारह बजकर एक मिनट। उसने दोनों बाज़ुओं को ऊपर उठाकर झँझोड़ा मानो वह ज़ंजीरों में जकड़ा हुआ कैदी हो। उसने चिल्लाने की कोशिश की—मुझे एक तरफ निकलने दो, लेकिन आवाज़ उसके कंठ से निकलने के बजाय वहाँ डाट की तरह फँस गई और वह ज़ोर-ज़ोर से खखारने लगा। उसके मुँह में बलगम आ जमा हुआ।

उसे आसमान की तरफ थूकने में बहुत लुत्फ़ आता था, खासकर जब वह नशे में धुत्त होता। थूक की फुहार उसके ऊपर आकर गिरती तो उसे शराब का नशा और चढ़ता हुआ जान पड़ता। उसे दिल्ली आए चार बरस हो चुके थे। जो कामयाबी उसने यहाँ आकर पाई थी, क्या उसकी कुंजी आसमान पर और हर चीज़ पर थूकने की

उसकी आदत ही नहीं—वह सिर नीचा करके थूकते हुए सोचने लगा।

भीड़ के रेले में वह कुछ और आगे बढ़ गया था और किनारे की तरफ सरकने की कोशिश में सड़क की बाईं ओर हो आया था, अगरचे फुटपाथ से वह अभी कुछ दूर था। एकाएक उसे सुनाई दिया—'कोहली जी नमस्ते, कोहली जी नमस्ते!' पूरी तरह चिल्लाने पर भी यह आवाज़ एक भनक की तरह उसके कान में पड़ी थी। भीड़ की नारेबाज़ी और शोरगुल पर उसने कान बन्द कर रखे थे। ये उत्साह-भरे नारे उसके मन में कड़ुवाहट पैदा कर रहे थे, इसलिए वह उन्हें सुनना नहीं चाहता था। वह उनकी तरफ ध्यान तक नहीं देना चाह रहा था। फिर भी उसका सारा शरीर, उसके लहू की एक-एक बूँद, असहनीय कड़ुवाहट से भर आई थी। उकताहट के इस वातावरण में वह घुटन-सी महसूस कर रहा था। 'कोहली जी नमस्ते' की बार-बार दोहराई जा रही आवाज़ ज़हर-बुझी बर्छी की तरह उसके सीने में चुभ उठी।

शिव शंकर कोहली को उसके परिचित अब 'ओ कोहली' या 'ओए कोहली' कहकर ही सम्बोधित करते थे। जब कभी किसी को उससे मतलब पूरा करना होता तो उसे कोहली साहब कह देता। 'कोहली जी' के शब्द उसे बहुत अखरे, इसलिए ही नहीं कि इनसे उसके कान अनभिज्ञ थे, बल्कि इसलिए भी कि 'जी' और 'नमस्ते' दोनों शब्द उसे नापसन्द थे। लेकिन 'नमस्ते' शब्द तो उस समय उसे गाली की तरह लगा। वह सब मिलनेवालों से 'आदाब अर्ज़' कहता था और सब उसे 'आदाब अर्ज़' ही कहते थे। यह 'नमस्ते' क्या बदतमीज़ी हुई! भीड़ के बहाव में आगे को बढ़ता, सड़क के किनारे की ओर सरकने की कोशिश करता हुआ वह गर्दन उचका-उचकाकर पुकारने वाले की ओर देखने लगा। डेढ़-दो गज़ के फ़ासले से जो व्यक्ति उसे पुकार रहा था उसकी तरफ उसने ग़ौर से देखा। शक्ल जानी-पहचानी थी, फिर भी वह याद न कर पाया कि वह कौन है। पूरा ज़ोर लगाकर भीड़ चीरते हुए सड़क के किनारे की तरफ लपककर उसने पुकारने वाले के बढ़े हुए हाथ को पकड़ लिया।

भीड़ के सैलाव में वह जाने से अपने-आप को वचाने के लिए उसने फुटपाथ के पेड़ के तने को दूसरे हाथ से पकड़ा हुआ था।

उसे पहचानकर कोहली आँखें फाड़े और मुँह वाए रह गया। क्या यह पाँच वक्त का नमाज़ी नियाज़ सैयदी है ? उसकी वड़ी सावधानी से तराशी हुई गोल और खूव भरी हुई रोवदार दाढ़ी सफाचट हो चुकी थी। मूँछें पहले से कुछ वड़ी थीं। कोहली दाएँ वाज़ू की मदद से दरख्त से चिपक गया और वाएँ से नियाज़ सैयदी की ठोड़ी को सहलाता हुआ चीख उठा—'मौलाना साहव, आदाव अर्ज़, यह क्या कायाकल्प हुआ है ?' दरख्त से लगकर खड़ा कोहली भीड़ के सैलाव की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा, जो असेम्वली चैम्वर की तरफ अविराम गति से वढ़ी चली जा रही थी। रात के वारह वज चुके थे और स्वतन्त्र भारत का पहला दिन पन्द्रह अगस्त शुरू हो चुका था। इस चौड़ी सड़क के एक किनारे से दूसरे किनारे तक उमड़ी हुई भीड़ के रेले पर रेले आ रहे थे। उत्साह और उल्लास में भरा हुआ जन-समूह किसी दुर्लभ प्राप्ति के आनन्द में किलकारियाँ छोड़ता और नारे लगाता आगे वढ़ा जा रहा था। हर एक की गरदन पर दूसरे की साँस पड़ रही थी, हर एक के पसीने से तर कपड़े दूसरे से चिपक रहे थे, फिर भी कोई धक्कमधक्का नहीं थी।

हिन्दुस्तान अव स्वतन्त्र था—स्वाधीन, पूर्णतया मुक्त। उसकी समस्त ज़ंजीरें कट चुकी थीं। असेम्वली चेम्वर में अव तक भारत के नेताओं के हाथों में सत्ता सौंप दी गई होगी और सेक्रेटेरियट के वड़े चौक में उन नेताओं के स्वागत के लिए ये कोटि-कोटि नर-नारी बढ़े चले जा रहे थे।

कुछ समय पहले हल्की-सी वर्षा हुई थी। हवा धीमे-धीमे वह रही थी और उसमें पसीने की गन्ध वसी हुई थी। ऊपर आसमान में तेज़ हवा वादलों के वचे-खुचे टुकड़ों को क्षितिज के पश्चिमी छोर की ओर समेट रही थी। सड़क पर खूव रोशनी थी। सामने का टाउन हॉल विजली के लट्टुओं से जगमगा रहा था। इससे आकाश का अन्धकार और भी गहरा दीख रहा था और सितारों की चमक तेज़ हो

रही थी।

कोहली भीड़ की ओर आँखें फाड़-फाड़कर ताक रहा था। जैसे-जैसे वह लोगों के बढ़ते हुए जोश और उल्लास को देखता, वैसे-वैसे उसका दिल ग़मग़ीन होता जाता, उसके मस्तिष्क पर अनिश्चितता के बादल गहरे होते जाते और उसे भविष्य और भी अन्धकारमय नज़र आने लगता। जिन साधनों से उसने गत चार वर्षों में रुपया कमाया था, मौज मारी थी और शराब के दरिया बहाए थे, आज़ाद हिन्दुस्तान में क्या इसकी गुंजाइश होगी? वह अपनी पुरानी चाल-ढाल कैसे बदलेगा! कैसे और किस ढंग से वह नये हिन्दुस्तान में जीविका कमा सकेगा! वह समझ नहीं पा रहा था कि उसे क्या हुनर आता है, उसमें क्या योग्यता है, कि अब अच्छी-बुरी तरह अपना पेट पाल सके!

दिल्ली आने के बाद इन चार वर्षों में उसने कोई काम नहीं किया था, एक तरह से हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहा था। तिस पर भी रुपया उसकी तरफ़ खिचा चला आया था। वह शायर माना जाता था। उसका तखल्लुस 'जौहर' और अदबी नाम 'जौहर चकवाली' था, इसलिए कि पश्चिमी पंजाब के ज़िला जेहलम के एक उपनगर चकवाल में वह पैदा हुआ था। हाँ उसकी शायरों में शुमार थी और उसकी सब चाल-ढाल शायराना थी, अगरचे वह एक भी गज़ल पूरी नहीं लिख पाया था। वह शेर न कह सका हो, लेकिन चुटकियों में रुपया कमा लेने और छलनी समान हथेलियों से रुपया बहाने में उसे शायराना कमाल हासिल था। उसकी इस फ़नकाराना उस्तादी पर उसके सब यार-दोस्त वाह-वाह कर उठते।

आज़ाद हिन्दुस्तान की जो तसवीर गांधीजी, पण्डित नेहरू और अन्य राष्ट्रीय नेताओं के भाषणों द्वारा उसके मस्तिष्क में उभरी थी, वह ऐसी थी कि उसका जीवन उसमें आसानी से ठीक नहीं बैठता था। उसने घिसे हुए पायदान से अपने सिर पर हाथ फेरा, ठोड़ी को खुजलाया जिसे दो दिन से उसने शेव नहीं किया था, और अपनी तीखी नाक को

सिकोड़ा जिससे यह और भी तिकोनी हो गई। जब वह चिन्तामग्न होता तो उसे नाक सिकोड़ने की आदत थी और जब चिन्ता से व्याकुल होने लगता तो वह मुँह भी सिकोड़ने लगता। तब उसका छोटा-सा मुँह कपड़े के बन्द बटुए की भाँति हो जाता।

एकाएक उसकी हथेली पतलून की पिछली जेब पर जा पहुँची जहाँ पिछले दिनों कमाये बारह सौ दस रुपये रखे हुए थे। उसे उभरी हुई जेब पर हाथ रखकर क्षण-भर के लिए तसल्ली-सी हुई, लेकिन तुरन्त ही उसका मन विक्षोभ से भर उठा। इस बार उसके हाथ में यह रकम आते चार महीने लग गए थे और जो ज़िल्लत इन चार महीनों में उसे उठानी पड़ी थी उसका ख़याल आते ही कोहली का मुँह बहुत कड़ुआ हो गया और उसका मन भविष्य के बारे में घिनौने डर से सिहर उठा। क्या आज़ादी मिलने के बाद हिन्दुस्तान में उसका वही हाल होगा जो पिछले चार महीने से हो रहा है? सड़क की भीड़ की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए वह सोचने लगा। चार महीने-भर उसने एक पैसा भी नहीं चखा था। जिस तरीके से वह रुपया हथियाता था उसे वह और उसके मित्र रुपया कमाने की बजाय रुपया चखना कहते थे। चार महीने पहले हाथ लगी रकम सदा की तरह हफ़्ते-दस दिन में ख़तम हो गई थी। डेढ़-दो महीने तो नई रकम हाथ आने की उम्मीद में ज़िन्दगी पुरानी डगर पर चलती रही। उसके कमरे में शाम को वही महफ़िल जमती, शराब के दरिया बहते जिसके लिए खास कष्ट नहीं करना पड़ता था, क्योंकि शराब का ठेका बिलकुल उसके कमरे के नीचे था।

एक-एक करके उधार देने वालों ने हाथ खींच लिया था। नीचे के ठेके से शराब, सामने के होटल से खाना और साथ के पानवाले से पान-सिगरेट आना बन्द हो चुका था। कनाट प्लेस की बढ़िया-बढ़िया दुकानों से सिली-सिलाई कमीज़-पतलून उधार आती रहती थीं, जिन्हें मैली होने पर कोई-न-कोई ले जाता। यह सिलसिला भी अब बन्द हो

चुका था। उसके कमरे में शायर-लेखकों, यार-दोस्तों, प्रशंसकों और चापलूसों का जो ताँता लगा रहता था, बन्द हो चुका था। सड़क पर मिलने पर भी उनमें से बहुत-से अब आँखें फेर लेते—कहीं उसको चाय-वाय न पिलानी पड़ जाए। कमरे में उसने भाँति-भाँति का सजावट आदि का जो सामान एकत्रित कर रखा था, उसे बेचकर वह इधर-उधर से रोटी खा लेता था। महँगी-महँगी खरीदी हुई चीज़ें कौड़ियों के भाव बेचते हुए उसे बहुत दुख होता, लेकिन एक-दो दिन से अधिक फाके करना मुश्किल था। पिछले पाँच हफ़्तों से वह यही पतलून-कमीज़ पहने हुए था। अमरीकी पॉमबीच कपड़े की पतलून और हांगकांग के बढ़िया रेशम की कमीज़ दोनों दागों और मैल के चकत्तों से भरी हुई थीं। मित्रों ने उसे शायर समझना या 'जौहर चकवाली' साहब कहना बन्द कर दिया था। अब कोई उसे बुलाना ज़रूरी समझता तो 'ओ कोहली' या 'कोहली के बच्चे' कहकर सम्बोधित करता। यह महसूस करके कि अब लोग उसे सिफर ही नहीं, बल्कि सिफर से भी कुछ कम समझने लगे हैं, वह और भी ज़िल्लत और परेशानी महसूस करता और उसका हौसला टूट जाता।

"कोहली जी, भीड़ बहुत है, लेकिन आगे तो चलियेगा," नियाज़ सैयदी की आवाज़ फिर उसके कानों में पड़ी। कोहली तनिक झुँझलाया और उसके जी में आया कि नियाज़ को तीन-चार मोटी-मोटी गालियाँ दे। परन्तु उससे ऐसा न हुआ और उसको एकटक देखते हुए, चेहरे के एक-एक पट्ठे को ढीला करके उसने मुँह बाकर उदासीनता प्रकट की।

भीड़ के बहाव की तेज़ी कम हो गई थी। कहीं-कहीं कनाट प्लेस की तरफ मुड़ते हुए लोग भी दिखाई दे रहे थे। कोहली ने लपककर नियाज़ सैयदी का दरख्त से लिपटा हुआ बाज़ू पकड़ा और उसे घसीटकर सड़क के किनारे फसील की तरफ ले गया। "नियाज़ के तुख्म, आगे जाकर क्या और भी हजामत बनवानी है ?" नियाज़ दब्बू-सा बना उसके पीछे-पीछे घिसटता रहा। सड़क के किनारे-किनारे होते हुए वे जन्तर-मन्तर की चहारदीवारी के पास आ पहुँचे। लपककर दीवार फलाँगते

हुए वे जन्तर-मन्तर के भीतर आकर खुली हवा में लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगे।

कोहली की नियाज़ से मुलाक़ात दिल्ली आने के दूसरे दिन ही हो गई थी। चार साल पहले जब वह दिल्ली आया था तो होटल में ठहरने के लिए उसके पास पैसे नहीं थे। किसी धर्मशाला में ठहरने का उसका मन न हुआ। सराय का पता पूछता-पूछता वह नई दिल्ली रेलवे स्टेशन के पास लेडी हार्डिंग सराय में आ पहुँचा था, जहाँ मुसाफ़िर केवल एक दिन के लिए चार आने देकर कमरा ले सकते थे। इतना चक्कर काटने पर केवल एक दिन के लिए कमरा मिला, यह सोचकर कोहली को दुख तो हुआ, लेकिन रात गहरी हो चुकी थी। वह थकावट से चूर था। उसने रात वहीं काटने का निश्चय किया।

अगले दिन काफ़ी धूप चढ़ आने पर उसकी आँख खुली, वह भी साथ के कमरे में क़हक़हों और शेर पढ़े जाने की आवाज़ों से। अपनी मैली बनियान पर कमीज़ पहनकर वह साथ के कमरे में गया ताकि किसी और सराय का अता-पता पूछे! चारपाई कमरे के बाहर खड़ी थी और अन्दर फ़र्श पर लगे बिस्तरों पर छः आदमी बैठे हुए थे। उनमें से पाँच ने उससे भी मैली-कुचैली बनियान और पाजामे या तहबन्द पहन रखे थे। छठे ने चिकन की सफ़ेद-सी कमीज़ पहनी हुई थी।

इससे पहले कि वह उनसे कुछ पूछ-ताछ कर पाता, लतीफ़े-पर-लतीफ़े चलते रहे, बात-बात पर शेर सुनाये जाते रहे और क़हक़हे-पर-क़हक़हा उठता रहा। एकाध क्षण के संकोच के बाद कोहली भी क़हक़हों की उस छोटी-सी दुनिया में खो गया। उसका क़हक़हा और उसकी वाह-वाह औरों से ऊँची थी, क्योंकि अनेक बार वहाँ सुने और सुनाये गए मज़ाक और शेर उसके लिए बिलकुल नये थे। क़हक़हे थमे तो परिचय का ख़याल आया। ख़ादिम को यह कहते हैं, हज़रत को यह, हज़ूर को यह, जनाब को यह। एक-एक करके उन सबके नाम उसे बताये गए—अख़्तर अम्बालवी, शमीम पानीपती, ताबिश झंझानवी, साहिर लखनवी,

मुजतर जालंधरी और नियाज़ शाहजहानपुरी। यही नियाज़ उस समय नियाज़ शाहजहानपुरी था, जिसने चिकन का कुर्ता और घुटनों तक नीले रंग का तहवन्द बाँधा हुआ था। कुर्ते में वटन नहीं थे और उसमें से अनकटी वरसाती घास-से वाल उभर रहे थे जो अच्छी तरह कटी हुई जार्ज पंचम की-सी दाढ़ी में घुल-मिल रहे थे।

कोहली ने भी स्कूल के दिनों में शायरी में टाँग अड़ाई थी और उन दिनों लिखा हुआ एक शेर—'अगर आग के पास बैठोगे जा-कर, तो उठोगे अपने कपड़े जलाकर'—उसे आज तक याद था। कुछ अर्से तक उसका तख़ल्लुस रहा था—'जौहर'। वेतकल्लुफी के उस वातावरण में झट से उसके मुँह से निकल गया—"ख़ादिम को जौहर चकवाली कहते हैं।"

इससे पहले कि वह उनसे किसी और सराय आदि के वारे में पूछ पाता, उनके सामने जो समस्या थी उसका उसे पता चल गया। वे सात आदमी उस कमरे में रहा करते थे। हर रोज़ उनमें से एक चार आने देकर कमरे को अपने नाम करवा लेता और सप्ताह के वाद उसकी वारी आती। इस तरह वे सातों वहाँ स्थायी रूप से रह रहे थे। सराय की देखरेख करने वाले को इस पर कोई आपत्ति नहीं थी। हर शनिवार वे दो रुपये ढाई आने जमा करके शाम से पहले उसे देसी शराव, 'मालटा', की वोतल लाकर दे आते थे। उनमें से सातवाँ आदमी दिल्ली छोड़कर चला गया था और सात दिन से पहले कमरा दोबारा नहीं मिल सकता था। एक साथी के कम हो जाने से वे छः-के-छः फ़िक्र में थे कि अव लगातार वहाँ कैसे रह सकेंगे।

नियाज़ शाहजहानपुरी के सुझाव पर उस मजलिस का सातवाँ रत्न वनना वह विना किसी हिचकिचाहट के मान गया था, क्योंकि उसके पास इस समय और कोई ठिकाना नहीं था। उसने सोचा था कि शीघ्र ही कोई और प्रबन्ध कर लेगा। इन मुसलमानों के साथ कितनी देर रोटी-वोटी का सम्वन्ध रह सकेगा। जल्दी ही उसे पता चल गया कि

उन छः में से दो हिन्दू थे, दोनों ब्राह्मण और उनके नाम थे पंडित नरेन्द्र नाथ शर्मा उर्फ़ अख़्तर अम्बालवी और पंडित सीताराम भारद्वाज उर्फ़ मुजतर जालंधरी। उन दोनों का रहन-सहन, खान-पान, बातचीत का रंग-ढंग ऐसा था कि कोहली को तनिक भी शक न हुआ कि ये मुसलमान नहीं हैं। वे ख़ुदा की कसमें खाते, या अल्लाह की दुहाई देते, किसी बात पर सहमति प्रकट करने के लिए वे भी अलहमदलिल्लाह और सुजान अल्लाह कहते ! सराय के सामने लेडी हार्डिंग अस्पताल को जा रही सड़क पर मुसलमानों के चार-पाँच होटल थे। उनमें से एक होटल गंजे काश-मीरी का था, जहाँ वे शाम का खाना खाते थे। सुबह के नाश्ते और दोपहर के खाने का किसी का कोई निश्चित स्थान नहीं था। झुटपुटा होते ही लोहे की मेज़ें और कुरसियाँ सराय की दीवार के साथ सरेबाज़ार लग जातीं। इस कमरे के रहने वाले ही नहीं और भी बहुत-से सहृदय और साहित्यिक रुचि के लोग वहाँ आ जमा होते। किसी-न-किसी तरह 'हुस्नज़ादी' का इन्तज़ाम कर लिया जाता। शराब को वे इसी नाम से पुकारते थे। बड़े कबाब, जो छोटे कबाबों से आधी कीमत के थे, मँगवाए जाते और 'हुस्नज़ादी' से बिस्मिल्लाह होती। हर एक को पीने को नहीं तो होंठों से लगाने को ज़रूर मिल जाती। कोहली को वहाँ आने के कुछ देर बाद सराय के पते पर आए उनके ख़तों से पता चला कि अख़्तर अम्बालवी और मुजतर जालन्धरी हिन्दू हैं।

उन सबमें नियाज़ शाहजहानपुरी की आर्थिक स्थिति कुछ ठीक जान पड़ती थी। बाकी पाँचों ऑल इण्डिया रेडियो के लिए युद्ध-सम्बन्धी विषयों पर वार्ता लिखने का काम किया करते थे। उस विभाग के सारे छोटे-बड़े अफ़सर उर्दूदाँ थे और रेडियो स्टेशन का सारा वातावरण मुस्लिम रंग में डूबा हुआ था। इसलिए वहाँ जाकर बाक़ायदा काम लेने वालों के लिए वैसा ही रंग-ढंग अपना लेना लाभदायक था। रेडियो वार्ताएँ कितनी भी मिल जाएँ आमदनी ज़्यादा नहीं होती थी, क्योंकि पारिश्रमिक की आधी से अधिक रकम वार्ता दिलवाने वाले अमले को शराब पिलाने

पर ख़र्च करनी पड़ती थी।

नियाज़ शाहजहानपुरी के जीविकोपार्जन का तरीका अनोखा था और खूब सफल भी। उसने कुछ अमरीकी फौजियों से यारी गाँठ रखी थी। अमरीकी सामान के डिपो से वे फ़ौजी चोरी का माल सस्ते दाम दे जाते और नियाज़ उसे अच्छी कीमत पर बेचकर खूब लाभ कमाता। अंग्रेज़ी टाइपराइटरों की बड़ी माँग थी और वे अमरीकी हर महीने एक-दो टाइप की मशीनें उसे ला देते थे। एक बार नियाज़ के अमरीकी दोस्त छः टाइपराइटर एक साथ ले आए। अगले दिन नियाज़ को शक हुआ कि पुलिस इस चोरी का सुराग लगा रही है। रातों-रात उसने टाइप की मशीनें जमुना में जा फेंकीं। उसके बाद वे अमरीकी फ़ौजी फिर कभी नहीं आये। नियाज़ ने कई सप्ताह इन्तज़ार किया, फिर वह रोज़ी का कोई और साधन ढूँढ़ने लगा, लेकिन सफल न हुआ। लाचार होकर उसने जमीयत-उल-उलमाए-हिन्द का काम शुरू किया। मुस्लिम लीग के ज़ोर पकड़ जाने के कारण राष्ट्रवादी मुसलमानों का बहुत महत्त्व हो गया था। जमीयत का सैक्रेटरी शाहजहानपुर का ही था। उसके द्वारा नियाज़ को मुसलमानों की उस राष्ट्रवादी संस्था के दफ़्तर में काम मिल गया और वह अपने-आपको नियाज़ शाहजहानपुरी के स्थान पर नियाज़ सैयदी कहने लगा।

जन्तर मन्तर के मैदान में वे दोनों थोड़ी देर चुपचाप खड़े रहे। आधी रात की ठण्डी खुली हवा में लम्बे-लम्बे साँस लेने से कोहली की तबीयत कुछ सँभल गई। पतलून की उभरी हुई पिछली जेब पर हाथ फेरते हुए उसका अहं जाग उठा, जो पिछले तीन-चार महीनों में सो-सा गया था। वह सोच रहा था कि नियाज़ सैयदी की मरहूम दाढ़ी पर किस तरह शोक प्रकट करे, सहानुभूति के कुछ शब्द कहे जिनमें एकाध आँसू के साथ काँटा भी हो।

एकाएक वह सोचने लगा कि इन्सान कितना लचकदार होता है और किस तरह बड़ी-से-बड़ी और तुच्छ-से-तुच्छ बात के लिए वह तैयार हो जाता है। सराय में रहने के बाद जब उसने रुपया कमाने का नया

साधन निकाला तो उसे ज़रा-सी भी ग्लानि अनुभव न हुई थी। उससे भी कम आत्मग्लानि उसे उस समय हुई जब उसे मालूम हुआ कि गोश्त के बड़े कबाब, जो वह गंजे काशमीरी के होटल पर खाता था, छोटे कबाबों से आधी कीमत पर क्यों बिकते थे।

कुछ दिन वहाँ रहने के बाद वे सब संस्कार, जिन्हें उसने माँ के दूध के साथ प्राप्त करना शुरू किया था और जिन्हें वह पुनीत और शाश्वत मानता रहा था, मज़ाक और हँसी का सामान बन गए थे। वह शायर का उपनाम ही नहीं चाहता था सचमुच का शायर बनने की भी तीव्र इच्छा रखता था, ख़ुद शेर लिखने वाला शायर। उसके हमदम और हमप्याला उसे कहते थे कि इसके लिए उसे एक भिन्न प्रकार का आदमी बनना होगा। जो औरों के लिए सनातन और ग्राह्य है उसका शायर को अनादर और तिरस्कार करना चाहिए। जो औरों को मान्य है शायर के लिए वेहूदा। उसके नाम से रेडियो वार्ता, युद्ध-सम्बन्धी नज़में और गज़लें लिखी जातीं, लेकिन दूसरे लोग ही पैसे बनाने के लिए उन्हें लिखते। बहुत कोशिश और मगज़पच्ची के बाद भी वह कुछ न लिख पाता। अगर एक पंक्ति लिख लेता तो दूसरी पंक्ति लिखकर गज़ल का शेर पूरा करने के लिए उसे एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाना पड़ता। एक शेर लिख लेने के बाद वह गज़ल का दूसरा शेर कभी लिख नहीं पाया था। जैसे-जैसे वह जौहर चकवाली के नाम से मशहूर होता गया, उसकी शायर बनने की इच्छा तीव्रतर होती गई। साथ-साथ शेर लिखना उसे और भी कठिन दिखाई देने लगा। जब कभी बड़े कबाबों की बजाय वह छोटे और मँहगे कबाब खाना चाहता तो कोई-न-कोई हुज्जत कर देता। "शायर बनना चाहते हो या गाय की दुम," दूसरा हमप्याला कह उठता, "इसे तो कभी सूजाक ही नहीं हुआ, यह शायर क्या बनेगा!" उर्दू के कुछ मशहूर शायरों के शराब में खरमस्त होने और उनके लड़की की बजाय लड़कों को पसन्द करने के चुटकुले दिल्लगी के लिए नहीं आदर्श के रूप में उसे नित्य सुनाए जाते। कोहली नियम से शराब पीने लगा था। कई

बार तो सुबह से आधी रात तक पीता और पीकर बदमस्त और बेहोश पड़ा रहता। सूजाक उसे अक्सर चिपका ही रहा और जो-कुछ वर्जित था उसने किया, तो भी वह शेर न लिख पाया। अलबत्ता सब संस्कारों के छिन्न-भिन्न हो जाने का लाभ उसे यह हुआ कि वह रुपया बटोरने के अपने तरीकों में बेझिझक हो गया था। रुपया हासिल करने के सब नाजायज़ तरीके अब उसे जायज़ लगने लगे थे।

आप-से-आप कोहली का दायाँ हाथ फिर पतलून की उभरी हुई पिछली जेब पर जा पहुँचा। इन चार वर्षों में उसने जो बड़ी-बड़ी रकमें हासिल की थीं उनकी तुलना में ये बारह सौ दस रुपये कुछ अधिक नहीं थे, लेकिन पिछले तीन-चार महीनों की खराब हालत और अपमान का ख़याल आते ही उसे यह रुपया इतना तुच्छ न लगा कि इस पर सन्तोष अनुभव न किया जाए। जिस आसानी से अब वह इस रुपये को अपना समझने लगा था क्या यह तीन-चार वर्ष पहले सम्भव था? उसे चिट्ठी मिली जिसमें वामिक देहलवी ने उसे जल्द घर आकर मिलने की दरख्वास्त की थी। रशीद अहमद वामिक देहलवी दिल्ली के पुराने डिप्टी ख़ानदान से थे। उनके ख़ानदान का यह नाम इसलिए पड़ा था कि ग़दर के बाद उसके दादा आदि को अंग्रेज़ों ने वफ़ादारी के एवज़ में दिल्ली में कुछ समय के लिए डिप्टी नियुक्त कर दिया था और बहुत-सी जायदाद भी दे दी थी। शहर में जब से साम्प्रदायिक वातावरण विषाक्त हुआ था और पंजाब तथा बंगाल से हिन्दू-मुस्लिम दंगों की खबरें आने लगीं, वे सिविल लाइन में अपनी कोठी को छोड़कर जामा मस्जिद के पास खानदानी हवेली में चले आए थे। कोहली वहाँ जाने में तनिक संकोच महसूस करता था। इसलिए नहीं कि उसे मुसलमानों के मुहल्ले में जाने से डर लगता था, वरन् इसलिए कि उसकी पतलून-कमीज़ बहुत मैली-कुचैली थी और उस घर की औरतें, जो शेर-शायरी में दखल रखती थीं, उससे परदा नहीं करती थीं।

कल दोपहर कोहली वहाँ जा ही पहुँचा, इसलिए भी कि उसने कई

दिनों से भरपेट नहीं खाया था। कोहली की खूब खातिर-तवाजह की गई। उर्दू अदव, हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे और आपसी दोस्ती के रिश्तों को ज़िन्दा किया गया। फिर कोहली को वताया गया कि उस घर के कुछ लोग कुछ दिनों के लिए लाहौर जाना चाहते हैं, लेकिन हवाई जहाज़ की सीटें नहीं मिल रही थीं। उनमें से कोई भी वार-वार सीटों का पता लगाने इतनी दूर जाने के संकट में पड़ना नहीं चाहता था। भारत-विभाजन के वाद रेलगाड़ियों की आवाजाई रुक जाने के कारण हवाई जहाज द्वारा पाकिस्तान जानेवाले मुसलमानों की संख्या वहुत वढ़ गई थी, तो भी कोहली की जान-पहचान के कुछ लोग लाहौर या कराची की सीटें हासिल करने में सफल हो गए थे। उनमें से कोहली ने एक-दो का नाम लेकर कहा कि उनके लिए सीटें उसने एकाध घण्टे में हासिल कर दी थीं और उन्हें हवाई जहाज़ पर कराची भिजवा दिया था। कोहली ने यह विश्वास तो न दिलाया कि वह उन्हें लाहौर या कराची की सीटें दिलवा देगा, लेकिन उनके पाकिस्तान जाने के लिए सीटों का इन्तज़ाम कर देने का उसने पक्का वायदा किया। शायद कुछ रिश्वत देनी पड़े, यह उसने उन्हें चेतावनी भी दे दी थी।

एक सौ दस रुपये प्रति टिकट के हिसाव से हवाई जहाज़ की ग्यारह टिकटों के लिए वारह सौ दस रुपए जो उसे दिये गए थे अव उसके अपने थे। कल तीन बजकर चालीस मिनट पर सबको झुक-झुककर आदाव अर्ज़ कहकर और वामिक देहलवी और उसके बूढ़े चचाजान से हाथ मिलाकर उसने उस घर से बाहर क़दम रखा तो उसे ज़रा-सा भी सन्देह नहीं था कि यह रकम उसकी अपनी नहीं, या उन वारह सौ दस रुपयों पर उसका पूरा हक़ नहीं।

उसने सामने टाउन हॉल की घड़ी की ओर देखा, साढ़े वारह वज चुके थे। उसे रुपया हासिल किए नौ घण्टे होने को थे और उसमें से अभी तक कुछ भी खर्च नहीं हुआ था। अक्सर वह रुपया हाथ आते ही खुले हाथों से खर्च करना शुरू कर देता। उसके लेनदारों और शायर मित्रों तक इस प्राप्ति की ख़बर किसी-न-किसी तरह तुरन्त ही पहुँच जाती

बार तो सुबह से आधी रात तक पीता और पीकर बदमस्त और बेहोश पड़ा रहता। सूजाक उसे अक्सर चिपका ही रहा और जो-कुछ वर्जित था उसने किया, तो भी वह शेर न लिख पाया। अलबत्ता सब संस्कारों के छिन्न-भिन्न हो जाने का लाभ उसे यह हुआ कि वह रुपया बटोरने के अपने तरीकों में बेझिझक हो गया था। रुपया हासिल करने के सब नाजायज़ तरीके अब उसे जायज़ लगने लगे थे।

आप-से-आप कोहली का दायाँ हाथ फिर पतलून की उभरी हुई पिछली जेब पर जा पहुँचा। इन चार वर्षों में उसने जो बड़ी-बड़ी रकमें हासिल की थीं उनकी तुलना में ये बारह सौ दस रुपये कुछ अधिक नहीं थे, लेकिन पिछले तीन-चार महीनों की खराब हालत और अपमान का खयाल आते ही उसे यह रुपया इतना तुच्छ न लगा कि इस पर सन्तोष अनुभव न किया जाए। जिस आसानी से अब वह इस रुपये को अपना समझने लगा था क्या यह तीन-चार वर्ष पहले सम्भव था? उसे चिट्ठी मिली जिसमें वामिक देहलवी ने उसे जल्द घर आकर मिलने की दरख्वास्त की थी। रशीद अहमद वामिक देहलवी दिल्ली के पुराने डिप्टी खानदान से थे। उनके खानदान का यह नाम इसलिए पड़ा था कि ग़दर के बाद उसके दादा आदि को अंग्रेज़ों ने वफ़ादारी के एवज़ में दिल्ली में कुछ समय के लिए डिप्टी नियुक्त कर दिया था और बहुत-सी जायदाद भी दे दी थी। शहर में जब से साम्प्रदायिक वातावरण विषाक्त हुआ था और पंजाब तथा बंगाल से हिन्दू-मुस्लिम दंगों की खबरें आने लगीं, वे सिविल लाइन में अपनी कोठी को छोड़कर जामा मस्जिद के पास खानदानी हवेली में चले आए थे। कोहली वहाँ जाने में तनिक संकोच महसूस करता था। इसलिए नहीं कि उसे मुसलमानों के मुहल्ले में जाने से डर लगता था, वरन् इसलिए कि उसकी पतलून-कमीज़ बहुत मैली-कुचैली थी और उस घर की औरतें, जो शेर-शायरी में दखल रखती थीं, उससे परदा नहीं करती थीं।

कल दोपहर कोहली वहाँ जा ही पहुँचा, इसलिए भी कि उसने कई

दिनों से भरपेट नहीं खाया था। कोहली की खूब खातिर-तवाजह की गई। उर्दू अदब, हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे और आपसी दोस्ती के रिश्तों को ज़िन्दा किया गया। फिर कोहली को बताया गया कि उस घर के कुछ लोग कुछ दिनों के लिए लाहौर जाना चाहते हैं, लेकिन हवाई जहाज़ की सीटें नहीं मिल रही थीं। उनमें से कोई भी बार-बार सीटों का पता लगाने इतनी दूर जाने के संकट में पड़ना नहीं चाहता था। भारत-विभाजन के बाद रेलगाड़ियों की आवाजाई रुक जाने के कारण हवाई जहाज़ द्वारा पाकिस्तान जानेवाले मुसलमानों की संख्या बहुत बढ़ गई थी, तो भी कोहली की जान-पहचान के कुछ लोग लाहौर या कराची की सीटें हासिल करने में सफल हो गए थे। उनमें से कोहली ने एक-दो का नाम लेकर कहा कि उनके लिए सीटें उसने एकाध घण्टे में हासिल कर दी थीं और उन्हें हवाई जहाज़ पर कराची भिजवा दिया था। कोहली ने यह विश्वास तो न दिलाया कि वह उन्हें लाहौर या कराची की सीटें दिलवा देगा, लेकिन उनके पाकिस्तान जाने के लिए सीटों का इन्तज़ाम कर देने का उसने पक्का वायदा किया। शायद कुछ रिश्वत देनी पड़े, यह उसने उन्हें चेतावनी भी दे दी थी।

एक सौ दस रुपये प्रति टिकट के हिसाब से हवाई जहाज़ की ग्यारह टिकटों के लिए बारह सौ दस रुपए जो उसे दिये गए थे अब उसके अपने थे। कल तीन बजकर चालीस मिनट पर सबको झुक-झुककर आदाब अर्ज़ कहकर और वामिक देहलवी और उसके बूढ़े चचाजान से हाथ मिलाकर उसने उस घर से बाहर क़दम रखा तो उसे ज़रा-सा भी सन्देह नहीं था कि यह रकम उसकी अपनी नहीं, या उन बारह सौ दस रुपयों पर उसका पूरा हक़ नहीं।

उसने सामने टाउन हॉल की घड़ी की ओर देखा, साढ़े बारह बज चुके थे। उसे रुपया हासिल किए नौ घण्टे होने को थे और उसमें से अभी तक कुछ भी खर्च नहीं हुआ था। अक्सर वह रुपया हाथ आते ही खुले हाथों से खर्च करना शुरू कर देता। उसके लेनदारों और शायर मित्रों तक इस प्राप्ति की खबर किसी-न-किसी तरह तुरन्त ही पहुँच जाती

और वे पानी की तरह रुपए बहाने में उसकी मदद करने लग जाते।

इस बार उसने खर्च चलाने के लिए वेची गई ज़रूरी चीज़ें, घड़ी आदि, अभी तक नहीं खरीदी थीं और न ही इन मैले-भद्दे कपड़ों के फेंक देने का इरादा किया था। स्वतन्त्रता-समारोह के सिलसिले में सब बड़ी-बड़ी दुकानें और शरावखाने वन्द थे। यार लोगों ने उसके कमरे में आना छोड़ दिया था। शहर में साम्प्रदायिक खिंचाव के कारण वे अड्डे सूने पड़े थे जहाँ कोहली हमजिन्सों और हमप्यालों से खुद मिल पाता।

जन्तर मन्तर की खुली हवा में लम्बे-लम्बे साँस लेते हुए वह नियाज़ सैयदी की ओर एकटक देख रहा था। नियाज़ के लिए सहानुभूति से उसका दिल भर आया था—इसलिए भी कि नियाज़ उसके अतीत से टूट रहे रिश्ते को जोड़नेवाली एक कड़ी के समान था। कोहली बहुत थका-माँदा और शिथिल-सा था। हज़ारों-लाखों लोगों के चेहरों पर खुशी की एक-सी चमक देखकर, उन्हें एक तरफ ही बढ़ते हुए पाकर, उनकी एक-सी आवाज़ें और नारे सुन-सुनकर, उनके हाथों में एक-से झंडे-झंडियाँ देखकर कोहली की आँखें पथरा गई थीं और मस्तिष्क शिथिल हो गया था। उसके लिए उस समय नियाज़ सैयदी का तिनके के सहारे से कहीं अधिक महत्त्व था। 'जी' और 'नमस्ते' के शब्दों ने उसके दिल में जो खिन्नता उत्पन्न की थी इस समय तक जाती रही थी। वह ज़ोर से आँखें मूँदे, गरदन झुकाए इस दुविधा में था कि भविष्य की सोचे या अतीत की ओर ध्यान दे। भविष्य डरावना, अनिश्चित और अपरिचित था। अतीत में शहद-सा मिठास लिये कुछ क्षण तो थे; और उस समय वह उनमें खो जाना चाहता था।

कोहली ने नियाज़ के बाज़ू में बाज़ू डाला और जन्तर-मन्तर के फाटक की ओर लम्बे-लम्बे डग भरने लगा। लोहे के बन्द फाटक को फलाँगकर वे कनाट प्लेस की ओर बढ़ने लगे और रीगल के पास डैवीको फ्लैट्स के पीछे के गराजों के पास पहुँचकर उन्होंने दम लिया। डैवीको होटल का एक बैरा वक्त-वेवक्त चोरी-छिपे शराव बेचा करता था।

कोहली ने उसे ढूँढ़ा और शराब की बोतल ख़रीदी। फिर नियाज़ के हाथ को पूरी ताकत से थामे, वह गोल मार्किट के ऊपर अपने कमरे की तरफ़ बहुत तेज़ी से क़दम बढ़ाने लगा, मानो वह इस दुनिया से भागकर किसी और दुनिया में शरण लेना चाह रहा हो। उसे अनुभव हो रहा था कि यह देश ऐसे लोगों से भरा हुआ है जो नितान्त अनावश्यक हैं—अपने-आप तक के लिए अनावश्यक, और इन अनावश्यक लोगों की इस धमा-चौकड़ी में वह सबसे अधिक अनावश्यक है जिसे कोई जानता-पहचानता नहीं, जो सबके लिए अजनबी है।

हवा रुक गई थी। हॉकी ग्राउण्ड के पीछे की सड़क पर से होते हुए वे जैन मन्दिर के पास पहुँचे जहाँ बिजली की रोशनी नहीं थी। यहाँ अँधेरा और भी गहरा मालूम हुआ। उसका दम इस नरकीय अँधेरे से घुटने लगा। उसे महसूस हो रहा था कि सुबह की गुलाबी रोशनी में चार-पाँच घण्टे ही नहीं, चार-पाँच सदियाँ हैं और उसका कमरा, जहाँ उसे शरण मिल सकती है वहाँ से कुछ सौ गज़ की दूरी पर नहीं, हज़ारों मील दूर है और वह बहुत ख़ुशक़िस्मती से ही वहाँ पहुँच सकेगा। उसके दिल में आया कि सारे संसार को और समस्त सृष्टि को बर्फ़ की तरह जम जाना चाहिए। क्या ही अच्छा हो, अगर एक जमे हुए दरिया की तरह ज़िन्दगी का बहाव रुक जाए, थोड़े-से समय के लिए ही सही, ताकि इंसान को ठंडे दिल से अपने बारे में सोचने का अवसर प्राप्त हो सके।

दो

आकाश मेघाच्छादित था। आधी रात का अन्धकार वहाँ और भी गहन हो रहा था। तीसहज़ारी के मैदान में वज्रपात से जले-झुलसे एक बड़े-से दरख़्त के पास वे सब खड़े थे। उसी वृक्ष की एक सूखी डाल के साथ बाँस बाँधकर तिरंगा झण्डा फहरा दिया गया था। मैदान के चारों ओर झोंपड़ियाँ बनाने के लिए किये गए मन्द प्रकाश में उस राष्ट्रीय झण्डे की फड़फड़ाहट से लगता था मानो बहुत बड़ा पक्षी फन्दा तोड़कर पर तोलने लगा हो।

कैम्प में नई झोंपड़ियाँ बनने की ठक-ठक, वहाँ एकत्रित कुछ सौ शरणार्थियों के नारों और जयकारों में गुम हो गई और पन्द्रह अगस्त की पहली घड़ी शुरू होने पर वे क़ौमी तराना गाकर वहाँ से विसर्जित होने लगे। इस मैदान के चारों ओर लम्बी-लम्बी कतारों में झोंपड़ियाँ तैयार की जा रही थीं। अभी ये पूरी तरह बन भी न पातीं कि पाकिस्तान से आये उजड़े हुए लोग उनमें आ बसते। पश्चिमी पाकिस्तान के शहरों, कसबों और ग्रामों, माझे, नीली बार, नहरी आबादियों और उसके परे के काले पंजाब से ये लोग उसी दिन या उससे एक-दो दिन पहले यहाँ आये थे। उनमें कुछ पठान, बलोची, छाछी और सिन्धी भी थे। इन सबका मेल-मेल का रंग-ढंग और भाँति-भाँति की बोलियाँ थीं। इन सब भिन्नताओं के रहते हुए उनमें अब निकटता और ऐक्य की भावना आ

गई थी और समस्त भेद-भाव जाते रहे थे। ऐसे लगता था कि पाकिस्तान बनने के बाद जो भयानक आँधी चली थी उसमें जगह-जगह से करोड़ों बीज यहाँ गिरे हैं और भूमि पर पड़ते ही फूटने और कलियाने लगे हैं।

बिलकुल उजड़ जाने पर भी वहाँ एकत्रित इन शरणार्थियों को काले बादलों से घिरी वह रात सुहावनी लग रही थी। उस रात उनकी ही स्वतन्त्रता-प्राप्ति की इच्छा पूरी हुई थी और आशाओं के फूल महक उठे थे। सब लोगों के भीतर एक उत्साह जाग रहा था। वे गाना चाहते थे, नारे-पर-नारे और जयकारों-पर-जयकारे लगाना चाहते थे। वे इस नगर में कुछ घंटे या एक-दो दिन पहले ही आये थे। उनके पास अपना कुछ नहीं बचा था, सब-कुछ पाकिस्तान में लुट गया था। उनका यहाँ अपना कोई नहीं था, किसी से उनकी जान-पहचान नहीं थी। ज़िन्दगी में जो भी प्रिय और निकटतम होता है उनसे छिन गया था। उनकी जड़ें कट चुकी थीं। वे निर्धन और निराश्रय थे। अतीत से उनके सब सम्बन्ध टूट चुके थे। जिस वातावरण में वे जन्मे और फूले-फले थे, उससे उनके सब रिश्ते टूट चुके थे, जैसे अब उनके लिए अतीत का अस्तित्व ही न हो। उनका वर्तमान अनिश्चित और डरावना था। अपने परिवार और देश-जाति के भविष्य के प्रति आशा की एक किरण उन्हें इतनी दूर ले आई थी और उसी ने उन्हें इस उत्साह के साथ यहाँ एकत्रित कर दिया था।

झण्डा फहराए जाने के बाद चाननमल वहाँ से तीसहज़ारी के तिराहे की ओर मुड़ा। रेलवे-पुल की टीन की चादरों की ओट में अपनी बहन और उसके बच्चों के सिर छिपाने के लिए उसने वहाँ छोटी-सी झोंपड़ी बना ली थी। तीसहज़ारी मैदान में तैयार की जा रही झोंपड़ियों के एक तरफ चटाइयाँ, तख्ते, टाट और टीन के बड़े-बड़े टुकड़े पड़े हुए थे, जिन्हें लेकर शरणार्थी सिर ढकने के लिए अस्थायी प्रबन्ध कर रहे थे। उस शाम चाननमल ने भी तीसहज़ारी चौक के फुटपाथ पर दो झुग्गियों के बीच अपना घरौंदा बना लिया था। उस कैम्प के पास

उसने रहना उचित समझा, ताकि वह आसानी से कैम्प में पक्की झोंपड़ी हासिल कर सके।

टाट के परदे के पास बैठी उसकी बहन लालकौर उसका इन्तज़ार कर रही थी। वह झुकता हुआ उस बड़े-से डिब्बे के अन्दर दाखिल हुआ और लोहे के टट्टर से टेक लगाकर बैठ गया। झोंपड़ियाँ बनने की ठक-ठक से कान लगाए वह सोच रहा था कि अगर इन झोंपड़ियों में से उसे एक न मिली तो इस डेढ़ गज़ के फुटपाथ पर कितने दिन निभ सकेंगे। इन बाल-बच्चों के सिर छिपाने का कोई-न-कोई प्रबन्ध करना ही होगा। चार-पाँच घण्टों में ही इस झुग्गी में दरारें और छेद पैदा हो गए थे।

एक छेद में से उसकी बहन की लड़की चानों बाहर झाँक रही थी। उसकी बहन परदे के पास बैठी छोटी बेटी बचनी को गोद में लिये ऊँघ रही थी और मुँह-ही-मुँह में गुरबानी का पाठ करती जा रही थी। कभी-कभी वह पास लेटे हुए बेटे बूटे को थपथपाने और लोरियाँ देने लग जाती, ताकि तिराहे के कोलाहल से उसकी कच्ची नींद उचट न जाए। चाननमल की बहन उससे पाँच-छः वर्ष बड़ी थी। पहाड़-जैसी मुसीबतों से हफ्ते-भर में ही उसका यौवन बुझ-सा गया था, आँखों की मुस्कान जाती रही थी और निखरा हुआ भरपूर चेहरा पिचक गया था। उसकी बाँहें खपच्चियों-सी हो गई थीं और खनक-भरी आवाज़ में बोलने के बजाय वह मिमियाने लगी थी।

अनमने विचारों से ऊबकर चाननमल गरदन पर हाथ फेरने लगा। हफ्ते में ही उसकी सुडौल गरदन की नसें उभर आई थीं और टेंटुआ निकल आया था। तीन दिन से उसने हजामत नहीं बनाई थी। उसके बाल, जो रेशम की तरह मुलायम थे, अब पटसन-से खुरदरे हो रहे थे। अब उसकी ज़िन्दगी में ज़रा-सी भी तरलता और कोमलता नहीं रही थी। सब-कुछ कठोर हो उठा था। पाकिस्तान बनने के बाद उस शाम पहली बार उसकी नज़र शीशे पर पड़ी थी। उसे विश्वास नहीं हुआ था कि वह अपने-आपको देख रहा है।

लालकौर बच्चों को अगल-बगल लिये कोने में लेट गई थी और चाननमल परदे के पास आ बैठा था। वह टाट के परदे में से झाँकता हुआ तीसहज़ारी के तिराहे और उसके परे सब्ज़ीमण्डी को जा रही सड़क को देखता रहा। धूमिल वातावरण की अस्पष्टता में बिजली के लट्टू किसी दैत्य के डरावने डैनों की भाँति लग रहे थे। रात भीग जाने पर भी राहगीरों और ताँगों-छकड़ों का आना-जाना जारी था। कभी-कभी सब्ज़ीमण्डी को माल ढो रही बसों की रोशनी में राहगीरों के चेहरे स्पष्ट हो जाते और फिर चलते-फिरते साए बन जाते।

इस तिराहे पर और इससे जुड़ी हुई तीनों सड़कों पर कितना भीड़-भड़क्का और रेल-पेल रहती है! अनगिनत लोगों का यहाँ किस प्रकार ताँता लगा रहता है! क्या इस विशाल नगर की गोद में उस परिवार के लिए कोई स्थान है? क्या वह कभी इस सीमाहीन शहर का ओर-छोर पा सकेगा? इसमें कोई कोना इस परिवार को आश्रय देने के लिए ढूँढ़ सकेगा? वह पिछली शाम शहर में इधर-उधर घूमता रहा था, लेकिन कोई भी जगह उसे ऐसी नज़र नहीं आई थी जहाँ इस गृहस्थी के साथ वह शरण ले सके।

पहले से भी अधिक लगन से वह किसी धन्धे में जुट जाना चाहता था, लेकिन उसे बिलकुल समझ नहीं आ रहा था कि इस अपरिचित नगर में क्या करे और कोई काम कैसे ढूँढ़े। उसे बिलकुल सूझ नहीं रहा था कि इन बाल-बच्चों के प्रति अपने दायित्व का कैसे पालन करे।

अचानक वह अपने गाँव की मीठी स्मृति में खो गया। गाँव की याद उसे इस तरह व्याकुल करने लगी मानो देर से बिछुड़ी हुई माँ के लिए वह तड़प रहा हो। गाँव की याद ने उसके सामने हरे-भरे फूलते-फलते जीवन को मूर्तिमान कर दिया—विशाल वृक्ष-सा जीवन, जिसकी जड़ें पाताल तक गई हुई थीं। क्या इस धरती में उसका जीवन फिर जड़ पकड़ सकेगा? क्या यह जड़हीन परिवार फिर हरा-भरा हो सकेगा, फिर लहलहाता पेड़ बन सकेगा?

उसके गाँव में ग़रीब लोग भी थे—बहुत ग़रीब लोग, लेकिन वे इतने बेबस और बेसहारा नहीं हुआ करते थे जितना कि वह अब अपने-आपको महसूस कर रहा था। गाँव में दीन-से-दीन और दरिद्र-से-दरिद्र के लिए भी जगह होती थी जहाँ वह शरण ले सकता था। लेकिन उसके लिए तो अब कोई सहारा नहीं था—एक भी आदमी नहीं था जिसको वह इस बड़े नगर में जानता-पहचानता हो।

गाँव के छोटे-से दोमंज़िले मकान, जिसमें वह रहा करता था, की याद ताज़ा हो गई। उसका अंग-अंग उस छोटे-से घर की निकटता महसूस करने लगा। चाननमल के हाथ-पाँव फ़र्श और दीवारों के उखड़े हुए पलस्तर और उतरी हुई खपच्चियों को पहले की तरह महसूस करने लगे। कोठे पर मोटी मुण्डेर और छत की असमतलता, चौबारे की खिड़कियों में लगे हुए बाँस के एक-एक टुकड़े का टेढ़ापन, आँगन और ड्योढ़ी की एक-एक विशेषता, तेईस सीढ़ियों की एक-एक भिन्नता, दाएँ-बाएँ पाँवों में उनका भिन्न-भिन्न स्पर्श उसके दिमाग में उभरकर आ रहा था।

चानों परदे के पास से हटकर माँ के पास लेटे-लेटे ही सो गई थी। लालकौर इन तीनों बच्चों की साँसों की आवाज़ों में खो गई। वह साँसों से ही इन्हें पहचान सकती थी। चानों की साँस भारी थी। गहरी-गहरी साँसें और सात-आठ साँसों के बाद भिचे हुए होंठों में से 'फ़ेंह' की आवाज़। बचनी की एक साँस भारी होती, एक हलकी और यह क्रम सारी रात यन्त्रवत् जारी रहता। बूटा सन्ध्या होते ही दूध पीकर सो जाता और साँस के साथ उसके कण्ठ में से गर-गर की आवाज़ निकलती रहती। आँख लगते ही उसके नथुने बन्द हो जाते। लालकौर के मन में पति की साँस एकाएक सजीव हो उठी और उसकी नस-नस धड़कने लगी। उसके पति की साँस प्राय: ज़ोरदार होती थी जो नाक की हड्डी के पास क्षण-भर के लिए रुककर नथने फुलाते हुए एकदम बाहर निकल जाती। लेकिन जब उसका पति कारखाने से थका-माँदा आता तो नींद में उसकी तीन साँसें हलकी और छोटी, एक भारी और लम्बी

होती। थकावट के कारण लगातार करवट वदलने पर भी यह क्रम न टूटता। केवल रात को तीसरे पहर जब उसका एक नथुना वन्द होने और दूसरा खुलने लगता तो आधी-चौथाई घड़ी के लिए उसकी साँसें हल्की-हल्की वेढंगी सीटियाँ वन जातीं।

पल-पल झपकी लेती हुई लालकौर पति के शोक और इन वच्चों की चिन्ता में रात-भर तड़पती रहती। उसे निःशब्द रोने की आदत पड़ गई थी। चुप-चुप रोने और विलखने से आँसू और आहें उसकी हड्डी-हड्डी को चटखा देतीं। उसकी आँखें छलछला रही थीं, उसके खून की एक-एक वूंद और आत्मा का एक-एक अणु पुकार रहा था—क्या इसी फुटपाथ पर अव उसके वच्चे पिल्लों की तरह परवरिश पायेंगे ? क्या यहीं उसकी लाडली चानों डोली चढ़ेगी ? क्या उसकी लाज इस सपाट सड़क पर सुरक्षित रह सकेगी ?

पिछले कुछ दिनों के भूचालों से लालकौर की दुनिया ही वदल गई थी। उसके वच्चे तक और-से-और हो गए थे। उन तीनों वच्चों में परिवर्तन एक-सा नहीं हुआ था। चानों ने अपने को वहुत गम्भीर मुद्रा में छिपा लिया था। वातें वह पहले से अधिक करने लगी थी, लेकिन उनमें मतलव कम होता और यह साफ़ लगता कि वह माँ और मामू का सहारा वनने और उन्हें ढाढस देने की कोशिश कर रही है। वात-वात में और वोल-वोल के साथ वह 'जी' का शब्द जोड़ने लगी थी। उसकी आँखें रूखी-रूखी और खोई-खोई-सी थीं, जिससे लगता था कि यह गम्भीर चेहरा उसका असली चेहरा नहीं।

वूटा हर समय हँसता रहता था। पहले वह पिता को चाचा और माता को 'चाई' पुकारता हुआ कभी न थकता था, लेकिन अव वह वेहद चिड़चिड़ा हो गया था और हर समय रीं-रीं करता हुआ 'चाचा कित्थे', 'चाचा कित्थे' की दुहाई देता रहता था। वचनी, जो हर समय घर से वाहर भाग जाने के लिए उत्सुक रहा करती थी, अव माँ की ओढ़नी में छिपी रहती थी। यदि उसे चादर से वाहर निकालकर कोई गोद में उठा

लेता तो वह अपना मुँह माँ की छाती में छिपा लेती।

लालकौर को विधवा हुए यह तीसरा दिन था। उसका पति जगतसिंह पाकिस्तान में नहीं, हिन्दुस्तान में मारा गया था। उसकी दाह-क्रिया तो वह क्या कर पाती? वह तो उसके मृतक शरीर के दर्शन भी न कर पाई थी। वे लाहौर में मुगलपुरा वर्कशाप के पास रहते थे। आख़िरी वक्त तक वहाँ शान्ति रही थी। सारे लाहौर शहर में दहकती हुई साम्प्रदायिक आग मज़दूरों की एकता के कारण वहाँ न फैल पाई थी। चाननमल भी गाँव से बहनोई के पास आ गया था। रैडक्लिफ़ अवार्ड के बाद जब हिन्दू-सिक्ख पाकिस्तान से हिन्दुस्तान आने लगे तो मुगलपुरा वर्कशाप के मुसलमान मज़दूर स्वयं हिन्दू-सिक्ख मज़दूरों को अटारी के पास सीमा तक सुरक्षित छोड़ गए।

जब वे अमृतसर पहुँचे तो मुसलमानों की आबादी वाले शहर के बाहरी इलाकों से आग की लपटें उठ रही थीं। शहर में हथगोले और दस्ती बम मुफ्त बाँटे जा रहे थे और बम फटने की आवाज़ों से कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं दे रही थी। पाकिस्तान जानेवाली गाड़ियों के अमृतसर पहुँचने के कई घण्टे पहले शहर में डोंडी पिट जाती कि मुसलमानों की गाड़ी फलाँ वक्त आ रही है और शहर के बाहर फलाँ जगह रोक दी जाएगी। समय से पहले ही सशस्त्र लोगों के जत्थे-के-जत्थे वहाँ जमा होने लग जाते। गाड़ी रोकी जाने के कुछ समय बाद लहू की गन्ध बहुत बड़ी चादर की तरह शहर पर तन जाती। पाकिस्तान से आ रही गाड़ियाँ भी खाली होतीं, कभी उनमें केवल मर्द-ही-मर्द होते, कभी वस्त्राभूषण के बग़ैर औरतें और हाथ-पाँव-कटे बच्चे। इससे शहर में क्रोध की ज्वाला भड़क उठती। डोंडी और भी ज़ोर से पिटती और पाकिस्तान जा रही गाड़ियों का नेजे और कृपाणों के साथ स्वागत करने वालों की संख्या पहले से अधिक हो जाती।

वे पुतलीघर की मज़दूर बस्ती में आकर ठहरे थे जहाँ हिन्दू-सिक्ख मज़दूर, मुसलमान मज़दूरों की सुरक्षा की पूरी कोशिश कर रहे थे।

उस शाम हज़ारों हिन्दू और सिक्खों ने बन्दूकों और स्टेन-गनों से लैस होकर उस बस्ती पर हमला किया और हिन्दू-सिक्ख मज़दूरों ने मुसलमानों की रक्षा के लिए मोरचे बना लिए। चाननमल के बहनोई ने उन्हें अन्य औरतों और बच्चों के साथ बस्ती से बाहर सुरक्षित स्थान पर भेज दिया और आप मुसलमानों की रक्षा करने वालों में जा शामिल हुआ। सारी रात वहाँ घमासान लड़ाई होती रही, सुबह तक सारी बस्ती जलकर राख हो गई थी। वहाँ से किसी को भी बचकर निकलने नहीं दिया गया था। वहाँ पड़ी लाशें इतनी बुरी तरह जल चुकी थीं कि पहचानना मुश्किल था। अगले दिन पुलिस ने उस इलाके की नाकाबन्दी कर दी और उधर किसीको भी जाने न दिया। आखिरकार चाननमल ने अमृतसर छोड़ देने का निश्चय किया। बहन और उसके बाल-बच्चों के साथ जिस गाड़ी में वह सवार हुआ वह दिल्ली स्टेशन पर आकर ही रुकी। वहाँ से फ़ौजी लारियों में ढोकर तीसहज़ारी के पास उन्हें ला उतारा गया था।

उस सड़क पर रहने के शुरू के घण्टों में चाननमल का सिर पालने की तरह घूमने लगा था। उसे ऐसे महसूस होने लगा था कि सारी दुनिया लट्टू की तरह चक्कर खाने लगी है। लेकिन कुछ दिनों बाद ही उसके कान इस तिराहे के शोरगुल और इस पुल के नीचे की रेलगाड़ियों और ऊपर की ट्रामों की घड़-घड़ के अभ्यस्त हो गए थे। इसी तरह उसके सीने में लगे घावों की पीड़ा का कम होते जाना भी अवश्यम्भावी था, लेकिन ये घाव अभी बहुत ताज़ा थे और इनकी टीस से वह रह-रहकर तड़प उठता था।

तीसरे पहर रात एकदम गहरी हो गई। चारों तरफ़ ताज़ापन और ठण्डक छा गई। चाननमल सरसराहट-सी महसूस करता हुआ उठ बैठा। सख्त ज़मीन पर लेटे-लेटे उसका दायाँ पाँव सो गया था और वह पूरी तरह सचेत होने की कोशिश कर ही रहा था कि उसे लगा आसपास की झुग्गियों में से लोग सामान बटोरकर तीसहज़ारी के मैदान की तरफ़

जा रहे हैं। इतने में उसकी बहन भी जाग गई। वे भी अपना सामान उठा, बच्चों को जगा, तीसहज़ारी के मैदान में जा पहुँचे और एक झोंपड़ी पर, जिसकी छत अभी अधूरी थी, कब्ज़ा जमा लिया।

अगले दिन तीसहज़ारी के मैदान के चारों तरफ़ झोंपड़ियों की तीन-तीन कतारें बन चुकी थीं, उनमें शरणार्थी आ बसे थे और बहुतों में कई-कई परिवार एक साथ रहने लगे थे।

झोंपड़ियों, झुग्गियों, टैंटों और खैमों के बाहर सड़कों के किनारे या घास से भरे मैदान में शरणार्थी जमघटा लगाए अपनी आपबीती कभी इसे, कभी उसे, नहीं तो घर में आपस में ही एक-दूसरे को बार-बार सुनाये जाते। मिल बैठते ही उनकी यादों का दफ्तर खुल जाता। सुबह आँखें खुलते ही अतीत और वर्तमान की चर्चा आरम्भ हो जाती। दिन के साये छोटे होने और फिर फैलने लगते। सन्ध्या होती, रात भीग जाती, रात को सितारे एक कोने से दूसरे कोने में चले जाते, लेकिन उनकी ये रामकहानियाँ समाप्त न होतीं। कई अतीत के प्रसंग में वर्तमान को भूल जाना चाहते और कई वर्तमान के दुख में भविष्य से आँखें चुराना चाहते। घरों में या बाहर बैठे, सड़कों पर चलते, काम-धन्धे की खोज में भटकते, उनका मन इन्हीं विचारों की मक्खियों का छत्ता बना रहता। आज़ादी की सुनहली कल्पना भी भविष्य के प्रति उनके भय को कम नहीं कर पा रही थी।

कभी उनमें से कोई अपनी बात सुनाता-सुनाता ठण्डी आहें भरने लगता, किसी की आँखें डबडबाने या छलछलाने लग जातीं, कोई सिसकने या फूट-फूटकर रोने लगता, किसी की हिचकियाँ बँध जातीं। फिर कोई और नई कहानी शुरू हो जाती। बीच-बीच में कोई लम्बी साँस लेता हुआ कह उठता, 'हे ईश्वर हमने क्या इतने पाप किये थे!' कोई आपसे-आप बुड़बुड़ाने लग जाता, 'हे राम तेरी करनी!' और कोई अपने पर हुए अत्याचारों को भूल जाने के लिए उत्तरी पंजाब में हो रही घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर सुनाने लगता। किसी की आँखें बीते हुए अच्छे दिनों की याद में चमक उठतीं। कोई बैठा-बैठा कह उठता,

"ओ-ए ज़माने ! राजे-महाराजे तो बदलते रहे हैं, लेकिन यह आज़ादी क्या मिली, प्रजा ही बदल दी गई, गाँव-के-गाँव गाजर-मूली की तरह उखाड़-कर इधर-उधर फेंक दिये गए !"

जो कुछ होता है ईश्वर की इच्छा से होता है और जो ईश्वर करता है मनुष्य के भले के लिए करता है। शरणार्थियों में शायद ही कोई ऐसा था जो पाकिस्तान से जान बचाकर निकल आने पर परमात्मा का धन्यवाद नहीं कर रहा था। दूसरी भावना, जो उनके रोम-रोम में बस रही थी, वह मुसलमानों और पाकिस्तान के प्रति घृणा थी। चाननमल देखता कि पीछे छोड़े हुए गाँवों और कस्बों की याद उन्हें रह-रहकर सता रही है। जिस मिट्टी में वे पैदा हुए थे, जहाँ के दाने-पानी से वे पले थे, उसकी याद से वे तड़प-तड़प उठते। पाकिस्तान में बिछुड़े हुए मित्रों और पड़ोसियों का उनको रह-रहकर खयाल आता, लेकिन वे उन्हें और ही बातों में भूल जाने की कोशिश करते। पाकिस्तान और मुसलमानों के प्रति नफ़रत से ही वे इस तड़प पर काबू पा सकते थे।

अगर मुहब्बत अन्धी है तो नफ़रत की हज़ार आँखें होती हैं। नफ़रत की इन हज़ार आँखों से वे बीती घटनाओं को और ही रूप में देख रहे थे। चाननमल ने देखा कि जो उन पर गुज़री, वे उसकी ही नहीं चर्चा कर रहे बल्कि वे यह भी सोच रहे थे कि उन पर क्या बीतती अगर वे पाकिस्तान न छोड़ते। ईश्वर के प्रति कृतज्ञता की भावना उनमें उमड़-उमड़ पड़ती। चाननमल ने देखा कि मुसलमानों के प्रति घृणा की भावना जितनी अधिक थी उसी मात्रा में ईश्वर के प्रति आस्था थी।

फिर चाननमल ने देखा कि यह आस्था और घृणा मन पर ओढ़े हुए वस्त्र-मात्र है, ठीक उसी तरह जैसे उन्होंने शरीर ढाँपने के लिए कपड़े पहन रखे हैं। इन वस्त्रों के नीचे उनके मन में एक धारणा है, जो दृढ़ और स्थायी है। बहुत सोचने पर भी चाननमल उसे शब्दों में न उतार सका। कैम्प में चाननमल को एक ही व्यक्ति ऐसा मिला था जिसके मुँह से उसने कभी ईश्वर के प्रति कृतज्ञता या मुसलमानों के प्रति

घृणा का कोई शब्द सुना हो। निहालसिंह के ग्यारह-के-ग्यारह पुत्र-पुत्रियाँ और पोते-पोतियाँ क़त्ल कर दिये गए थे और उसे ज़बरदस्ती शरणार्थियों के एक काफ़िले में शामिल कर दिया गया था जिसके साथ वह दिल्ली आ पहुँचा था।

बाबा निहालसिंह का शरीर बहुत लम्बा-चौड़ा था, यद्यपि अब उसकी कमर कुछ झुक-सी रही थी। उसके चेहरे पर लम्बी-लम्बी सफ़ेद दाढ़ी थी जो आँखों के नीचे से ही शुरू हो जाती थी। उसकी जलती हुई आँखों के नीचे सफ़ेद उजले बाल मोमबत्ती के पिघलने से लटक आई मोम की तारें लगते। उसकी दाढ़ी इतनी घनी थी कि ठोड़ी खुजाते हुए उसका बड़ा-सा हाथ उसमें खो-सा जाता। उसकी मोटी भवें बड़ की जड़ों की तरह लटक रही थीं और पगड़ी में से सफ़ेद रेशमी गुच्छे निकल रहे थे। उसके चौरासी-पच्चासी वर्ष के बूढ़े चेहरे पर कीचड़ में पहियों के निशानों-सी झुर्रियाँ उभर आई थीं, फिर भी चेहरा ओजस्वी और तेजवान प्रतीत होता था। आँखों में दुख की परछाईं आ जाने पर भी वे पहले-सी ही नूरानी थीं। अभी उसने लाठी पकड़नी शुरू नहीं की थी, लेकिन चलते-चलते वह दाएँ बन्द हाथ को इस तरह आगे बढ़ाने लगा था मानो सहारे के लिए लाठी थामी हुई है। बन्द हाथ को आगे बढ़ाए वह क़दम-क़दम चलता, अतीत और वर्तमान की चर्चा में आँसू बहाते लोगों से कहता जाता, 'भाइयो-बेटो! आनेवाले कल की सोचो, रोने से कभी रोटी नहीं मिलती।' कभी वह रोते हुए बच्चों को दुलारने-पुचकारने और लोरियाँ देने लग जाता। कभी वह राशन-कपड़े के लिए लगी लाइन में ऊधम मचाने वालों को डाँटता और कभी बेआसरा स्त्रियों के लिए इधर-उधर के काम करने लग जाता। उससे एक मिनट भी निठल्ला नहीं बैठा जाता था। जब कुछ और करने को न होता तो वह लंगर के कारिन्दों का हाथ बँटानें लग जाता।

लोगों की रामकहानियाँ सुनने की बजाय वह उनसे सीधा सवाल करता कि पाकिस्तान में उनकी जीविका क्या थी। हाथ-पर-हाथ धरे

वैठे रहने की वजाय वह कोई काम करने का सुझाव देता और साथ वैठकर सोचता कि किसी काम को करने के लिए कैसे प्रवन्ध किया जा सकता है।

दूसरे ही दिन उसने लंगर से मुफ्त रोटी लेनी वन्द कर दी थी। सुवह होते ही वह गुब्बारों को फुला, धागों से बाँधकर शहर की गलियों का चक्कर लगाता और जो विक न पाते उन्हें कैम्प के बच्चों में बाँट देता।

भविष्य ऐसा सूर्य है जो कभी नहीं डूवता। ग्रहण लगने या वादलों में छिप जाने पर भी उसका प्रकाश बुझ नहीं पाता और वह अपनी पूरी दिव्यता और प्रकाश के साथ फिर उभर आता है। इन्सान के लिए कभी वह अस्त नहीं हो सकता। कोई आँखें भी मूँद ले तो वह धीरे-धीरे किसी-न-किसी राह से उसके मस्तिष्क में पहुँचकर अपनी रोशनी फैलाने लगता है और उसे आँखें खोलने पर मजवूर कर देता है। साँस लेने के क्रम की तरह भविष्य की कल्पना, जीवन का चिह्न है। नदी को बाँधना सम्भव हो सकता है, लेकिन भविष्य की ओर जीवन का निरन्तर बहाव नहीं रोका जा सकता।

ये लोग भी एक-एक करके भविष्य की ओर वढ़ने लगे थे। कोई लम्वे डगों और तेज़ कदमों से, कोई आहिस्ता-आहिस्ता या लंगड़ाता हुआ और कोई घुटनों के बल चलता हुआ, मानो छोटे-से बच्चे की तरह रेंगना सीख रहा हो। काटे-छाँटे जाने पर उनमें यह अनुभव और भी सप्राण होकर अंकुरित और पल्लवित होने लगा था। चाननमल उसको शब्दों का रूप न दे सका, लेकिन इसकी तसवीर-सी वनकर उसके दिमाग में उभर आई थी। इससे उसमें एक नया उत्साह पैदा हो गया था। कभी-कभी उसके मन में आता कि उसके बहनोई का औरों के लिए जान कुरवान कर देना भी उस भावना का ही एक रूप है।

तीन

गोल मार्केट की सीढ़ियों के पास पहुँचकर कोहली रुका और तेज़-तेज़ साँस लेने लगा। नियाज़ सैयदी ने अपनी कलाई कोहली की पकड़ से छुड़ाई और एक पाँव पहली सीढ़ी पर रखकर खड़ा हो गया, जैसे इस दुविधा में हो कि ऊपर चढ़े या न चढ़े। कोहली ने कन्धे पर हाथ रखकर उसे आगे ढकेला और पीछे-पीछे सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। कमरा खुलने पर जब वे अन्दर दाखिल हुए तो कोहली बटन दबाकर रोशनी करने की बजाय गाव-तकिये को बिस्तर के किनारे की तरफ़ घसीटते हुए उस पर बैठ गया और नियाज़ से एक साँस में कहने लगा, "तुम्हारा इस्लाम तो कर्बला रसीद हो चुका है, लेकिन अगर कोई परिचित मुसलमान परिवार पाकिस्तान जाना चाहता हो तो मैं हवाई जहाज़ की टिकटें हासिल करने में उसकी मदद कर सकता हूँ।"

दाढ़ी मुंडवाने को कर्बला रसीद होना कहे जाने पर नियाज़ को दुख भी हुआ और शर्म भी आई। कमरे में रोशनी करने के लिए वह उतावला हो उठा। स्विच की तरफ़ बढ़कर जब उसने रोशनी करनी चाही तो स्विच पहले ही नीचे था। गरदन उठाकर उसने ऊपर देखा कि होल्डर में बल्ब ही नहीं था।

सड़क पर सामने की तरफ़ बिजली का खम्भा था। उसकी रोशनी खुली खिड़की में से आकर कमरे के बीच बड़ी-सी सफ़ेद चादर बिछाए

हुए थी। वाहर से एकदम कमरे में आने पर नियाज़ की आँखों के सामने जो अँधेरा छा गया था अव कम हो चुका था और कमरे की चीज़ों के फीके-फीके परिचित आकार उसे नज़र आने लगे थे। उससे पूछने तक का तकल्लुफ़ किये विना, कोहली शराव की वोतल को खोलकर मुँह से लगा गट-गट पीने लगा।

नियाज़ सैयदी जव पहली वार उस कमरे में आया था तो उसे यह अजीव-सा लगा था। यह उन दिनों की वात है जव वह नियाज़ शाह-जहानपुरी से नया-नया नियाज़ सैयदी वना था और उसकी जगह सातवाँ साथी मिल न सकने की वजह से लेडी हार्डिंग सराय को वे एक-एक करके छोड़ने लगे थे। कोहली को गोल मार्केट के शराव के ठेके वाले से मालूम हुआ कि ऊपर के कमरे का सिक्ख दरजी विलायत जाने की तैयारी कर रहा है। पंजाव के दोआवे के उसके गाँव से वहुत-से आदमी इंगलिस्तान चले गये थे। वहाँ से रुपया घर भेज रहे थे और कइयों ने तो वाल-वच्चों को भी वुलवा लिया था। उस सिक्ख दरजी ने लड़ाई के दिनों की अच्छी कमाई में से कुछ हज़ार रुपये जमा किये थे और एक ट्रैवल एजेन्सी के द्वारा पासपोर्ट का इन्तज़ाम कर लिया था।

उसके सामान को कोहली ने एक परिचित कवाड़ी के ज़रिये अच्छे दामों पर विकवा दिया। पाँच अंग्रेज़ अफ़सरों और दोस्तों के नाम वह रेडियो स्टेशन से खत टाइप करवाकर ले आया। खूवसूरत कीमती लिफ़ाफ़े ख़रीदकर उन पर पता टाइप करवाकर उसने ये दरजी को दे दिये और उसे विश्वास दिलाया कि इंगलिस्तान पहुँचने पर पाँचों खत उसके वहुत काम आएँगे और वे सव उसकी वहुत मदद करेंगे। इन झूठे काग़ज़ों के सब्ज़ वाग़ दिखाकर विना पगड़ी दिये कोहली ने उस कमरे पर कब्ज़ा कर लिया था।

उस कमरे के लिए सामान वटोरने की चिन्ता में कोहली नियाज़ को लेकर जव वहाँ आया तो नियाज़ ने देखा कि उस कमरे की शक्ल और कमरों की-सी नहीं थी। नीचे सड़क पर गोल मार्केट की वारह

दुकानें थीं जो मिलकर एक पूरा दायरा बनाती थीं। उन सबके पीछे छोटा-सा गोल मैदान था। इस तरह सब दुकानों की अगली और पिछली दीवारें इन बड़ी और छोटी गोलाइयों का हिस्सा थीं। हर दुकान के ऊपर एक कमरा था और इस कमरे की अगली-पिछली दीवार सीधी नहीं, टेढ़ी थी। छत टीनों से बनी होने के कारण ढलावदार थी, इसलिए कोई भी दीवार एक-सी ऊँची नहीं थी।

उस समय कोहली की समस्या कमरे के लिए सामान इकट्ठा करना थी। उसे रुपया हाथ लगे कुछ हफ्ते हो चुके थे और यह उसकी तंग-दस्ती का दौर था। सामान के लिए कुछ रकम माँगने से पहले कोहली नियाज़ को अपना नया कमरा दिखाना चाहता था। मुश्किल के वक्त नियाज़ कोहली को उधार देता रहता था और माल हाथ लगते ही कोहली कर्ज़ ली हुई रकम से अधिक ही लौटा दिया करता था। लेकिन उस समय नियाज़ का हाथ भी तंग था। उसने कोहली को सलाह दी कि किसी दोस्त से कुछ और किसी से कुछ माँग लाए और फ़िलहाल गुज़ारा चलाए, लेकिन कोहली अपनी शान के अनुसार सामान चाहता था। जामा मस्जिद के कबाड़ियों की दुकानों से नियाज़ ने एक परिचित के ज़रिए कोहली को मनचाहा सामान कर्ज़ पर ले दिया। नवाबी ढंग की चौकी, जिस पर सोने-चाँदी की मीनाकारी थी। नैपोलियन के समय की एक कुर्सी—जैसी उसने अँग्रेज़ी फ़िल्मों में देखी थी। उसकी सीट और पीठ पर लगा गहरे लाल रंग का मखमल कहीं-कहीं से घिसा हुआ था और लकड़ी पर सुनहरी पालिश एक-दो जगह से चटख गई थी। एक मेज़, जिसके चारों पाँव हाथी की सूँड की शक्ल के थे और इन सूँडों के दोनों तरफ़ सफ़ेद दाँत भी बने हुए थे। उस मेज़ के शीशे के नीचे किसी विदेशी मलका की बड़ी तस्वीर थी जो पानी, धूल वग़ैरह के शीशे के भीतर चले जाने के कारण गन्दा-सा हाशिया लिये हुए थी। इसके अलावा तरह-तरह की सजावट की चीज़ें थीं। कमर तक ऊँचा एक चीनी फूलदान, जिस पर तसवीरें बनी हुई थीं। उसकी चमक बहुत

कीमती चाइना की-सी थी, लेकिन उसके मुँह का किनारा टूटा हुआ था। एक क्लॉक, जिसके डायल पर पन्द्रह-सोलह साल की लड़की की तसवीर थी और जो पैंडुलम हिलने के साथ-साथ आँखें दायें-बायें मटकाती थी। दो गावतकिये, जिनके बैंगनी रंग की मख़मल के गिलाफों पर गोटे-किनारी का काम किया हुआ था। इस सामान को कमरे में सजा दिया गया था। कोहली की पसन्द का पलंग नहीं मिल सका था। सराय की तरह बिस्तर को खिड़की के नीचे फ़र्श पर ही लगा दिया गया था।

धीरे-धीरे और भी सामान आता रहा—कुर्सियाँ, जो एकसी ऊँची नहीं थीं, तिपाइयाँ, अलमारियाँ और दीवारदान, जिनमें से कोई एक-दूसरे से मेल नहीं खाता था। कवाड़ियों की दुकानों पर चक्कर लगाकर ये चीज़ें एक-एक करके खरीदी गई थीं। उसने हाथीदाँत की मूठवाली एक खूबसूरत छड़ी भी खरीद ली थी, जो कवाड़ी से खरीदी जाने के बावजूद नई-सी लगती थी। जामा मस्जिद के पास से जब भी वह गुज़रता, एक-न-एक सैकिंडहैंड किताब ज़रूर खरीद लेता या उधार ले आता। कानों को छूते हुए लम्बे बाल रखने की उसे आदत हो गई थी। छड़ी को हाथ में घुमाता, मोटी-सी किताब को बगल में दबाए वह एक गम्भीर बुद्धिजीवी लगता था। लेकिन सिरतोड़ कोशिश करने पर भी वह शेर न लिख पाया था। उसके नाम से प्रसारित हो रही वार्ताएँ और गज़लें पैसे वसूल करने के लिए और लोग ही लिखते थे।

नियाज़ ने टेबल फ़ैन चलाने की कोशिश की। उसके न चलने पर वह समझ गया कि बिल न अदा कर सकने की वजह से अब फिर बिजली का कनैक्शन कट चुका है। मेज़ पर टेक लगाने के लिए उसने उस पर हाथ रखा। वहाँ धूल महसूस करके उसने हाथ उठाया तो उस मटमैली रोशनी में भी वहाँ पंजे का गहरा निशान दिखाई दिया। कमरे में हर चीज़ पर मिट्टी की मोटी तह जमी हुई मालूम होती थी। कोहली का बिस्तर मैला तो बहुत था, लेकिन उस पर धूल नहीं थी। यह स्पष्ट था कि वहाँ रात को वह बाक़ायदा आता रहा है। दीवार पर से पहले की खरीदी

हुई क्लाक घड़ी और बाद की ख़रीदी शेर की खाल अब वहाँ नहीं थी। उनके नीचे के दीवार के कम मैले हिस्से से साफ़ लगता था कि ये इन्हीं दिनों बेची गई हैं। कमरे के सामान में से कीमती चीज़ें ग़ायब थीं। क्या ये दिन कोहली पर सचमुच बहुत बुरे बीते थे? पाकिस्तान बनने से पूर्व की मुस्लिम लीग और राष्ट्रवादी मुसलमानों की आपसी खींच-तान में वह बहुत व्यस्त रहा था और कोहली से कई महीनों से मिल न पाया था। यार-दोस्त उसका ज़िक्र होने पर नाक-भौं चढ़ाकर बात टाल देते थे।

कमरे की हालत और कोहली को इस तरह गटगट शराब पीते हुए देखकर नियाज़ के दिल में उसके लिए सहानुभूति जाग उठी। कोहली बिस्तर पर चित लेटा बेहोश हो गया था। बोतल छाती पर से होती हुई उसकी कमर के पास जा गिरी थी। नियाज़ ने एक कोने से चटाई उठाई। इस पर वे बैठकर शराब पिया करते थे या इस पर लेटकर कोहली कभी-कभी मालिश करवाया करता था। चटाई झाड़कर उसने बिछाई और दोनों हाथों का सिरहाना बनाकर लेट गया।

लेटे-लेटे वह सोच में डूब गया। अपनी छोटी-सी दुनिया से हटकर उसका ख़याल बड़ी दुनिया की तरफ़ चला गया। अपना दुख और दुनिया के दुख ये दोनों अथाह समुद्र थे, जिनका कोई किनारा नहीं दीख रहा था। बायाँ हाथ सिर के नीचे से निकालकर वह मुँडी हुई दाढ़ी को सहलाने लगा। वह आपबीती और जगबीती की सोचने लगा। पाकिस्तान बनने से कैसे उसकी और भारत के मुसलमानों की दुनिया और-से-और हो गई थी। अभी छः-सात दिन पहले उनके मुहल्लों के पास से हिन्दू-सिक्ख गुज़र नहीं सकते थे। अब मुसलमान अपने घरों तक से बाहर निकलते हुए डरते हैं। जिन्होंने पाकिस्तान के ख़िलाफ़ गले फाड़-फाड़कर नारे लगाये थे, वे भी पाकिस्तान जाने के सिवा अब और कोई राह नहीं देख पा रहे थे। नियाज़ सोचने लगा कि इन्सान को एक जान के साथ हज़ारों दुख भी मिले हैं, लेकिन जो दुःख वह उस समय महसूस

कर रहा था सबसे अधिक कष्टकर था—आदर्शों और विश्वासों के धूल में मिल जाने का दुःख। वह मुस्लिम लीग और पाकिस्तान के विरुद्ध था। उसे हिन्दुस्तान से प्यार था। लेकिन अब उसे भी आज़ादी के जश्न में शामिल होने के लिए दाढ़ी मुँडवानी पड़ी थी।

एक बड़ी मक्खी खिड़की से कमरे में दाखिल हुई और भिन-भिनाती हुई कमरे में चक्कर काटकर दरवाज़े से बाहर निकल गई। नियाज़ को एकाएक ख़याल आया कि कमरे का दरवाज़ा खुला है। उसे बन्द करके उसने चटखनी चढ़ा दी। फिर उसे कोहली का ख़याल आया कि उसकी ही नीयत कहीं खराब न हो जाए और वह सोये हुए निहत्थे मुसलमान को क़त्ल न कर दे। पिछले कुछ दिनों में मुसलमानों के मुहल्लों में भी इक्के-दुक्के मुसलमानों का क़त्ल होना शुरू हो गया था और पाकिस्तान की लूटमार की खबरें आने के बाद उनके पुराने हिन्दू दोस्तों तक की आँखें बदल गई थीं।

नियाज़ उठकर कमरे में चारों तरफ़ आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। कमरे में उसे कोई चाकू या उसी किस्म का कोई हथियार नज़र न आया। वह फिर चटाई पर लेट गया और सोने की कोशिश करने लगा। कुछ देर की कच्ची नींद, जिसमें उसे एक बुरे सपने के बाद उससे भी बुरा सपना आता रहा, कुछ देर बाद टूट गई और फिर पूरी कोशिश करने पर भी आँख न लगी। उसने एक से सौ तक अनेक बार गिना, उँगलियों पर गिनकर अल्लाह का शब्द सैकड़ों बार दोहराया, बार-बार कलमा पढ़ा, लेकिन नींद न आई।

इधर-उधर भटकने के बाद उसका ख़याल कोहली पर अटक गया और उससे मुलाकात के विगत तीन-चार वर्षों की अनेक घटनाएँ उसकी आँखों के सामने घूमने लगीं। कोहली से डर की भावना कोहली के लिए सहानुभूति में बदल गई और वह सोचने लगा कि किस लापरवाही से वह कमाया हुआ रुपया दोस्त-यारों पर खर्च करता रहा है। उसके रुपया हासिल करने के तरीके को रुपया कमाना तो नहीं कहा जा सकता था,

फिर भी वह रुपया उसका ही होता था।

पहली बार जब कोहली ने अपने विशेष ढंग से रुपया हासिल किया था वह भी उसे अच्छी तरह याद था। कोहली को लेडी हार्डिंग सराय के उस कमरे का सातवाँ रत्न बने नौ-दस दिन हो चुके थे। वह सुबह से शाम तक शहर-भर में भटकने के बाद भी कोई काम-धन्धा न ढूँढ़ पाता था। वह किसी फ़र्म का एजेंट या सेल्ज़मैन बनने की कोशिश कर रहा था। इस कारण उस महफ़िल में उसकी हर वक्त गत बनती रहती थी। उनके शायर साथी ने ज़िन्दगी का लक्ष्य इतना तुच्छ बना रखा हो, यह देखकर उन सबको शरम भी आती और गुस्सा भी। अगर कमरे में लगातार रहने के लिए सातवाँ साथी आसानी से मिल सकता तो वे फ़ौरन कोहली को वहाँ से बाहर कर देते। 'जौहर चकवाली' के स्थान पर उसका नाम 'गोबर चकवाली' रख दिया गया। कोई उसे ताना देता कि बनिया शायर नहीं बन सकता और न ही शायर बनिया बन सकता है। उसके बिस्तर को दरवाज़े की तरफ़ सरका दिया गया और खाना खाते वक्त भी उसे कोने की जगह दी जाती। मुजतर जालंधरी का बिस्तर दीवार के साथ था। उसने अपने सिरहाने के पास गत्ते का एक चौरस टुकड़ा लटका रखा था जिस पर अंग्रेज़ी में लिखा था, "किसी भी महापुरुष ने सुबह उठने पर अपने-आपको मशहूर नहीं पाया। सच तो यह है कि वह कभी सोया ही नहीं।" वह रात को सबसे बाद में सोता था और गप-पर-गप, शेर-पर-शेर और लतीफे-पर-लतीफे छोड़ते हुए वह कोशिश यही करता कि साथियों को भी न सोने दे। एक-एक कर जब वे सब नींद के आगे हथियार डाल देते, तो वह अनमना-सा बिजली बुझाकर सोने की तैयारी करता। बाद में मुजतर जालंधरी ने गत्ते का एक और चौरस टुकड़ा सिरहाने के पास लटका लिया था, जिस पर इक़बाल का शेर लिखा हुआ था, 'ऐ तायरे लाहूती उस रिज्क से मौत अच्छी, जिस रिज्क से आती हो परवाज़ में कोताही'।[1]

१. ऐ आकाश की ऊँचाइयों में रहने वाले पक्षी, उस जीविका से मौत

कोहली जब शाम को थका-माँदा आता और बातचीत का सिलसिला कहीं टूट जाता तो मुजतर जालंधरी गुनगुनाने लग जाता, 'ऐ तायरे लाहूती उस रिज्क से मौत अच्छी, जिस रिज्क से आती हो परवाज में कोताही।' कोई पूछ लेता, "गोवर चकवाली साहिब, आज मैदान मार लिया या नहीं ?" इस प्रकार उनके व्यंग्य करने पर कोहली शरम से पानी-पानी हो जाता। एक दिन उसने ऐसा काम किया जिससे साबित हो गया कि वह एजेंट या सेल्जमैन नहीं बन सकता और उसके बाद किसी ने उसे गोवर चकवाली नहीं कहा।

उस सराय में ईरान से एक हिन्दुस्तानी व्यापारी आया, जो हिन्दुस्तान से चीनी और गुड़ ले जाने के लिए सरकारी परमिट प्राप्त करना चाहता था। युद्ध-काल में हिन्दुस्तान में चीनी का राशन था और बाज़ार में प्राप्य नहीं थी। ईरान में चीनी उन दिनों अधिकतर हिन्द एशिया से जाती थी। जापान के अधिकार में जाने के बाद वहाँ से जहाज़ आने बन्द हो चुके थे। इसलिए ईरान में चीनी के भाव बहुत चढ़ गए थे और हिन्दुस्तान से कई गुना थे। परमिट मिल जाने से उस व्यापारी को बहुत लाभ हो सकता था। जौहर चकवाली से मुलाकात होने पर उस आढ़ती ने बताया कि उसका पैतृक घर चकवाल से तीन मील दूर गाँव फुलेरां में है। कोहली को जौहर चकवाली के नाम से मुसलमान समझते हुए उसने चकवाल के रहने वाले अनेक मुसलमानों के नाम लिये, जिनमें से कई को कोहली जानता था। कोहली से जब उसे पता लगा कि वह हिन्दू है और उसका नाम शिवशंकर कोहली है तो उसने फ़ौरन प्रश्न किया कि वह किस कोहली का लड़का है, रामलुभाया का, सूरजमल का, तीर्थराम का, या गुरांदित्ता का। उसके बताने पर कि वह तीरथ-राम का पुत्र है, ईरान के व्यापारी ने उसके सब रिश्तेदारों का ब्योरा दिया। उसके खानदान की सब ख़ास-ख़ास बातें बता दीं। उसकी किस-किस बुआ की कहाँ-कहाँ शादी हुई और उनमें से जो बस नहीं पाई थीं

अच्छी है जो ऊपर उड़ान में बाधा डाले।'

उसका क्या कारण था। उसकी नानी कैसे तकला लगने से कानी हो गई थी, कैसे उसकी एक मामी विधवा हो जाने पर हरिद्वार चली गई थी। उसका एक चचा हकीम था। उसके हाथ में कितना जस था! ऐसी कहानियाँ और इसी तरह की बातें वह सुनाता रहा, यहाँ तक कि कोहली उसे चचा कहकर पुकारने पर मजबूर हो गया। कोहली खूब समझता था कि आढ़ती यह चाहता है कि इस शहर में, जहाँ वह परदेशी है, एक ऐसा आदमी उसे मिल जाए जो यहाँ की सड़कों-बाज़ारों को जानता हो, थोड़ा-सा पढ़ा-लिखा भी हो, ताकि सरकारी दफ्तरों में उसके साथ एक-दो दिन चक्कर काट सके। कोहली को लेकर वह एक दिन एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट कन्ट्रोलर के दफ्तर में घूमता भी रहा।

दफ्तर के बरामदे में चक्कर काटते हुए कोहली ने एक बाबू से सिगरेट सुलगाने के लिए माचिस माँगी, और सिगरेट सुलगाते वक्त उसे सिगरेट पेश करते हुए उससे एकाध बात भी की। वहाँ से हटकर जब वह ईरान के व्यापारी के पास लौटा तो उसने उम्मीद-भरे लहजे में पूछा कि क्या वह उसे जानता है। कोहली को कोई जवाब न सूझा, केवल मुस्करा दिया।

अगले दिन उस व्यापारी को टालने के लिए कोहली नाश्ता करते ही सराय से ग़ायब हो गया। वह व्यापारी पास ही पहाड़गंज बाज़ार के एक होटल में चला गया था और शाम से पहले ही सराय में आकर कोहली का इन्तज़ार करने लगा। कोहली से और कोई बहाना न बना तो उसने यह कहकर उसे टालने की कोशिश की कि उस दफ्तर में वह एक परिचित से मिलने गया था। उसे बहुत कहा कि यह मेरा सगा चचा है कुछ करो, लेकिन वह कहता है कि अफ़सरों की मुट्ठी गरम किये बग़ैर काम नहीं बनेगा। वह व्यापारी इस बात से टलने की बजाय और भी दिलचस्पी से पूछताछ करने लगा। कितनी रिश्वत देनी पड़ेगी, चीनी की कितनी बोरियों का परमिट मिलेगा? कोहली को तत्काल जो अधिक-से-अधिक

उसे आया, वे छः थीं। झट वोल उठा, "छः वोरियों के परमिट के लिए सौ रुपये माँगता है।" व्यापारी का चेहरा निराश होने के वजाय खिल उठा।

व्यापारी के चेहरे पर आशा की चमक देखकर कोहली की आँखें खुल गईं। वह रात-भर अच्छी तरह सो न पाया। कभी एक खयाल का दीया जलता और वुझ जाता और कभी दूसरे खयाल का, लेकिन हर खयाल की लौ के साथ धुएँ की लम्बी-सी लकीर होती। किसी-किसी दीये में से इतना धुआँ उठ रहा होता कि चारों तरफ़ स्याही-ही-स्याही वरसने लग जाती। उस रात उसने जो स्वप्न देखे उनमें सौ रुपये का नोट मुख्य पात्र था। कभी उस पर पंख लगे होते, कभी हाथ-पाँव और कभी उसमें मटकती हुई आँखें निकल आतीं।

अगली सुवह मुँह-अँधेरे ही व्यापारी कोहली के कमरे के आगे आ खड़ा हुआ और उसके जागने का इन्तज़ार करने लगा। कोहली जव नहा चुका तो वह उसे नाश्ते के लिए अपने होटल में ले गया। कोहली को वहुत वढ़िया नाश्ता खिलाने के वाद और अपने परिचय और पुराने रिश्तों को वास्ता देकर उससे विनती करने लगा कि किसी-न-किसी तरह कम-से-कम छः वोरी चीनी का परमिट उसे ले दे और अगर हो सके तो कुछ अधिक वोरियों का। वह वार-वार कोहली से उस वावू के पास चलने का आग्रह करने लगा।

कोहली जितना रोव जमा सकता था व्यापारी पर उसने जमाया और साफ़-साफ़ कह दिया कि रिश्वत लेने-देने का काम इस तरह नहीं होता। इसके लिए वह अकेले ही जायेगा। कोई और चारा न देखकर वह व्यापारी उसके अकेले जाने पर राजी हो गया और उसे दस रुपये के दस नोट दे दिए। जव कोहली वहाँ से जाने लगा तो सौ का एक और नोट उसे थमाते हुए व्यापारी ने कहा, "हो सके तो छः और वोरियों का भी इन्तज़ाम कर देना, इतनी दूर से रोज़-रोज़ आया नहीं जाता।"

दिल्ली आने के वाद से कोहली की यह पहली आय थी और वह

उस कमरे में उस समय तक चोरी-छिपे ही आता रहा जब तक उसे व्यापारी के दिल्ली से चले जाने का पूरा विश्वास नहीं हो गया। इस तरह कोहली के हाथ में पैसा कमाने का एक नया तरीका आ गया। ताश के खेल की तरह इस तरीके के गुर और करतब सीखते हुए उसे देर न लगी। महीने में एक-दो बार किसी-न-किसी चीज़ के परमिट की तलाश में दिल्ली आया हुआ कोई आदमी उसे मिल ही जाता था। परमिट दिलाने के लिए इतनी कम रकम उसने फिर कभी नहीं ली और साथ ही लुकने-छिपने के लिए भी उसने कई जगहें ढूँढ ली थीं।

कोहली के हाथ रुपये लगते ही पहले छिपे-छिपे और फिर खुल्लम-खुल्ला महफ़िलें लगनी शुरू हो जातीं, रुपया पानी की तरह बहने लगता और आठ-दस दिन में खतम हो जाता। नियाज़ भी इन महफ़िलों में जब शाहजहानबादी था तो बिला नागा और सैयदी बनने के बाद कभी-कभी शामिल हुआ करता। हाथ खाली हो जाने पर कोहली इधर-उधर से छोटी-बड़ी रकमें कर्ज़ पर ले लेता और गुज़ारा ठाठ से चलता रहता। लेकिन रुपया हाथ लगने पर सबसे पहले इस कर्ज़ को उतार देता।

इस कमरे में चले आने पर कोहली का कारोबार चमक उठा था। कनॉट प्लेस के करीब अपना अलग कमरा होने के कारण मुलाकात करने वालों से बातचीत करने में किसी तरह की अड़चन नहीं पड़ती थी। कोटा परमिट हासिल करनेवालों के सामने बड़े-बड़े अफ़सरों से जान-पहचान की जो बातें वह पहले करता था, उन पर उन्हें मुश्किल से विश्वास आता था। लेकिन अब सरकारी अफ़सर उसके कमरे में शराब पीने के लिए आने लगे थे, विशेषकर वे जो घरों में या होटल-क्लबों में नहीं पी सकते थे। ऐसी महफ़िलों में परमिट के लिए दिल्ली आए व्यापारियों को वह ले आता और बाकी सब काम आसानी से हो जाता।

उसके लेखक-मित्रों का सर्कल भी अब बहुत बढ़ गया था। उस सर्कल में लेडी हार्डिङ्ग सराय वाले शायर दोस्तों के लिए जगह नहीं रही थी। उर्दू का कोई प्रसिद्ध शायर या कहानीकार दिल्ली में आए, उसके

सम्मान में कोहली के कमरे में महफ़िल न जमे और दिल्ली के बड़े-बड़े उर्दू के साहित्यकार उसमें शामिल न हों, यह कैसे हो सकता था ! इन लोगों में वह गौहर चकवाली की बजाय कोहली साहब के नाम से मशहूर था। यह कोहली को पसन्द भी था, क्योंकि अब वह शायर के बजाय कहानीकार, उपन्यासकार या नाटककार बनना चाहता था। एक कहानी का पहला पैरा, एक उपन्यास के कुछ पात्रों की सूची और एक नाटक के कुछ संवाद उसने तैयार कर रखे थे। कोई लेखक जब कभी उसके कमरे में अकेला होता तो वह उसे अपनी कृतियों के आरम्भिक अंश दिखाने की कोशिश करता, लेकिन उस समय तक वे इतनी शराब पी चुके होते थे कि कोई गम्भीर बात उनसे न हो पाती।

कहानी, उपन्यास या नाटक की उन पंक्तियों को जब वह अपने लेखक दोस्तों को सुनाता, तो कोई कहता कि जब यह नाटक पूरा होगा तो शेक्सपियर के मुकाबले का होगा, कोई कहता यह उपन्यास पूरा होने पर टालस्टाय की कृतियों से किसी तरह भी पीछे नहीं रहेगा। कोई कहता कि यह कहानी तो मोपासां के दाँत खट्टे कर देगी। इस वाह-वाह के बाद कोहली फ़ैसला न कर पाता कि वह नाटक लिखे या उपन्यास या कहानी। दोस्तों से सुने चुस्त वाक्यों को वह दिमाग में अटका लेता। इन वाक्यों की मदद से वह अपने उपन्यास, कहानी या नाटक को आगे बढ़ाने की कोशिश करता। ह्विस्की की पूरी बोतल पी जाने पर भी वह इस कोशिश में असफल रहता। नशे की हालत में उर्दू के कहानीकार सुरेन्द्रनाथ का वाक्य उसे अक्सर याद आ जाता, 'कोहली साहब, दुनिया में केवल दो बड़ी किताबें हैं—एक वह जो अगर फुरसत मिलती तो आप लिखते और दूसरी वह जो अगर फुरसत मिली तो आप लिखेंगे।' यह वाक्य याद आ जाने पर नशा उसे और भी ले उड़ता और वह हवाई किले बनाने लग जाता।

इस कमरे में नियाज़ सैयदी एक बार पहले भी आठ महीने के बाद आया था। भंगी कॉलोनी में गांधीजी की प्रार्थना-सभा में वह गया था।

पचकुइयाँ रोड से लौटने के बजाय गोल मार्केट से होकर कनॉट प्लेस की तरफ निकल जाने का उसका ख़याल था ताकि कोहली से मिल सके। गोल मार्केट की सीढ़ियाँ चढ़कर नियाज़ ऊपर पहुँचा तो उसने देखा कि कोहली के कमरे के दरवाज़े पर एक बहुत ही कीमती और ख़ूबसूरत परदा लटक रहा है। उसने परदे के अन्दर हाथ करके बार-बार दस्तक दी। कोई जवाब न आने पर परदा उठाकर वह अन्दर दाखिल हुआ। कोहली फ़र्श पर बेहोश पड़ा था। दाएँ-बाएँ उसने कै की हुई थी, जिस पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। कमरे में चारों तरफ़ तरह-तरह, शराब की दर्जनों बोतलें बिखरी पड़ी थीं और सिगरेट के जले हुए टुकड़े, तीलियाँ वग़ैरह फ़र्श पर चारों तरफ़ बिखरी हुई थीं।

नियाज़ को यह अन्दाज़ा लगाते हुए देर न लगी कि कई दिन से लगातार जम रही महफ़िल वहाँ से उसी शाम बरख़ास्त हुई है। कोहली ने बहुत कीमती और रोबदार कपड़े पहन रखे थे। ऐसे कपड़ों में नियाज़ ने उसे पहले कभी नहीं देखा था। एक कोने में संगमर्मर की मेज़ थी, ज़ो नई खरीदी लगती थी। उस पर सिली-सिलाई कमीज़ों और पतलूनों के बन्द डिब्बे पड़े हुए थे। दीवार पर पीतल की अजीब-सी खूँटी थी। उस खूँटी पर बहुत बढ़िया चार फैल्टहैट लटक रहे थे।

कमरे में कई सौ कैंडल पावर का बल्ब जल रहा था। तेज़ रोशनी में वह कमरा वास्तविक नहीं वरन् सिनेमा के परदे पर दिखाये जा रहे किसी दृश्य की तरह लग रहा था। नियाज़ ने कमरे में चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई। फ़र्नीचर और सजावट का सामान पहले की तरह ही कबाड़ियों से खरीदा गया लगता था। कमरे में दाखिल होते ही दाईं दीवार पर दो तस्वीरें साथ-साथ लगी हुई थीं—एक कोहली की अपनी थी और दूसरी मोपासां की। इससे नियाज़ ने अनुमान लगाया कि अब कोहली ने उपन्यासकार बनने की उम्मीद छोड़कर कहानीकार बनने का फ़ैसला कर लिया है। कोहली के होश में आने का इन्तज़ार किए बग़ैर नियाज़ वहाँ से चला आया था।

आज उस कमरे में चटाई पर लेटे-लेटे नियाज़ की आँखों के सामने कोहली और साथ ही अपनी ज़िन्दगी की तस्वीरें पूरे विस्तार के साथ घूम रही थीं। जब कभी उसकी झपकी टूटती वह हाथों को सिर के नीचे रखकर छत पर टकटकी लगा लेता और सोच में डूब जाता। उसकी आँखों के सामने बार-बार वह तस्वीर घूम जाती, जब उसने इसी कमरे में कोहली को बेहोश पाया था और वह सोचने लगा कि कोहली की ज़िन्दगी कितनी भी खराब हो, लेकिन पेशेवर राजनीतिज्ञों से तो फिर भी अच्छी है। सड़कों पर लाशों के अम्बार लगवाने से कहीं अच्छा है कि अपने कमरे को शराब की खाली बोतलों और सिगरेट के जले टुकड़ों से भर दिया जाए।

इसी सोच में झपकियाँ लेते सुबह हो गई। कोहली बदस्तूर खर्राटे ले रहा था। नियाज़ उसके जागने का इन्तज़ार किये बिना वहाँ से चला जाना चाहता था, लेकिन शहर में सुबह के समय इक्के-दुक्के मुसलमान के कत्ल की वारदातें पिछले कई दिनों से हो रही थीं। उसने दिन अच्छी तरह निकल आने का इन्तज़ार करना उचित समझा।

नौ बजे कोहली उठा और मुँह पर हाथ रख जम्हाइयाँ लेता हुआ खिड़की के पास जा खड़ा हुआ। उसने सामने के होटल वाले को ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ें दीं। पतलून की पिछली जेब से सौ का नोट निकालकर होटल वाले को दिखाते हुए उसे दो चाय, टोस्ट और सिगरेट भिजवाने के लिए कहा।

चाय पीते-पीते नियाज़ ने अपने मन की कुछ सुनाई। दाढ़ी मुँडवाने पर अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए उसने कोहली को बताया कि दाढ़ी के साथ घर से निकलते हुए उसका दिल धड़कता था और सड़क पर चलते-चलते यही डर लगा रहता था कि अभी किसी ने बगल में छुरा घोंपा। अपनी बस्तियों से मुसलमानों का बाहर निकलना खतरे से खाली नहीं था। उनके मकानों पर निशान लगे हुए थे और रात-भर इस डर से किसी की आँख नहीं लगती कि हिन्दुओं का हमला अब हुआ। ज़रा-

सा खटका होने पर सारा मुहल्ला चौंक उठता था।

कोहली साम्प्रदायिक हिन्दुओं को मोटी-मोटी गालियाँ देने लगा और तुरन्त ही नियाज़ और उसके परिवार की सुरक्षा के लिए उसके घर जाने को तैयार हो गया। उसे यह चिन्ता भी सता रही थी कि शीघ्र ही वामिक देहलवी या उसका कोई आदमी उसकी तलाश में वहाँ चक्कर लगाने लगेगा। इसलिए वह वहाँ से कुछ दिनों के लिए गायब रहना चाहता था।

कोहली ने कनॉट प्लेस जाकर नये कपड़े खरीदे और पुराने वहीं फेंक दिए। नये जूते खरीदकर पुरानों को ठोकर मारकर दुकान से बाहर फेंका। एक रिस्टवाच, सुनहरी फीता और सुनहरी क्लिप वाला फाउंटेन पेन खरीदा। फिर एक बढ़िया बटुआ खरीदकर बची हुई रकम उसमें डाल, वह नियाज़ के साथ अजमेरी गेट जानेवाले ताँगे पर आ बैठा।

चार

मुरझाए हुए फूलों और टूटी टहनियों को कोई ज़मीन में गाड़कर मन्त्र पढ़ दे और उपवन लहलहाने लग जाए, इसी तरह दो दिनों में ही उजड़े शरणार्थियों की रेल-पेल से यह नया कैम्प सजीव हो उठा था। जीवन वहती नदिया की तरह है। एक राह वन्द हो जाने पर नदी वहने के लिए नई राह बना लेती है। ज़िन्दगी की पुरानी राहें मिट जाने पर गहरे घावों की पीड़ा से कराहते हुए भी वे नई राहें ढूंढने और वनाने में जुट गए थे।

गाँवों और छोटे-छोटे कसवों से आए इन शरणार्थियों के लिए शहर शब्द कितने मीठे अनुभव लिये हुए होता था! उसकी कल्पना से ही जीवन की चहल-पहल और चमक-दमक उनकी आँखों के सामने आ जाती थी। लेकिन यहाँ आकर शहर को उन्होंने और ही तरह का पाया। शहर का पानी स्वादहीन, दूध पतला और नीलापन लिये हुए था। यहाँ की धूल भी गाँव की धूल से भिन्न थी और नाक और कण्ठ में काँटों की तरह चुभती थी। तीसरा पहर होते ही धुएँ-सी भारी हवा वाज़ारों और मकानों पर तन जाती जिससे उनके थके हुए शरीर और भी शिथिल हो जाते।

किन्तु शहर के उस नये वातावरण के अभ्यस्त होने में उन्हें देर न लगी। शहर ने उनके व्यक्तित्वों पर भिन्न-भिन्न तरह से प्रभाव डाला।

शहर एक भट्ठी की तरह था जिसमें बहुत-से व्यक्तित्व गल-पिघलकर अपनी पहली बनावट बिलकुल खो बैठे। कई जलकर राख हो गए। कई तपकर निखर उठे। शायद ही कोई पहले-जैसा रहा हो।

हर रोज़ शहर में शरणार्थियों के झुंड-के-झुंड चले आ रहे थे। बाढ़ के मटमैले पानी की तरह वे जगह-जगह उमड़े पड़ते थे। सड़कों-बाज़ारों में ट्रैफ़िक के लिए रास्ता छोड़कर जहाँ-कहीं जगह बचती थी वहीं शरणार्थियों ने सिर छिपाने के लिए जगह बना ली थी। कोई भी खाली जगह ऐसी नहीं थी जहाँ किसी शरणार्थी ने डेरा न डाल लिया हो। जो सामान हाथ लग सका उसी से तरह-तरह की झोंपड़ियाँ और झुग्गियाँ बना ली गई थीं। कोई डिब्बों की तरह चौरस थी तो कोई तम्बुओं की तरह तिकोनी। किसी ने शहर की पुरानी चहारदीवारी की चौड़ी मेहराबों के नीचे घर बना लिया था तो किसी ने शहर के प्राचीन प्रवेश-द्वारों के नीचे रहना शुरू कर दिया था। कुछ लोग अभी रेलवे प्लेटफ़ार्म पर ही पड़े थे। कुछ शरणार्थियों ने धर्मशालाओं, मन्दिरों, गुरुद्वारों और बन्द स्कूलों तथा कालेजों में सामान जा रखा था और कुछ ने मुसलमानों की बन्द दुकानों के आगे परदा लटकाकर वहीं रहना शुरू कर दिया था। ये शरणार्थी शहर में चक्कर लगाते, भीड़-भड़क्का करते हुए सड़क के दोनों तरफ़ के मकानों-दुकानों से टकराते, यहाँ रहने वालों से कुछ चिढ़ते और उतना ही उनको चिढ़ाते, शहर में घुल-मिल जाने और उसका अंग बन जाने की कोशिश कर रहे थे।

चाननमल बहुत सूख गया था। उसकी आवाज़ लोहे के पुराने फाटक-की-सी कर्कश हो गई थी। लेकिन अब वह सँभल गया और प्रत्येक घटना को समझने की कोशिश करने लगा था। उसने देखा कि इन परिस्थितियों की लोगों पर कितनी भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया हुई है। अनिश्चितता के इस वातावरण में बहुतों ने शिष्टता का नकाब उतार फेंका है। फिर भी कुछ हैं जिनमें सद्भावना और साधुता उजागर हो गई है।

कैम्प की आबादी दो-तीन दिन में ही बहुत बढ़ गई थी। कुछ लोग

ऐसे थे जिन्होंने नज़दीकी रिश्तेदारों, बचपन के दोस्तों और पाकिस्तान में कई-कई पीढ़ियों से साथ रह रहे पड़ोसियों से आँखें फेर ली थीं। लेकिन ऐसे भी कम नहीं थे जिन्होंने रिश्तेदारों और परिचितों का सत्कार किया और जगह न होने पर भी अपनी झोंपड़ी में स्थान दिया।

अधिकांश शरणार्थी मिल-जुलकर एक साथ रहने में ही अपने को अधिक सुरक्षित महसूस करते थे। दो तरफ़ डेढ़-डेढ़ फुट ईंटों की दीवार खड़ी करके उन पर तिरछी बल्लियाँ या शहतीरें लगाकर ऊपर टीन की चादरें या तिरपाल डाल दी गई थी। मैदान के चारों तरफ़ तीन कतारों में आमने-सामने बनी इन झोंपड़ियों में हर समय नज़र रखने पर भी सामान चोरी हो जाता। कैम्प में लगे दो नलकों पर नहाने या पानी भरने के लिए सारा दिन इन्तज़ार करना पड़ता। राशन के लिए घण्टों पहले जाकर कतार में खड़े रहना ज़रूरी था। जंगल पानी के लिए आधा मील दूर जाना होता और कोई स्त्री अकेली न जा सकती। बहुत-से लोग इसी ताक में थे कि किसी तरह कुछ हाथ लग जाए और जब उन पर सामान आदि उठाने का आरोप लगाया जाता तो वे लज्जित होने के बजाय हैरान हो जाते। धोकर बाहर डाले कपड़ों से ज़रा आँख हटते ही एकाध गायब हो जाता।

लोग किसी-न-किसी काम-धन्धे में लगते जा रहे थे। संघर्ष से पलायन न करके कठिन परिश्रम द्वारा ही अतीत को भुलाया, वर्तमान से जूझा और भविष्य की कल्पना की जा सकती है।

कैम्प के एक तरफ़ तीसहज़ारी का तिराहा था और साथ ही कैम्प के पीछे से जाती हुई सड़क पर मिशन हस्पताल था। इन दोनों सड़कों पर शरणार्थियों ने छोटी-छोटी दुकानें लगा ली थीं। चाननमल की उर्दू बहुत अच्छी थी। वह कलम-दवात खरीदकर तीसहज़ारी पुल के एक कोने में बैठ गया और शरणार्थियों के लिए खत लिखने का काम करने लगा। रोज़ रेडियो से गुमशुदा व्यक्तियों के नाम-पते आदि प्रसारित होते थे। वह पुल के पार एक दुकान पर रेडियो सुनता और नाम-पते

वग़ैरह लिख लेता। फिर बड़े-से गत्ते पर ज़िला और गाँव के हिसाब से सब नाम-पते नकल कर लेता। गत्ते को अपने बैठने की जगह पर लटका लेता। पूछताछ करने वाले शरणार्थियों को पढ़कर सुना देता और जिसे भी रेडियो से खबर प्रसारित करवानी होती या दूसरे कैम्पों में अपने खोये हुए बाल-बच्चों, भाई-बहनों या माँ-बाप का पता पूछना होता, उनके लिए खत लिख देता। इस काम में उसे सुबह से शाम तक फुरसत न मिलती।

तीसहज़ारी कैम्प में सरकारी राशन के अलावा, दिल्ली वालों की तरफ़ से भी आटे की बोरियाँ, कपड़े के थान, चादर, बिस्तर, कम्बल, सिले हुए नये और पुराने कपड़े वग़ैरह आते, लेकिन आधे से अधिक सामान शरणार्थियों तक न पहुँच पाता। अच्छे-अच्छे कपड़े और कम्बल बीच में ही गायब हो जाते। दूध सब बच्चों के लिए पूरा आता, लेकिन घण्टों कतार में खड़े रहने पर भी दूध की जगह सफ़ेद पानी मिलता। भादों के दिन थे। हल्की-हल्की बारिश होती रहती थी। चारों तरफ़ कीचड़-ही-कीचड़ हो गई थी। झोपड़ियाँ भीग गई थीं। पानी की कमी और संडास आदि की असुविधाएँ भी थीं। रोशनी नहीं थी और बच्चे सड़क पर खम्भों के नीचे बैठकर अपनी पढ़ाई किया करते। फुरसत के समय चाननमल इन सब असुविधाओं के सम्बन्ध में उर्दू के स्थानीय अखबारों में पत्र लिखने लगा। लाहौर के हिन्दुओं के दो दैनिक पत्र अब दिल्ली से छपने शुरू हो गए थे। कैम्प के बारे में दी गई खबरें और शिकायतें कभी उसके नाम से 'उजड़े हुओं की पुकार' के शीर्षक के अन्तर्गत छप जाती, 'कभी सम्पादक के नाम पत्र' के कॉलम में। कभी-कभी इन समाचारों को वे अखबार अपने सम्वाददाता की ओर से छाप देते थे। चाननमल ने एक और गत्ते पर अखबार में छपे इन पत्रों और समाचारों को चिपकाकर पीछे की दीवार पर लटका लिया था। गत्ते के नीचे अपना नाम लिखकर उसने उसके आगे जर्नलिस्ट शब्द भी जोड़ दिया था। कैम्प के संचालक अब उसका खास खयाल रखने लगे थे।

अखवार के दफ्तर में शाम को जव वह शिकायतें या खवरें देने जाता तो वे उससे इज़्ज़त से पेश आते और यह वात चाननमल से छिपी न रहती कि उसकी खवरें ही नहीं, उसके लिखने की शैली भी पसन्द की जाती है।

चाननमल के सामने के तम्वू में विधाताराम आ वसा था। वह लायलपुर ज़िले के समुन्दरी गाँव में वतासे, मिसरी और गंदोड़े वनाया करता था जो आस-पास के इलाके में वहुत मशहूर थे। व्याह-शादियों में ये चीज़ें उसी से वनवाई जाती थीं। चाननमल से प्रार्थनापत्र लिखवा-कर विधाताराम ने चीनी का परमिट ले लिया और एक-दो दिन यहीं चीज़ें वनाईं लेकिन चीज़ें विकी नहीं। तव वह पास ही सब्ज़ीमंण्डी के चौराहे पर सुवह-सुवह जव वहाँ लोगों की वहुत भीड़ होती, हलवा-पूरी वनाकर वेचने लगा। थोड़े ही दिनों में उसका काम इतना वढ़ गया था कि कैम्प के कुछ लड़कों को उसने शागिर्द रख लिया। परमिट के अलावा उसे अव और भी चीनी खरीदनी पड़ती।

विभाजन होने से कुछ समय पहले की वात है। लायलपुर के देहातों में मुसलमानों के जत्थे लूटमार करते हुए चक्कर लगाने लगे थे। विधाताराम की तहसील में अधिक गाँव मुसलमानों के थे और उसके गाँव में हिन्दुओं के केवल चार घर थे। मुसलमानों के एक हथियारवन्द जत्थे ने उस गाँव को घेर लिया और गाँव के वुज़ुर्ग मुसलमानों के सम-झाने पर भी न टले। ग्यारह जवान लड़कियों और औरतों ने कुएँ में छलाँग लगा दी। गाँव के मुसलमानों की मदद से हिन्दुओं के वे चार परिवार करीव के एक सिक्ख गाँव में पहुँचा दिये गए। कुएँ में कूदने वाली लड़कियों में विधाताराम की तीन वेटियाँ भी थीं, जिनमें से दो ने कुएँ की रस्सी और पानी के वाहर निकली हुई ईंटें पकड़कर जान वचा ली थी। अगली सुवह गाँव के मुसलमानों ने उनको वाहर निकाला और लायलपुर शहर के कैम्प में पहुँचा दिया, क्योंकि वह गाँव जहाँ विधाताराम ने शरण ली थी, उसी रात खाली हो गया था। हिन्दू-सिक्खों के एक मीलों लम्बे काफ़िले को अपने गाँव के पास से गुज़रता देखकर

उस गाँव वाले भी गाय, भैंस, घोड़े, खच्चर ले और छकड़ों पर सामान लाद उस काफ़िले के साथ हो लिए थे। विधाताराम के गाँव के मुसलमानों ने लाहौर से लेकर दिल्ली तक सब शहरों के शरणार्थी कैम्पों के पतों पर दर्जन से अधिक खत लिखे, जिनमें से एक दिल्ली पहुँचकर विधाताराम को मिल गया। खत मिलते ही वह अपनी बेटियों को लिवा लाने के लिए बहुत उतावला हो उठा। लेकिन तब तक उसका व्यापार इतना चमक उठा था कि उसे छोड़कर जाना सम्भव नहीं था। लायलपुर और लाहौर के शरणार्थी कैम्पों के अधिकारियों को वह चाननमल से खत-पर-खत लिखवाकर आग्रह करता कि वे उसकी बेटियों को शीघ्र दिल्ली भिजवा दें।

विधाताराम की तरह औरों ने भी अपने-अपने काम शुरू कर दिए थे। बहुत-से शरणार्थियों की आय पहले से भी अच्छी होने लगी थी। छोटे-छोटे गाँवों और कसबों में जितने ग्राहक महीने-भर में भी उनकी दुकानों पर नहीं आते थे उतने इस बड़े शहर में एक-दो दिन में ही आ जाते थे। विधाताराम के साथ की झोंपड़ी में रहने वाले संतासिंह ने ताँगा चलाना शुरू कर दिया था। सुबह तड़के ताँगा जोतता और रात को लौटता तो उसकी जेबें नोटों और सिक्कों से भरी होतीं। सबका खयाल था कि किसी मुसलमान ताँगेवाले को कृपान का शिकार बनाकर उसने इस ताँगे को हथिया लिया है। मुसलमानों पर इक्के-दुक्के हमले होने लगे थे। मिले-जुले इलाकों से मुसलमान, खालिस मुसलमान आबादी वाले इलाकों में या पुराने किले के पाकिस्तानी कैम्प में जाने लगे थे। वे सामान को जामा मस्जिद के बाहर सस्ते भाव बेच जाते थे। कैम्प के कुछ शरणार्थी वहाँ से सस्ता सामान खरीदकर थोड़ा लाभ लेकर ज़रूरतमन्द शरणार्थियों में बेच देते। एक नौजवान नत्थासिंह को जामा मस्जिद के पास से घड़ीसाज़ी का सामान मिल गया। वह मिंटगुमरी में छापाखाने में गुरुमुखी का कम्पोज़ीटर था। उसने सदर बाज़ार में घड़ीसाज़ी का काम शुरू कर दिया। नत्थासिंह की जगह लोगों ने

उसका नाम घड़ियालसिंह रख दिया और वे उससे पूछते, "सरदारजी, आप तो घड़ियों को घड़ियाल बना देते होंगे।" नत्थासिंह हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्रता से जवाब देता, "पहली घड़ी सुधरने के लिए आएगी तो ठीक की बजाय बिलकुल ख़राब हो जाएगी और गालियाँ सुननी पड़ेंगी, दूसरी में कम गालियाँ पड़ेंगी, तीसरी में उससे भी कम और चौथी-पाँचवीं में शायद कुछ उजरत मिल जाए। इसी तरह एकाध महीने में घड़ियाँ ठीक करना सीख ही जाऊँगा।"

कैम्प में राजपुर रोड की तरफ़ वाले हिस्से में एक व्यक्ति गौरी-शंकर रहता था। उसके साथ चार छोटे भाई, तीन छोटी बहनें और उन सबके लगभग डेढ़ दर्जन बच्चे रहते थे। उनमें से कोई भी काम-धन्धा नहीं ढूंढ़ सका था। गौरीशंकर कोहाट में वकील था और वहाँ की म्यूनिसिपल कमेटी का मेम्बर था। उसके सब भाई और बहनोई कमेटी में छोटे-बड़े पदों पर काम करते थे। यहाँ आकर वे कोई नौकरी नहीं ढूंढ़ पाए थे और गौरीशंकर को ही उन सबकी रोटी का इन्तज़ाम करना पड़ रहा था। एक दिन अचानक उसने सिर मुँडवा लिया और भगवे कपड़े पहन, मोरीगेट के पास सड़क के किनारे छोटी-सी दरी पर कुछ शीशियाँ और डब्बियाँ जमाकर दवा-दारू बेचनी शुरू कर दी। वह अब अपने-आपको शंकर स्वामी कहने लगा था। मोमजामे के एक टुकड़े पर लाल रंग में लिखकर उसने पास के पेड़ पर लटका दिया, "यहाँ सब बीमारियों का इलाज ख़ुद ईश्वर करता है। सधुक्कड़ी के बीज, तपस्या के पत्ते, बुद्धि की जड़, विश्वास का आमला और मौन का शहद, इन तमाम चीज़ों को मिलाकर, ज्ञान की ओखली में डालकर सन्तोष के ऊखल से अच्छी तरह कूटो, ख़ूब बारीक हो जाए तो उसे इच्छा की छलनी में छानकर, श्रद्धा की हाँडी में डाल प्रेम के चूल्हे पर चढ़ा विरह की आग लगा दो। जब पक जाए तो उसमें कृतज्ञता की शक्कर डालकर सद्भावना की चम्मच से पापों के कण्ठ में डालो। ईश्वर चाहे तो रोग दूर हो जाएगा।" वह 'हर हर महादेव' और 'जय जगदम्बे' की पुकार

लगाकर लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता। नीम के पेड़ पर लटकते हुए मोमजामे पर लिखा हुआ उसका यह इश्तहार तो किसी की समझ में न आता, लेकिन उसके आगे छोटी-सी दरी पर सजी शीशियों और डिब्बों की संख्या बढ़ती जाती थी और अकसर उसके पास भी कोई-न-कोई मरीज़ बैठा ही रहता था।

चाननमल की झोंपड़ी के पिछवाड़े वाली झोंपड़ी में दो शरणार्थी परिवार रह रहे थे। उन्होंने कोई काम करना शुरू नहीं किया था और न ही वे काम-धन्धा ढूंढ़ने की कोशिश ही कर रहे थे। एक परिवार फ़ीरोज़चन्द का था जो सरगोधा से आया था। खेमे में पति-पत्नी अकेले रहते थे और उनका खेमा बेतरतीबी से रखे ट्रंकों और अन्य सामान से भरा हुआ था। उसमें मुश्किल से उन दोनों के लेटने के लिए जगह थी। फ़ीरोज़चन्द का कद ठिगना था। उसका चेहरा चौड़ा और गरदन बहुत मोटी थी। छोटा-सा धड़ कन्धों के दब जाने से और भी छोटा लगता था। उसकी लम्बी-लम्बी बाँहें घुटनों को छूती थीं और टाँगें भारी होने के कारण कुछ झुकी हुई-सी जान पड़ती थीं। उसका भावशून्य चेहरा पके कद्दू की तरह लगता था। कैम्प में वह सुबह और शाम चरखी की तरह घूमता रहता और दिन के समय कहीं बाहर चला जाता था। उसकी पत्नी लछमनदेई चौबीस घण्टे खेमे में बैठी पहरा देती रहती। वह बदन में पति की तिहाई थी और कद में सवाई। पहली नज़र में लगता कि वह मोम की मूरत है। केवल उसके खाँसने से यह भ्रम टूटता। खाँसते हुए वह ऐसी आवाज़ निकालती जैसे रेती से लोहा रगड़ा जा रहा हो। बलगम को बाहर गोबर पाथने की-सी आवाज़ से थूककर वह फिर मोम की मूरत की तरह बेजान-सी बैठ जाती। जायदाद और कारोबार के नुकसान के बारे में फ़ीरोज़चन्द ने कहानियाँ गढ़ रखी थीं। दूसरों की बात काटकर झट अपनी रामकहानी चालू कर देता था। उसके बात करने के ढंग से सबको विश्वास हो गया था कि वह हमेशा झूठ बोलता है। वह अक्सर मुसलमानों के धर्म और रहन-सहन में मीन-

मेख निकालता रहता। गांधीजी व पंडित नेहरू का नाम वह विगाड़कर ही लेता। वात-वात पर उनको गालियाँ देता हुआ वह कहता कि पंजाव को वरवाद करने के लिए गांधी ने जिन्ना से मिलकर साज़िश की है और अव पंजावियों को इसका वदला लेना चाहिए।

किसी पंजावी से वात करते हुए किसी सिन्धी का ज़िक्र आ जाता तो फ़ीरोज़चन्द कहता कि साँप और सिन्धी मिले तो पहले सिन्धी को मारो। किसी हिन्दू से वातें करते हुए सिक्ख का ज़िक्र आता तो फ़ीरोज़-चन्द कहता, अगर सिक्ख और साँप मिले तो पहले सिक्ख को मारो। अपने ज़िले के आदमी से वातें करते हुए लाहौर के हिन्दू का ज़िक्र आता तो झट कह उठता कि अगर साँप और लाहोरिया मिले तो पहले लाहोरिये को मारो। रावलपिंडी की तरफ़ के लोगों को वह 'खाऊ घप भापे' कहता, फ्रन्टियर के लोगों को 'दमड़ीमार' और वलोचियों को 'तिड़ीमार'। वह स्त्रियों का ज़िक्र वहुत गन्दे तरीके से करता। सुवह और शाम कैम्प में चक्कर काटता हुआ वह औरतों को घूर-घूरकर देखता। इसी कारण सव लोगों ने उसका नाम 'झाकू' रखा दिया।

चाननमल के पिछवाड़े झोंपड़ियों में काम-धन्धा न ढूँढ़ने वाला दूसरा शरणार्थी परिवार लाहौर से आया लाला सालिगराम का था। वह और उसकी पत्नी भगवती १६३१ के आन्दोलन में विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग करते हुए पकड़े गए थे और दो-दो साल जेल काट चुके थे। वे सदा कांग्रेस के सदस्य रहे थे। जेल जाने और भारत को आज़ाद करवाने में अपनी कुरवानियों का वे वार-वार ज़िक्र करते।

सालिगराम तो इसके सिवा और कोई वात नहीं करता था। अधिकतर वह मुँह ढाँपकर झोंपड़ी में लेटा रहता। लाहौर में सूतमण्डी में जव मुसलमान फ़ौजियों ने आग लगाई तो सालिगराम का सारा परि-वार सामान लेकर डी० ए० वी० कॉलेज के कैम्प में चला गया ताकि रेलगाड़ी से दिल्ली पहुँचा जाए। लेकिन सालिगराम एक सूटकेस में सारे गहने ले हवाई जहाज़ से दिल्ली आने के लिए हवाई अड्डे जा

पहुँचा। वहाँ हवाई जहाज़ में चढ़ने से पहले उससे सब गहने छीन लिये गए। बाकी सामान रेलगाड़ी से सुरक्षित आ गया था। लेकिन वह अपने हवाई जहाज़ से आने पर बहुत दुखी था। सालिगराम को गरीबों से घृणा थी। उसके विचार में कोई भी गरीब आदमी न तो शक्तिशाली हो सकता है और न ही सम्भ्रान्त। इसलिए गरीब हो जाने पर वह स्वयं को बेहद बेबस और दीन महसूस कर रहा था। ऐसा लगता था जैसे वह अपने-आपसे भी घृणा करने लगा है। उसकी आँखें हरदम फटी-फटी रहती थीं। वह चोरों की तरह सँभल-सँभलकर कदम रखता था। उसकी आवाज़ में चापलूसी आ गई थी। पत्नी बहुत चाहती कि उसका पति पहले की तरह नोकदार गांधी टोपी पहने, लेकिन वह उसे गोल बनाकर ही पहनता था।

सालिगराम के साथ उसकी दो सालियाँ भी बाल-बच्चों सहित रहती थीं। उन्होंने भी अपने सब गहने सालिगराम को दे दिए थे ताकि हवाई जहाज़ के द्वारा पाकिस्तान से बाहर सुरक्षित निकल जाएँ। सालिगराम हवाई जहाज़ से अपने आने के बारे में कभी भूल जाता तो वे झट इसका ज़िक्र छेड़ देतीं। उनके पति दबी ज़बान में कहते कि अगर गाड़ी से सामान सही-सलामत आ गया तो हवाई जहाज़ से कैसे रुक सकता था। उसकी नीयत पर उनके इस तरह सन्देह करने से सालिगराम बहुत दुखी होता और उसे अपने-आपसे और भी नफ़रत होने लगती।

सालिगराम की पत्नी भगवती कैम्प की कांग्रेस कमेटी में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रही थी और कैम्प के इन्तज़ाम में भी हस्तक्षेप करने लगी थी। फ़ीरोज़चन्द ने वहाँ हिन्दू महासभा बना ली थी, जिसका प्रधान वह स्वयं बन गया था। हिन्दू स्वयंसेवक संघ की एक शाखा वहाँ भी खुल गई थी। फ़ीरोज़चन्द शाखा में शामिल होने वाले लोगों का उत्साह बढ़ाता और गांधी, नेहरू और कांग्रेस को गालियों के साथ-साथ लोगों को इस संस्था की सुबह-शाम की परेडों में शामिल होने के लिए प्रेरित करता।

शहर में शरणार्थियों की भीड़ बढ़ती जा रही थी और उन्हें रहने के लिए कैम्पों, धर्मशालाओं, स्कूलों वग़ैरह में भी जगह नहीं मिल रही थी। 'मुसलमानो, दिल्ली खाली करो' का नारा और भी तेज़ हो गया था। हिन्दू इलाके में किसी मुसलमान के बन्द मकान का पता लग जाता तो उसका ताला तोड़ एक-एक कमरे में कई शरणार्थी जा बसते।

शरणार्थियों की दर्जनों रेलगाड़ियाँ हर रोज़ शहर में आ रही थीं। डिब्बों में ठसाठस भरे, छतों पर बैठे और दरवाज़ों से लटकते इन शरणार्थियों का आनेवाला हर नया दल पहले से भी अधिक खराब हालत में दिल्ली पहुँच रहा था। शहर-भर में फैलते जा रहे हाहाकार करते हुए इस जनसमूह को जब सिर छिपाने के लिए कोई स्थान न मिल पाता तो गांधीजी के विरुद्ध गालियों की संख्या बढ़ती जाती और 'मुसलमानों को पाकिस्तान मार भगाओ' का नारा और भी ऊँचे स्वर में लगाया जाता।

सुबह-सुबह हिन्दू सेवक संघ की शाखा मैदान के एक कोने में लगती तो पिछले दिन की खबरें बढ़ा-चढ़ाकर सुनाई जातीं, "मुसलमानों ने जामा मस्जिद के पास एक हिन्दू की पीठ में छुरा घोंप दिया है। पुलबंगश में मुसलमानों ने एक हिन्दू लड़की को छिपा रखा है, पाकिस्तान भिजवाने की कोशिश में हैं और पुलिस उस लड़की का पता लगाने में मदद नहीं कर रही है। फाटक हबशखाँ में मुसलमानों ने बम इकट्ठे कर रखे हैं और उन्होंने शहर को तहस-नहस कर देने की धमकी दी है। नेहरू चाहते हैं कि मुसलमानों को आत्मरक्षा के लिए हथियार दे दिए जाएँ, लेकिन सरदार पटेल नहीं मानते।" हिन्दू सेवक संघ के संचालकों से सुबह-शाम इस किस्म की खबरें सुनकर लोग शरणार्थियों और शहर के अन्य हिन्दुओं में फैलाते। पहले-पहल तो लोगों को इन पर विश्वास नहीं आता था, क्योंकि ये खबरें कांग्रेस-विरोधी अखबारों तक में नहीं छप रही थीं। लेकिन इन खबरों को बढ़ा-चढ़ाकर दोहराया जाता रहा और लोगों को बदला लेने के लिए उकसाया जाता रहा। फ़ीरोज़चन्द की हिन्दू महासभा में सदस्यों और सुबह-शाम हिन्दू सेवक संघ की

शाखाओं में सम्मिलित होने वालों की संख्या बढ़ने लगी। कोई सालिगराम से कहता, 'लालाजी उठो, एक सूटकेस खरीद लाओ और उसे मुसलमानों के गहनों से भरने की तैयारी करो।' कोई विधाताराम से कहता कि पास के पुल बंगश से एक-दो दिन में मुसलमानों को भगाया जा रहा है, यहाँ कितनी देर रहोगे ? सामान बाँधकर तैयार रहो। लेकिन बाबा निहालसिंह से जब कोई कहता कि अपने ग्यारह बेटों का बदला लेने की तैयारी करो तो वह 'सत नाम वाहेगुरु बोल' कहता हुआ उन्हें ऐसी बातों के लिए मना करता।

फ़ीरोज़चन्द लूटमार के लिए पूरी तरह तैयार था। वह हरदम ऐसी बातें सोचता रहता कि मुसलमानों ने घरों में कहाँ-कहाँ कीमती चीज़ें और रुपया छिपाया होगा। बाकी लोग जब अन्धाधुन्ध लूट मचा रहे होंगे, वह कीमती चीज़ों की तलाश कैसे और कहाँ-कहाँ करेगा। मकान को बाहर से देखकर अन्दाज़ा कैसे लगाएगा कि इसमें कितना माल है। हिन्दू महासभा में कौन-कौनसे उत्साही लड़के ऐसे हैं जिन्हें वह अपने काम में ला सकता है। उसे १६१६ के मार्शल लॉ के दिनों में प्रचलित गीत की पहली कड़ी याद आ गई—"गड दियो (गाड़ दो) लड़ाई दिया (की) लाल झंडियाँ—मार-मार गोरे करों मेमाँ रंडियाँ।" इसे बदलकर उसने "गड दियो लड़ाई दिया लाल झंडियाँ—मार-मार मुल्ले (मुसलमान) करो मुसलियाँ रंडियाँ" बना लिया था। कैम्प के बच्चों को उसने यह सिखा दिया और वे आसपास चक्कर लगाते हुए इसे गाते फिरते थे।

पाँच

नियाज़ सैयदी के साथ कोहली कूचा कादिरयार में पहुँचा तो उसने देखा कि वहाँ मुसलमानों में इतनी दहशत फैली हुई है कि उसका अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। जिस बाज़ार से इस मुहल्ले को रास्ता जाता था वह अधिकतर मुसलमानों का था। उस बाज़ार के हिन्दुओं की दुकानें पिछले कुछ महीनों से बन्द थीं। मुहल्ले के दो तरफ़ मुसलमानों की गलियाँ थीं। केवल एक तरफ़ हिन्दू आबादी थी। हिन्दुओं के मकान मुसलमानों के मकानों से दो-तीन मंज़िल ऊँचे थे।

इन्सान के दिल में जब असुरक्षा की भावना घर कर जाती है तो उसे चारों तरफ़ डर-ही-डर नज़र आने लगता है और सुरक्षा के सारे साधन बिछाए जाल की तरह दीख पड़ते हैं। खतरा कभी ज़मीन फाड़कर उभरता लगता और कभी आसमान से बरसता हुआ। बन्द खिड़कियों और दरवाज़ों से खतरा झाँकने लगता है और दीवार में बनी दरारों के बीच से घूरता हुआ महसूस होता है।

कूचे का लोहे का फाटक बन्द था। उसे खुलवाकर जब नियाज़ कोहली के साथ अन्दर दाखिल हुआ तो दर्जनों आँखें शक और भय से घूर-घूरकर उसे देखने लगीं। कोहली ने हाथ उठा-उठाकर उनको आदावअर्ज़ कहा, ताकि वे यह समझें कि उसका वहाँ आना कोई असाधारण बात नहीं। मुहब्बत और दोस्ती की भावना से पुर वाक्यों के साथ

अपनी आदत के अनुसार 'खुदा की कसम', 'अल्हदलिल्ला', 'सुभानअल्लाह' आदि शब्द जोड़कर कोहली ने उनसे अपनी दूरी को कुछ कम किया। उन्होंने भी देखा कि उसके हाथ खाली हैं और कमीज़ और पतलून की जेबों में कोई ऐसी-वैसी चीज़ नहीं तो उनका भय कम हो गया। नियाज़ ने कोहली के नाम से नहीं, जौहर चकवाली के नाम से परिचय कराया और वताया कि वह उर्दू से ही नहीं मुसलमानों से भी वहुत मुहव्वत करते हैं और इस कड़े वक्त में हमारी मदद करने के लिए आये हैं।

मुहल्ले की दीवारों पर रंगदार चाक से लिखे हुए नारे 'पाकिस्तान लेकर रहेंगे', 'पाकिस्तान हमारा पैदाइशी हक है' वग़ैरह अव जगह-जगह मिटे हुए नज़र आ रहे थे। फाटक के अन्दर दाखिल होते ही हरे रोगन से मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था, 'हिन्दी हैं हमवतन हैं हिन्दोस्ताँ हमारा'। फाटक पर पहरा दे रहे लोगों के पास वहुत-सी सफ़ेद गांधी टोपियाँ और राष्ट्रीय संघ की एक काली टोपी भी थी, जिन्हें परे के वाज़ार में जाने वाले आवश्यकता पड़ने पर पहनकर जाते थे। यह मुहल्ला मुस्लिम लीग का गढ़ हुआ करता था। इस मुहल्ले की मुस्लिम लीग के अधिकांश नेता पाकिस्तान वनने से पहले ही वहाँ से चले गए थे। वाकी के अव पुराने किले के कैम्प में जा चुके थे। लीग के पदाधिकारियों में केवल नसरउल्लाहखां रह गया था, जिसकी यहाँ वहुत-सी जायदाद थी। वह रामपुर का राजपूत मुसलमान था। उसने अपने नाम के आगे से 'शेख' हटाकर 'नसरउल्लाह चौहान' कहलवाना शुरू कर दिया था। वह गांधी टोपी और खद्दर का कुरता-पाजामा पहनने लगा था। पाकिस्तान वनने की घोषणा होते ही उसने 'जमीयते-उलमा' को उनके अखवार के लिए दस हज़ार रुपये का चैक भेज दिया था।

मुहल्ले के लोगों के पास हरे रंग के वहुत-से डिब्वे थे, क्योंकि यह मुस्लिम लीग के झंडे का रंग था। इस रंग से कोहली ने फाटक के वाहर दोनों तरफ़ उर्दू और हिन्दी में 'आज़ाद भारत ज़िन्दावाद' और 'क़ौमी नारा वन्दे मातरम्' लिखवा दिया। फाटक के ऊपर से लीग का झंडा

उतर चुका था। मुहल्ले के सब ऊँचे-ऊँचे मकानों पर कांग्रेस का राष्ट्रीय झंडा फहरा दिया गया। फिर भी मुहल्ले के मुसलमानों का डर कम होने की वजाय वढ़ता जा रहा था। मुसलमानों के कत्ल किए जाने की खबरें जो उसने वहाँ सुनीं, उनका वाहर किसी को पता तक नहीं था। पहले तो कोहली ने दवी ज़वान में कहा कि ये खबरें सच नहीं। लेकिन इससे उनको कोहली की ईमानदारी पर ही शक होने लगा। अव दरीवा में मुसलमानों के घर लुटने की खवरें फैलतीं या कोई सहमा हुआ मुसलमान चीखता हुआ फाटक के अन्दर घुस आता कि चावड़ी वाज़ार से हिन्दुओं ने आकर हौज़काज़ी पर कुछ मुसलमानों को कत्ल कर दिया है, तो कोहली साम्प्रदायिक हिन्दुओं को औरों से भी अधिक भारी-भारी गालियाँ सुनाता।

मुसलमानों में असुरक्षा की भावना इसलिए भी वहुत वढ़ गई थी कि लगभग सभी मुसलमान सरकारी अधिकारी पाकिस्तान चले गए थे। आस-पास की सव पुलिस चौकियों पर अव हिन्दू-सिक्ख सिपाही ही रह गए थे। शान्ति वनाए रखने के लिए फ़ौजी गश्त लगती तो उसमें भी हिन्दू-सिक्ख ही नज़र आते। कोहली को यह जानने में देर न लगी कि उनमें फैली असुरक्षा की भावना का एक कारण एकत्रित हथियार थे जो उन्होंने साम्प्रदायिक तनाव के दौरान इकट्ठे कर लिए थे। इन हथियारों का अव कोई उपयोग नहीं रहा था। फ़ौज और पुलिस के सामने इन हथियारों का कोई महत्त्व नहीं था। लेकिन उन्हें फेंक देना या नष्ट करना सरेआम कपड़े उतारकर नंगे हो जाने की तरह लग रहा था।

अगली सुवह दरियागंज में डॉक्टर अंसारी की कोठी में 'अंजुमने-तरक्कीए-उर्दू' के मुख्य दफ्तर के नष्ट कर दिए जाने की खवर आग की तरह फैल गई। डॉक्टर अंसारी वहुत प्रसिद्ध राष्ट्रीय मुसलमान थे। उनकी कोठी में गांधीजी कई बार आकर ठहरे थे। 'अंजुमने तरक्कीए-उर्दू' के सरपरस्तों में शिक्षा-मन्त्री मौलाना आज़ाद भी थे। दफ्तर में वहुमूल्य किताबों और मसौदों के जलाए जाने और वहाँ से ही नहीं, सारे

दरियागंज से मुसलमानों को पुराने किले के कैम्प में ज़बरदस्ती भेजे जाने की खबरों से उस मुहल्ले के मुसलमानों के दिल दहल गए। बहुत-से मुस्लिम परिवार जितना सामान ले जा सकते थे इक्के-ताँगों में लादकर पुराने किले के पाकिस्तानी कैम्प में जाने लगे। पाकिस्तान के बजाय उत्तर प्रदेश के कसबों और शहरों में स्थिति ठीक होने पर चले जाने वाले मुसलमानों को भी पुराने किले के कैम्प में ही जाना पड़ता था, क्योंकि स्टेशन पर और उसके चारों तरफ़ शरणार्थी डेरा डाले पड़े थे। उधर से किसी मुसलमान परिवार का सही-सलामत गुज़रना सम्भव नहीं था। सबसे पहले रेलवे स्टेशन से ही मुसलमानों के कत्ल किये जाने की खबरें आई थीं। मुसलमान मुसाफ़िरों को चलती गाड़ी से गिरा दिए जाने की अफवाहें बहुत फैल रही थीं।

कोहली को यह जानकर बहुत निराशा हुई कि उनमें से कोई भी हवाई जहाज़ से पाकिस्तान नहीं जाना चाहता। खाते-पीते मुसलमान परिवारों को कोहली ने सुझाव भी दिया, लेकिन वे न माने। आतंक के उस वातावरण में उन्हें दिल्ली गेट से पुराने किले के सीधे रास्ते के अलावा किसी और तरफ़ जाते हुए डर लगता था—खासकर जवान लड़कियों और औरतों के साथ, जिन्हें सबसे पहले वे सुरक्षित स्थान पर भेजना चाहते थे। यह देखकर उसे और भी निराशा हुई कि वे सामान को मकानों में बन्द करके चाबियाँ या तो अपने साथ ही लिये जा रहे हैं या पड़ोसियों को दिये जा रहे हैं। मिली-जुली आबादी वाले इलाकों से इस मुहल्ले में चले आए मुसलमान दोस्तों को वे मकान का कुछ हिस्सा रहने के लिए दे जा रहे थे। एक मकान कोहली को भी बहुत पसन्द आया। घुसते ही एक पुरानी-सी दीवार और कच्ची ड्योढ़ी थी, लेकिन अन्दर महल-का-महल था। संगमरमर के टायल्स और फव्वारों वाला एक छोटा-सा बाग था। उसमें एक तरफ़ छोटी-सी मस्जिद थी, जिसमें घर की औरतें नमाज़ पढ़ती थीं। उसके साथ ही ज़नानखाने का बड़ा हॉल था। ड्योढ़ी के साथ सामने की तरफ़ बड़ा-सा दालान और बैठक थी, जिसमें कीमती कालीन,

फ़रनीचर और सजावट का सामान वड़ी खूवसूरती से सजा हुआ था। कुर्सियों और सोफ़ों पर रखी गद्दियों, तिपाइयों और मेज़ों पर विछे रेशमी कपड़ों पर खूवसूरत कढ़ाई की हुई थी। मकान को छोड़कर चले जाने वालों की कलात्मक रुचि पर उसे रश्क आ रहा था। मकान का मालिक नवावज़ादा वरकत उल्लाह जव मकान को वन्द करके जाने लगा तो कोहली ने कहा कि उनके लौटने तक वह मकान की ज़िम्मेदारी लेने को तैयार है। नवावज़ादे की आँखें पपोटों से वाहर उभर आईं। उसके मुँह से ऐसी आवाज़ निकली जैसे अचानक आईने के हज़ार टुकड़े हो जाएँ। कोहली फ़ैसला न कर पाया कि नवावज़ादे की हँसी में निराशा अधिक थी या क्रोध।

कोहली को सूझ नहीं रहा था कि क्या करे। हाथ से समय निकल जाने का उसे वहुत अफ़सोस रहा था। उसे पता था कि ऐसे मुसलमान परिवारों की संख्या कम नहीं जो हवाई जहाज़ द्वारा पाकिस्तान जाना चाहते हैं और जो इन्तज़ार में हैं कि कोई उनकी मदद करे। ऐसे भी मुसलमान अवश्य हैं जो पुराने किले के कैम्प में जाते हुए अपने घरों और सामान को उसके ज़िम्मे छोड़ जाने को तैयार हों। वन्द मकानों की चावी अधिकार में होने पर भी इस मुहल्ले से सामान निकाल ले जाना भी इतना आसान नहीं, यह कोहली जानता था। कोहली ऐसे मुसलमान दोस्तों और परिचितों के नाम याद करने लगा जो हवाई जहाज़ द्वारा पाकिस्तान जाने को तैयार हो सकते हैं, या जिनके पड़ोस में ऐसा कोई नहीं जिसे घर की चावियाँ दे जा सकें। उसे वशीर अहमद का खयाल आया। मोरी गेट वाज़ार में उसकी छः दुकानें थीं और वहीं उसका बड़ा-सा खूवसूरत मकान था। उसे मुहम्मद मुनीर का भी खयाल आया जो नावल्टी सिनेमा के पास रहता था। इसी तरह सोच-सोचकर उसने दर्जन के लगभग परिचित मुसलमानों की एक सूची वनाई।

कूचा कादिरयार में हिन्दू आवादी वाले इलाकों से आये मुसलमान अधिकतर मुहल्ले के वीच एक वड़े-से चौक में वैठे रहते थे। आस-पास के

घरवालों ने उनके लिए एक-एक दो-दो कमरे खाली कर दिए थे जिनमें उन्होंने सामान रखा दिया था और वहीं परदानशीन औरतें रहती थीं। उस चौक के बीच में एक पीपल के पेड़ का तना ही बच रहा था। यह मुहल्ला अकबर और शाहजहाँ के समय आबाद हुआ था और यहाँ कश्मीर से पंडित, पंजाब से खत्री, पूरब से कायस्थ और राजपूताना से राजपूत आ आबाद हुए थे। बाद के मुगल बादशाहों के ज़माने में इस मुहल्ले के निवासी मुसलमान हो गए थे। यह पीपल का तना तब विशाल पेड़ था। तने की मोटाई से उसकी प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता था। तने के चारों तरफ़ डेढ़ गज़ ऊँचा ईंटों का बहुत पुराना थड़ा था। ऐसे लगता था कि मुसलमान होने के बाद पेड़ के नीचे स्थापित मूर्तियों को तोड़ने की बजाय ईंटों में चुन दिया गया था। उस थड़े में कहीं-कहीं काले पत्थर नज़र आते थे। तीन-चार महीने हुए जब हिन्दू मुहल्लों से मुसलमान परिवार यहाँ आकर शरण लेने लगे तो उन्होंने इस पीपल की घनी छाँह के नीचे ही आश्रय पाया। लेकिन शीघ्र ही हिन्दुओं के विरुद्ध उनका क्रोध इतना बढ़ गया कि उन्होंने इस पीपल के पेड़ की सब शाखाएँ काट दीं। वे तने को भी काटने के लिए थड़ा तोड़ देना चाहते थे, लेकिन मुहल्ले वालों ने उन्हें ऐसा करने न दिया। उस तने से नई कोपलें, डालियाँ और टहनियाँ निकलतीं तो फ़ौरन ही तोड़ दी जातीं। थड़े के एक तरफ़ कटी हुई डालों का अभी तक इतना बड़ा ढेर लगा हुआ था कि उधर से रास्ता बन्द हो गया था। उससे थोड़ा-सा परे ईंटों के दो बड़े-बड़े चूल्हे बने हुए थे, जिन पर देगें चढ़ी रहतीं। इसी पीपल की लकड़ी कई महीनों से ईंधन के काम में लाई जा रही थी।

इस थड़े पर छाँव करने के लिए अब दो बड़ी चादरों को सीकर रस्सियों से आस-पास के छज्जों से बाँध दिया गया था। बाहर से आए मुसलमान दिन-रात वहीं पड़े रहते। बहुतों को वहाँ आए तीन-तीन महीने हो गए थे। उनका खयाल था कि कुछ दिनों में वे अपने घरों को लौट जाएँगे और इसीलिए वे अपना सामान भी पीछे छोड़ आए थे। दिन

महीनों में बदल गए। पहले-पहल मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता उनके राशन आदि का प्रबन्ध कर दिया करते थे, लेकिन अब वे सब चले गए थे और उनको खुद ही खाने-पीने का सामान खरीदना पड़ता था, जिससे उनकी मुश्किल बढ़ गई थी। जैसे-जैसे इस मुहल्ले के लोग पाकिस्तान जाने के लिए पुराने किले के कैम्प में जाने लगे, वैसे-वैसे ये आये हुए लोग भी पाकिस्तान जाने के इच्छुक हो उठे, लेकिन इनका सब सामान इनके घरों में ही छूट गया था। शुरू-शुरू में कभी-कभी वे बहुत ज़रूरत की चीज़ें निकाल लाया करते थे, लेकिन अब कई हफ़्तों से अपने घर जाने की हिम्मत नहीं होती थी। अपना सामान इस तरह छोड़कर पाकिस्तान जाने के लिए उनमें से कोई भी तैयार नहीं था।

उस सुबह आँख खुलते ही डॉक्टर अंसारी की कोठी की तबाही की खबरें मिलीं और साथ-साथ यह भी पता चला कि मशहूर क़ौमपरस्त मुसलमान मौलवी अब्दुल हक़ और मौलाना मुहम्मद जमाम पाकिस्तान जाने के लिए पुराने किले जा पहुँचे हैं। दस बजे के करीब सेक्रेटेरियेट के साउथ ब्लाक के पीछे काँटेदार तारों के अन्दर पाकिस्तान जाने वाले मुसलमान सरकारी अधिकारियों के लूटे जाने की उन्हें सूचना मिली। कुछ देर बाद गोल मार्केट के आस-पास के सरकारी क्वार्टरों से उन मुसलमान अधिकारियों के लुटने की खबर आई जिन्होंने हिन्दुस्तान रहने का फ़ैसला भारत सरकार को लिखकर दे दिया था। दोपहर के वक्त शोरा कोठी में मुसलमानों की एक पूरी गली के जला दिए जाने की अफ़वाह आ पहुँची थी। उससे परे जवाहर नगर में मुसलमानों के इक्के-दुक्के घर कुछ दिन हुए लुट चुके थे। उस दिन की खबरों से पाकिस्तान जाने की इच्छा के साथ-साथ पीछे छोड़ आए सामान की चिन्ता भी बढ़ गई। वे पीपल के थड़े पर घुटनों में सिर दिए बैठे सोच में डूबे रहे। कोई कहता कि अगर उसका घर, जिसने कांग्रेस के नाम पर सारी उम्र जेलों में गुज़ारी, लूटा जा सकता है तो किसका घर बच रहेगा ! कोई कहता कि अगर फ़ौजी हैडक्वार्टर के साउथ ब्लाक में फ़ौज के देखते-देखते लूट

मच सकती है तो यहाँ भी लूटने वाले आ सकते हैं। कोई कहता, सामान लाने के लिए हिन्दुओं के भेस में जाएँ भी तो अपने मुहल्ले तक पहुँच सकते हैं, लेकिन वहाँ तो पहचान लिए जाएँगे।

नियाज़ सैयदी से अच्छी तरह परामर्श लेकर उन मुसलमानों ने कोहली से पुछवाया कि क्या वह उनका कुछ सामान लाने में मदद कर सकेगा ? कोहली इस शर्त पर राजी हो गया कि सामान की पूरी सूची के साथ एक चिट्ठी भी उसे दी जाए ताकि वह पूछने वाले को बता सके कि सामान उसके मालिक के लिए ही ले जाया जा रहा है।

हर आदमी कोहली की मिन्नतें कर रहा था कि वह पहले उसका सामान ला दे। सोच-समझकर कोहली ने यह फ़ैसला किया कि जिन इलाकों में खुली आबादी है और जहाँ खाते-पीते लोग रहते हैं, वहाँ से सामान लाने का काम पहले शुरू किया जाए। उसने पहले सिविल लाइन्स, कश्मीरी गेट आदि के इलाके से सामान लाने की कोशिश करने का वायदा किया। जो मुश्किलें उसने बतलाईं उनसे वे सब सहमत थे और मुश्किलों के होने पर भी उसकी कोशिश के लिए वे बहुत कृतज्ञता महसूस कर रहे थे।

उस मुहल्ले में आने के तीसरे दिन सुबह जब कोहली वहाँ से निकला तो उसके हाथ में नौ मकानों की चाबियों के गुच्छे, नौ सूचियाँ और नौ चिट्ठियाँ थीं। मुहल्ले से विदा लेते समय परदे में से औरतें कह रही थीं, "भाईजान, सिलाई की मशीन का ढक्कन फिट नहीं बैठता, उसको नीचे से उठाना।" "भाईसाहब, रेडियो का स्विच ध्यान से निकालना, करेंट मारता है।" "बेटे, ट्रंक की चाबी घुमाने से पहले उसे इतना अन्दर डाल देना कि पीछे से दीखने लग जाए।" "अज़ीज़, टाट उठाने के बाद मिट्टी की तह को हटाओगे तभी सेफ़ नज़र आएगी !"

छः

चाननमल के आस-पास चार-पाँच चिट्ठियाँ लिखने वाले और आ बैठे थे। सड़क पर बैठकर पैसे-पैसे के लिए चिट्ठियाँ लिखना कोई स्थायी रोज़गार भी नहीं जान पड़ रहा था। लाहौर से आए उर्दू दैनिक 'देश भगत' को एक सह-सम्पादक की ज़रूरत थी। उसकी भेजी खबरें और 'सम्पादक के नाम पत्र' उस अखबार में छपते रहे थे। उसने वेतन साठ रुपए माँगा था। अंग्रेज़ी खबरों का उर्दू अनुवाद भी उसने ठीक-ठीक कर दिया था। इस तरह उसे दैनिक समाचारपत्र 'देश भगत' में नौकरी मिल गई। पहले दिन ही पता लगने पर कि साठ रुपये का वेतन तो हॉकरों और चपरासियों को मिलता है, उसको अपनी जल्दबाज़ी पर दुःख हुआ, लेकिन ख़याल आया कि थोड़ा अनुभव हो जाने पर यहाँ वेतन न बढ़ा तो वह किसी और अख़बार में जगह पाने की कोशिश करेगा।

इस समाचारपत्र के दफ्तर में पहली बात उसने यह सीखी कि ख़बर पढ़कर उसी में से शीर्षक बना देना गलत है। अनुवाद करते समय और शीर्षक देते हुए समाचारों को तोड़-मरोड़कर ही नहीं दिया जाता वरन् कई बार खबर में से कोई और ख़बर निकाल लेना ज़रूरी होता है। उसे पहले दिन ही पता चल गया कि इस अखबार में नौकरी बनाए रखने के लिए यह ज़रूरी है कि समाचारों को इस तरह पेश किया जाए कि वे लोगों को मुसलमानों के विरुद्ध उकसाएँ और उनकी नज़रों में कांग्रेसी

नेताओं को गिराएँ।

'गांधी ने एक और हाँकी' या 'गांधी की आँखें कभी नहीं खुलेंगी' शीर्षक देकर गांधीजी के वक्तव्य को तोड़-मरोड़कर पेश किया जाता। पंडित नेहरू के भाषण की रिपोर्ट आती कि उन्होंने वायदा किया है कि एक-एक शरणार्थी को आवाद किया जाएगा और पाकिस्तान में रह गए हिन्दू-सिक्खों को सुरक्षित निकाल लाने की पूरी-पूरी कोशिश की जाएगी। इस समाचार का शीर्षक दिया जाता 'नेहरू की डींग'। साथ ही जोड़ दिया जाता कि जब पंडित नेहरू ने शरणार्थियों को उक्त आश्वासन दिया तो जलसे में से आवाज़ें आने लगीं कि तुम झूठे हो। भाषण में पंडित नेहरू की शरणार्थियों और अन्य हिन्दुस्तानियों से शान्त रहने की अपील का ज़िक्र आता तो यहाँ अपनी तरफ़ से लगा दिया जाता कि इस पर जलसे में इतना शोरोगुल और विरोध हुआ कि पं० नेहरू मुश्किल से अपना भाषण जारी रख सके।

पाकिस्तान में हो रहे अत्याचारों की खबरें पूरे-पूरे पृष्ठ पर उत्तेजक शीर्षकों के साथ दी जातीं और कत्ल किये गए हिन्दुओं और अपहृत स्त्रियों की संख्या बढ़ा-चढ़ाकर दी जाती। ये समाचार प्रामाणिक नहीं होते थे, शरणार्थियों से सुनी बातों पर आधारित होते थे। पाकिस्तान में हिन्दुओं के मुसलमान पड़ोसी या सरकारी कर्मचारियों द्वारा हिन्दुओं की जान-माल की रक्षा करने और उन्हें सुरक्षित कैम्पों में भेजने के लिए जो यत्न हो रहे थे, उनका कहीं ज़िक्र नहीं किया जाता था। भारत सरकार पाकिस्तान में हवाई जहाज़ और फ़ौजी लारियाँ भेजकर हिन्दू-सिक्खों को भारत लाने के लिए जो कुछ कर रही थी, उन कार्यों का ज़िक्र करना वर्जनीय था। शरणार्थियों के लिए जगह-जगह कैम्प खोले जा रहे थे और जो कुछ उनके लिए बहुत-सी कठिनाइयों के रहते हुए भी किया जा रहा था, वह भी अखबार में स्थान नहीं पा सकता था। उसकी जगह सरकारी गलतियों पर उत्तेजक शीर्षक लगाकर छापा जाता था। जिस दिन कोई ऐसी खबर नहीं होती, गढ़ ली जाती। पूर्वी पंजाब में मुसलमानों की

हत्या और गाड़ियों को रोककर लूटे जाने की खबरें छपतीं, लेकिन उनसे पहले जोड़ दिया जाता कि मुसलमानों के पास वहुत हथियार थे और उन्होंने हिन्दुओं पर हमला किया था। इसी कारण हिन्दू-सिक्ख आत्मरक्षा के लिए हथियारों और कृपाणों का प्रयोग करने पर मजबूर हो गए। ऐसी खवरें ही अक्सर वड़े-वड़े शीर्षकों के नीचे छपती रहतीं कि मुसलमानों के काफिले रास्ते में हिन्दू-सिक्ख गाँव लूट रहे हैं, या रेलगाड़ी में पाकिस्तान जा रहे मुसलमान हिन्दू लड़कियों को अगवा कर रहे हैं।

एक बात, जिस पर चाननमल को पहले-पहल अचरज हुआ, वह सेक्स और अपराधों की खबरों को बड़े-वड़े शीर्षक सहित छापा जाना था। इस तरह की नई खवर न होने पर किसी ऐसी ही पुरानी खवर को थोड़ा-वहुत परिवर्तित करके छाप दिया जाता था। ऐसी खवरों पर शीर्षक दिये जाते—'हरिद्वार में लड़की अपने प्रेमी के साथ भाग गई', 'एक साधू के भेस में प्रेमी रंगे-हाथों पकड़ा गया', 'देहली स्टेशन पर हीर-राँझा का नाटक', 'एक दस साल की लड़की पर वलात्कार'। इन खवरों को साम्प्रदायिक रंग देकर खूब उछाला जाता—'एक सिक्ख हिन्दू युवती को सरेवाज़ार ले भागा', 'एक सिन्धी शरणार्थी ने औरतों को लूट लिया' आदि।

हिन्दी और अंग्रेज़ी अखबार भी अव कांग्रेस-विरोधी और मुसलमानों के अत्याचारों की खबरों को बड़े-बड़े शीर्षकों के साथ प्रकाशित कर रहे थे। एक अंग्रेज़ी समाचारपत्र ने बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता से लाभ उठाने के लिए और शरणार्थियों में अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए ऐसा करना शुरू किया तो अन्य समाचारपत्र भी इस डर से कि कहीं पीछे न रह जाएँ खवरों को वैसा ही रंग देने लगे। लेकिन उर्दू अखवारों में इस होड़ ने और ही रूप धारण कर रखा था। एक शरणार्थी, जो लाहौर में उर्दू के एक अखवार का संवाददाता था, दिल्ली से नया अखबार 'आज़ाद भारत' निकालने लगा। उसके अखबार में हर रोज इस तरह की खबरें होतीं—'जामा मस्जिद के इलाके में तीन हिन्दुओं की मौत', 'आज फतहपुरी

मस्जिद के पास दो हिन्दू मरे।' वड़े-वड़े शीर्षकों के नीचे छोटी-सी खबर होती कि आज फतेहपुरी के पास दो हिन्दुओं की मौत हुई है। ऐसी खबरों के पास ही पाकिस्तान में हिन्दुओं की मारकाट की खबरों से पढ़ने वाले समझते कि फतेहपुरी और जामा मस्जिद के पास मरे हिन्दू भी मुसलमानों के छुरे का शिकार हुए हैं। 'देशभगत' का मालिक अपने रिपोर्टरों को ऐसी खबरें लाकर देने पर बहुत डाँटता। एक रिपोर्टर ने एक शाम आकर वताया कि म्युनिसिपल कमेटी के जन्म और मृत्यु के रजिस्टर में मुसलमान इलाकों से जो मौतें रोज़ दर्ज होती हैं उनमें से 'आज़ाद भारत' हिन्दुओं की संख्या लेकर यह वताए विना छाप देता है कि ये मौतें साधारण मौतें हैं।

वाद में 'देशभगत' में भी इससे वढ़-चढ़कर समाचार छपने लगे। मुसलमानों ने जो हथियार अपने इलाकों में छिपा रखे थे उनकी पूरी-पूरी संख्या और विस्तृत विवरण छपने लगा। साथ ही वे योजनाएँ भी पूरे विस्तार के साथ छापी जाने लगीं, जिनके अनुसार आस-पास के हिन्दू इलाकों पर मुसलमान आक्रमण करने की तैयारी कर रहे थे। इसके साथ-साथ सम्पादकीय लेख भी प्रकाशित होने लगे। उनमें यह सिद्ध करने की कोशिश की गई थी कि पाकिस्तान की सीमा दिल्ली तक लाने के लिए एक षड्यन्त्र रचा जा रहा है। दिल्ली के मुसलमानों द्वारा वलवा करके शहर पर अधिकार कर लेना उसी षड्यन्त्र के अन्तर्गत एक योजना है।

शहर में शरणार्थियों और आम हिन्दुओं में क्रोध भड़कने लगा और मुस्लिम-विरोधी भावनाएँ सैलाव की तरह उमड़ पड़ीं। 'यहाँ से मुसलमानों को पाकिस्तान भगाओ' का नारा अनेक रूपों में प्रकट होने लगा। इस नारे की हज़ारों वाँहें थीं जो झगड़े के लिए उठ गई थीं। नारे की वेशुमार ज़वानें थीं जो चीख रही थीं। इस नारे की धमनियों में वज रहे दमामे की चोटें तेज़ होती जा रही थीं।

कूचा कादिरयार से निकलकर कोहली ने लालकुएँ पहुँचकर ट्राम

पकड़ी। ट्राम कम्पनी के हिन्दू कर्मचारी मुसलमानों के इलाके में और मुसलमान कर्मचारी हिन्दुओं के इलाके में नहीं जाते थे। फतेहपुरी के पास पहुँचने पर ट्राम के ड्राइवर और कंडक्टर बदल गए। खारी बावली की ओर मुड़कर ट्राम सदर बाज़ार की तरफ़ चल पड़ी।

सदर बाज़ार से ट्राम बाँस बाज़ार की तरफ़ मुड़ी तो कोहली ने देखा कि वहाँ से लेकर पुल मिठाई तक दाईं ओर रेलवे यार्ड की दीवार के साथ-साथ शरणार्थियों ने डेरे डाल रखे हैं। कुछ ने छप्पर डाल लिए हैं, लेकिन अधिकांश वैसे ही रह रहे हैं। तेलीवाड़ा पार करने के बाद पुल मिठाई से पहले एक मन्दिर की दीवार पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था—"नाराए बजरंगी, ना रहे मुसला न रहे फरंगी।" पुल पार करने के बाद कोहली की नज़र तीसहज़ारी के मैदान पर पड़ी। विशाल मैदान पहले की तरह खाली नहीं था। उसमें शरणार्थियों का शहर-सा बस रहा था।

कई हफ्तों से कोहली इधर नहीं आया था। नई दिल्ली में रहते हुए वह इस बात का अन्दाज़ा नहीं लगा सकता था कि शहर में शरणार्थियों की इतनी भरमार है और इस तरह हाहाकार मची हुई है।

कोहली तीसहज़ारी चौक पर उतर गया। प्रोग्राम के अनुसार वह सबसे पहले मोरीगेट जाकर बशीर अहमद का हालचाल मालूम करना चाहता था। उसके हाथ में नेताओं-जैसा चमड़े का बेग था। चाबियाँ आदि को सँभालकर रखने के लिए उसने यह बैग नियाज़ सैयदी से लिया था। चाबियों का इस्तेमाल करने से पहले वह ऐसी जगह का इन्तज़ाम करना चाहता था जहाँ इन सब घरों का कीमती सामान इकट्ठा किया जा सके।

इन शरणार्थियों को देखकर कोहली को अपने माता-पिता और अन्य सम्बन्धियों का ख़याल आया जो गुजरात शहर या पास के चकवाल कसबे में रहते थे। किसी तरह की सूचना दिए बिना ही चार बरस पहले वह कराची से दिल्ली चला आया था। पाकिस्तान में रह गए अपने माँ-बाप,

दो वहनों और भाई की याद आने पर उसके दिल में रह-रहकर हूक-सी उठने लगी। एक ख़याल कौंधा कि इतने बड़े कैम्प में चकवाल से आया हुआ एक-न-एक परिवार ज़रूर होगा जिससे वह माँ-वाप, भाई-बहनों के बारे में पूछ सकता है। उसकी दोनों वहनों का विवाह हो चुका था। एक चकवाल में ही ब्याही थी और दूसरी गुजरात में। जव वह कराची में था तो उसका छोटा भाई दसवीं की परीक्षा की तैयारी कर रहा था। पिछले चार वर्षों में या तो वह कॉलिज में पढ़ा होगा या पिताजी का हाथ वँटाया होगा।

इसी उधेड़-वुन में कोहली तीसहज़ारी के तिराहे से दाईं ओर मुड़ा। कैम्प की झोंपड़ियों की कतारें खत्म नहीं हुई थीं कि उसे मोरी गेट का पुल दिखाई दिया। उसने फ़ैसला किया कि पहले वशीर अहमद के यहाँ हो आए।

मोरी गेट के रेलवे पुल पर खड़े होकर कोहली ने मोरी गेट के वाज़ार की तरफ़ देखा। मुसलमानों की दुकानें वन्द थीं। दाईं ओर वशीर अहमद के मकान का छज्जा खाली था। वन्द खिड़कियों पर परदे नहीं थे और उन पर इस तरह मिट्टी जमी हुई थी जैसे मकान में कोई न रहता हो। दोनों ओर सड़कों पर रेलवे की दीवार के साथ-साथ शरणार्थी आवाद थे। मोरी गेट के वाहर मैदान में और फ़सील के दोनों तरफ़ शरणार्थी डेरे डाले पड़े थे। इस भीड़ को देखकर कोहली ने सोचा कि कहीं वशीर अहमद और उसका परिवार मकान तो नहीं खाली कर गया। वह वाज़ार में आ गया। वशीर के घर की सीढ़ियों के वाहरी दरवाज़े पर मोटा-सा ताला लगा था और उस ताले पर इतनी मिट्टी जम रही थी कि जैसे ताला महीनों से न छुआ गया हो।

कोहली को याद आया कि वशीर अहमद उसे पिछले महीने ही कनॉट प्लेस में मिला था और अरसे से घर न जाने की शिकायत कर रहा था। कोहली ने सोचा कि हो सकता है पीछे की गली में से कोई रास्ता ऊपर जाता हो। वहाँ जाकर सोचने लगा कि कौन-सी सीढ़ियाँ

उस मकान की हो सकती हैं। एक मकान की सीढ़ियों के बाहर दीवार पर नाम की तख्ती के उतार लिए जाने का ताज़ा निशान था। एक आदमी से, जो उस गली में पुराना रहने वाला लगता था, कोहली ने पूछा कि क्या यही सीढ़ियाँ बशीर अहमद के मकान की हैं। दबे-पाँव सीढ़ियाँ चढ़कर कोहली ने बन्द दरवाज़े पर दस्तक दी। पहले आहिस्ता-आहिस्ता, फिर ज़ोर-ज़ोर से, लेकिन अन्दर से फुसर-फुसर की आवाज़ आने के बावजूद किसी ने दरवाज़ा न खोला। कोहली ढीठ बना दरवाज़ा खटखटाता रहा। तभी किसी की बूढ़ी आवाज़ आई, "कौन है?" कोहली ने कहा कि मैं गौहर चकवाली हूँ और जनाब बशीर अहमद से बहुत ज़रूरी काम है। काँपते हुए स्वर में उत्तर मिला कि बशीर अहमद अरसा हुआ यहाँ से चले गए हैं। कोहली ने दोहराया कि बहुत ज़रूरी काम है। अगर बशीर अहमद नहीं तो उनके वालिद साहब से मिलना चाहूँगा। कोहली के बार-बार यही कहने पर बशीर अहमद दरवाज़े के पास आ गया और भीतर से झाँकते हुए उससे वहाँ आने की वजह पूछने लगा। कोहली की आवाज़ पहचान लेने पर भी वह दरवाज़ा खोलने से हिचकिचा रहा था। कोहली ने बशीर को बताया कि वह अकेला ही है और उसी की भलाई के लिए आया है। दरवाज़े को थोड़ा-सा खोल नीचे अच्छी तरह देखकर बशीर आश्वस्त हो गया कि कोहली अकेला है। तभी उसने उसे अन्दर आने दिया और पहले की तरह दरवाज़े की ऊपर-नीचे की चटखनियाँ चढ़ा दी गईं।

अन्दर जाकर कोहली ने देखा कि उनके चेहरे कुरबानी के बकरे की तरह निराशा से उतरे हुए हैं। इतने निराश और भयग्रस्त तो कूचा कादिरयार के मुसलमान भी नहीं थे। तीन दिन में ही यह सारे-का-सारा इलाका शरणार्थियों के घेरे में आ गया था। उन्हें कुछ सोचने तक की फुरसत नहीं मिली थी। पड़ोसियों ने आँखें फेर ली थीं। बशीर अहमद और वहाँ रह रहे अन्य लोग अब इसी चिन्ता में घुल रहे थे कि घर की इज़्ज़त लेकर कहाँ जाएँ और कैसे जाएँ।

अपनी दुर्दशा सुनाकर उन्होंने कोहली से पूछा कि वह किसलिए आया है। कोहली के मन में कई बातें एक साथ घूम रही थीं। भय और दहशत के उस वातावरण में उसका चेहरा भी बहुत जल्द उतर गया। उनकी हालत पिंजरे में बन्द परिन्दों की-सी थी। बशीर अहमद के पिता ने 'एक बुलबुल हज़ार सय्याद' कहकर आह की। कोहली ने अपनी आवाज़ में निराशा और दुख भरकर बताया कि उसके कान में सुबह ही भनक पड़ी थी कि तीसहज़ारी कैम्प के शरणार्थी उसी रात सब्ज़ीमण्डी से लेकर कश्मीरी गेट तक के मुसलमानों का सफ़ाया करने की तैयारी कर रहे हैं। यह सुनकर उसे भी अपने दोस्त बशीर अहमद का खयाल आया, जिसके बहुत अहसान उसके सिर पर थे।

वे लोग पाकिस्तान नहीं जाना चाहते थे, क्योंकि दिल्ली में वे पुश्तों से रह रहे थे और उनकी सारी रिश्तेदारी यहाँ या यू० पी० में थी। आजमगढ़ में बशीर अहमद के नाना-नानी थे और उसकी ससुराल बदायूँ में थी। इन दोनों में से किसी जगह कैसे जाया जाए ! पहले तो रेलवे स्टेशन तक पहुँचना ही खतरे से खाली नहीं था। बहुत सोच-विचार के बाद उन्हें स्टेशन तक पहुँचने का ही नहीं, गाड़ी में बिठाकर गाज़ियाबाद तक छोड़ आने का बीड़ा कोहली ने उठाया। उन्होंने बशीर के हमज़ुल्फ़ (साढ़ू) के पास मेरठ जाने का फ़ैसला किया। मुश्किल परदानशीन औरतों की थी जो बुरके के बग़ैर कभी घर से बाहर न निकली थीं। सबके पास गरारेदार पायजामे ही थे। बशीर अहमद की पत्नी के पास दो-तीन साड़ियाँ थीं जिन्हें वह यहाँ तो नहीं बदायूँ में किसी खास अवसर पर पहन लिया करती थी।

कोहली ने उन्हें तसल्ली देते हुए कहा कि कुछ हफ्ते की मजबूरी है। गांधीजी दिल्ली आने वाले हैं। उनके आते ही यह काली घटा तितर-बितर हो जाएगी और वे लोग फिर अपने घर में आकर आराम से रह सकेंगे। लेकिन जल्दी कीजिए, दोपहर की गाड़ी से ही निकल जाना चाहिए, ताकि वह शाम तक यहाँ वापस आ जाए। उसे एक-दो रातें यहाँ

काटनी होंगी, ताकि कोई सामान न लूट ले या घर को आग न लगा दे। कोहली चाहता था कि वे जाती वार घर की चाबियाँ उसके हवाले कर जाएँ।

उन्होंने जल्दी-जल्दी ज़रूरी सामान तैयार किया। औरतों ने साड़ियाँ पहनीं, बशीर अहमद ने छोटी कैंची लेकर वालिद के होंठों पर के लम्बे-लम्बे बाल काट दिए। उसके बाल पहले ही से तराशे हुए थे। कोहली ने नीचे जाकर दो अच्छे-से ताँगे ढूंढ़े जिनके कोचवान शरीफ़ दिल्ली वाले थे। बाज़ार की तरफ़ की सीढ़ियों की चाबी लेकर उसने उनसे कहा कि सामान वग़ैरह सब अच्छी तरह तैयार करके वे चुपके-चुपके सड़क की तरफ़ की सीढ़ियों के बन्द किवाड़ के पीछे आ खड़े हों। अच्छे-से ताँगों का इन्तज़ाम करके वह सीढ़ियों के आगे ला खड़ा करेगा। फिर झट से ताला खोलकर बाज़ार में किसी का उधर ध्यान जाने से पहले उन्हें वहाँ से ले जाएगा।

कोहली ने ताला खोला तो वे बन्द दरवाज़े के पीछे तैयार खड़े थे। निकलकर ताँगे में बैठे और कोहली ने आन-की-आन में ताला बन्द किया और घर की चाबियाँ बशीर से लेकर बैग में रख पहले ताँगे में आगे जा बैठा। उसके साथ बशीर अहमद था और पीछे की सीटों पर घर की दोनों महिलाएँ थीं। पिछले ताँगे में आगे बच्चे थे और पीछे बशीर अहमद के पिता और एक और व्यक्ति उतनी ही उम्र का। कोहली को पहचानना मुश्किल था। वह घर का पुराना नौकर या बशीर का चाचा लग रहा था।

पुल पार कर जब ताँगे रेलवे स्टेशन की तरफ़ मुड़े तो कोहली को ख़ुद शरणार्थियों की इतनी भीड़ देखकर बहुत हैरानी हो रही थी। जैसे-जैसे ताँगे आगे बढ़ते गए शरणार्थियों की संख्या भी बढ़ती गई और ताँगों की रफ्तार मद्धिम होती गई। यह देखकर मुसलमानों के इस छोटे-से क़ाफ़िले के औसान जाते रहे। जब वे फतेहपुरी को जाने वाली सड़क छोड़कर आगे बढ़े तो दाईं ओर के मैदान में और सड़क के दोनों फुट-

पाथों पर शरणार्थियों के झुंड-के-झुंड नज़र आ रहे थे। यह देखकर उनके पाँव के नीचे से ज़मीन निकल गई। वशीर अहमद की माँ वेहोश हो गई। कोहली ने एक वाज़ू पीछे करके उसे थाम लिया।

कोहली का इरादा था कि ताँगे जब स्टेशन के अन्दर जाकर पोर्च की ओर मुड़ेंगे तो वहाँ हर समय रहने वाली भीड़ दिखाकर उन्हें डरा देगा, ताँगों को फ़ौरन बाहर निकलने के लिए कहेगा और किसी-न-किसी तरह उन्हें पुराने किले के कैम्प में पहुँचा आएगा। रास्ते में ही शरणार्थियों की इतनी भीड़ देखकर उसका काम आसान हो गया था। स्टेशन के अन्दर जानेवाली सड़क के आने से पहले ही उसने दस का नोट ताँगे वाले के हाथ में थमाया और उससे कहा, "ईश्वर के लिए यहाँ से जल्दी-जल्दी लाल किले की तरफ़ निकल चलो।" वह पिछले ताँगे वाले के हाथ में भी दस का नोट थमाकर यही कह आया और फिर वापस अपनी सीट पर आ बैठा। कौड़िया पुल के चौक से आगे बढ़ने के वाद ताँगे तेज़ी से वढ़ने लगे और फिर पुराने किले के पास ही पहुँचने पर कोहली ने उन्हें रुकने के लिए कहा।

पुराने किले के पास जब वे ताँगों से उतरे तो कोहली ने बहुत दुखी स्वर में उनसे कहा, "आपने शहर की हालत तो देख ली है, ख़ुदा का शुक्र है कि यहाँ आ पहुँचे। कुछ दिन यहीं ठहरिए। हालात सुधरते ही मैं खुद आकर ले जाऊँगा।" बड़े तपाक से बशीरअहमद से बगल गीर होने के बाद उसने ताँगेवालों से कहा कि वे फाटक के पास, जहाँ पाकिस्तान के फ़ौजी पहरा दे रहे हैं, सामान उठाकर रख आएँ।

उनसे विदा लेकर कोहली दरियागंज पहुँचा। दो वड़ी नेमप्लेटों पर शिवशंकर कोहली लिखवाकर साथ ले आया और मोरीगेट में वशीर अहमद के घर के दोनों तरफ़ इनको लटका दिया। वरामदे और खिड़कियों को झाड़कर कुछ कुरसियाँ बाहर रख दीं ताकि घर आवाद लगे। पिछली तरफ़ वहुत-सी चिकें और टाट के परदे लटक रहे थे। वे सव उसने उतार फेंके। किसी मुसलमान का घर होने के सभी चिह्न उसने

मिटा दिए।

इससे खाली होकर कोहली तीसहज़ारी कैम्प में पहुँचा। उसने चारों तरफ़ घूमकर चकवाल से आए किसी शरणार्थी का पता लगाने की कोशिश की। वहाँ चकवाल से कोई नहीं आया था। जेहलम के दो परिवार वहाँ थे। उन्होंने केवल यही बताया कि अभी तक जितने हिन्दू चकवाल से निकले हैं वे लाहौर से अमृतसर की बजाय फ़ीरोज़पुर पहुँचाये गए थे और उधर से बहुत कम गाड़ियाँ दिल्ली आ रही हैं।

कैम्प में बहुत भीड़ थी, फिर भी चारों तरफ दुख था, दरिद्रता थी। लूट-खसोट और मारकाट के चिह्न थे, जो आँखों से देखे नहीं जा रहे थे। यह दृश्य ऐसे खेत का था जिसे हज़ारों जानवरों ने उजाड़ दिया हो। एकाएक कोहली को पीपल के कटे तने का खयाल आया। कूचा कादिरयार के उस पीपल के तने की सब डालें और टहनियाँ काट दिए जाने पर उगने लगी थीं। कोहली को लगा कि हज़ारों-लाखों की तादाद में ये ऐसे ही तने हैं जिनमें कहीं-कहीं नई कोंपलें फूटनी शुरू हो गई हैं।

कोहली ने सोचा था कि वह जिन घरों की चाबियाँ उसके पास हैं उनका सामान इन शरणार्थियों में बेच देगा या उचित रकम लेकर वे मकान दे देगा। लेकिन शरणार्थियों की हालत देखकर यह ख़याल दिल से निकाल देना पड़ा। कैम्प में कोहली के पास से कोई लड़की या जवान औरत ज्योंही गुज़रती उसके हाथ पतलून की जेबों में चले जाते और छाती निकाले हुए वह क्षण-भर के लिए रुक जाता जैसे उस लड़की पर जादू-सा हो जाएगा और वह उसके पास आकर मुहब्बत की भीख माँगने लगेगी। ऐसा तो नहीं हुआ, लेकिन लड़की के आगे बढ़ जाने पर कोहली की आँखों के सामने उसकी शक्ल-सूरत नाचती रहती। लड़कियों के चेहरों पर आतंक और संशय था। उस समय उनके प्रति भी कोहली के दिल में सहानुभूति के अतिरिक्त और कोई भावना न जागी। घूमते-घूमते वह इतना म्लानचित्त और शिथिल हो गया कि उसे लगा

वह भी उन्हीं में से एक है और दिल्ली चार वर्ष पहले नहीं आया वरन् उनकी तरह पाकिस्तान से लुटकर तीन-चार दिन हुए आया है।

तभी कोहली के दिल में ख़याल आया कि ऐसी बातें सोचने से तो अच्छा है वह किसी मन्दिर में जाकर पूजा करने लगे। हर काम अच्छा है अगर उससे वक़्त काटने में मदद मिले। क्या गलत चीज़ों में विश्वास रखना उतना ही ज़रूरी नहीं जितना सचाई में ? हर बात में ईश्वर को घसीटते रहना कितना लाभकारी है ! ज़िन्दगी जब बेकार और बेमानी लगने लगे तो ईश्वर पर आस्था रखने से उसमें सार्थकता आ जाती है। दुखी होने पर ईश्वर का नाम तसल्ली देता है। जब कोई काम बिगड़ जाता है तो होनी का बहाना बना लिया जाता है। जब ख़ुशी का अवसर आता है तो उसे अच्छे कर्मों का फल समझकर सब ज़िम्मेदारी भुलाई जा सकती है। सब अद्भुत, असाधारण या बेतुकी बातों को ईश्वर के साथ जोड़ दिया जाता है। हर बात को ईश्वर के नाम पर उचित सिद्ध किया जा सकता है। हिन्दू-मुसलमानों में लूट-मार भी ईश्वर और धर्म के नाम पर हो रही है। अगर बीती हुई मुसीबतों के लिए ढाढस और दिलासा ईश्वर देता है तो भविष्य के लिए आशा भी उसी से प्राप्त की जाती है।

वह सोचने लगा कि ईश्वर और धर्म कितनी उपयोगी चीज़ें हैं ! आदमी उनका नाम लेकर जो चाहे कर सकता है।

इन ख़यालों के गोरख-धन्धे से निकलने में कोहली को रोने की एक बहुत ही महीन आवाज़ ने सहायता दी। जहाँ वह खड़ा था वहाँ एक झोंपड़ा था। एक नवजात शिशु के रोने की आवाज़ आ रही थी। अपने अव्यवस्थित विचारों को एक लड़ी में पिरोने के लिए वह कैम्प में ही चक्कर लगाने लगा। एक जगह उसने देखा कि सफ़ेद लम्बी दाढ़ी वाला अस्सी-नब्बे वर्ष का एक बूढ़ा सामने पंक्ति में बैठे बच्चों को पढ़ना सिखा रहा है। उसकी मैली-सी पगड़ी से बालों के सफ़ेद गुच्छे झाँक रहे थे। कोहली ने उस बूढ़े से उसका नाम और हाल-चाल पूछा। गोल

काले फ्रेम की ऐनक उतारकर आँखों पर हाथ का छज्जा बनाते हुए उसने कोहली को देखा और कहा, "मेरी उम्र तक पहुँचने पर सबका नाम 'बाबा' हो जाता है। मुझे भी अब कोई निहालसिंह नहीं कहता और आजकल किसी का हाल नहीं पूछना चाहिए। वाहेगुरु की कृपा से पहले मेरे नाम कोई दुख नहीं था, लेकिन अब मेरे नाम भी उसने कुछ दुख लगा दिए हैं।"

आगे कोहली को एक पगली-सी औरत भीख माँगती नज़र आई। कोई उसे पैसा-टका न भी देता, दुतकारता नहीं था। कोहली को पता चला कि वह सारा दिन भीख माँगती है और अगले दिन सुबह गुरुद्वारे जाकर सारा-का-सारा माँगा हुआ पैसा वहाँ चढ़ा आती है। कोहली को एक औरत शराबी पति को डाँटती हुई दिखाई दी। क्षण-भर के लिए वह वहाँ रुककर सोचने लगा कि आदमी को शादी के बाद शराब को मुँह नहीं लगाना चाहिए। वह वहाँ से आगे बढ़ने ही वाला था कि शराबी ने कहा, "मेरा नाम रोशनलाल है। अगर कोई उसे 'मालटे का मेंढक' बताए तो उसकी बात मान न जाना।" आगे एक आदमी अपनी घोड़ी के पास खड़ा उससे इस तरह बातें कर रहा था जैसे अपने दुख की कहानी सुना रहा हो। कोहली को पता लगा कि वह पाकपटन से अपने ताँगे में सामान रख शरणार्थियों के एक काफ़िले में शामिल हो गया था। रास्ते में ताँगा छीन लिए जाने पर घोड़ी भागकर फिर काफ़िले में उसे आ मिली थी। कैंप में इधर-उधर बेकार भटकते हुए कोहली के विचार भी बेहद अव्यवस्थित हो रहे थे।

कोहली के दिल में आया कि कोई ऐसा काम करे कि लोग वाह-वाह कर उठें। कोई बच्चा ताँगे-मोटर के नीचे आ जाए और वह 'हाय मेरे लाल' चीखता हुआ लपककर उसको छाती से लगा ले। कोई लड़का किसी लड़की को छेड़ता हुआ नज़र आए तो उसके कान मरोड़ते हुए डाँटे, "बरखुरदार, तुम्हारे बालों में जुएँ पड़ गई लगती हैं, आ ज़रा बीन दूं।" कोई कुमारी अपनी लाज की रक्षा के लिए चीत्कार करे और वह

वहाँ जाकर जान की बाजी लगा दे। कहीं कोई किसी की जेब काटता नज़र आ जाए तो उसकी कलाई मरोड़कर वह सब रकम बाहर रखवा ले। वह सोच रहा था कि ऐसे अवसर वह कहाँ तलाश करे। तभी एक ठिगना-सा आदमी सामने बैठे दस-बारह लड़कों, छः आदमियों और एक बुढ़िया को भाषण देता हुआ दिखाई दिया। वह ठिगना-सा आदमी बड़े जोश से बाजू उछालता हुआ अपनी छाती फुला-फुलाकर भाषण दे रहा था और सामने बैठे हुए लोग इस तरह ध्यान से सुन रहे थे जैसे उसके मुँह से अनमोल मोती बिखर रहे हैं। उस ठिगने आदमी के कद्दू चेहरे पर 'राम राम जपना पराया माल अपना' जैसे भाव दीख रहे थे। पास आने पर कोहली को सुनाई दिया, "१७५८ में हिन्दुस्तान की आज़ादी की पहली लड़ाई लड़ी गई थी जिसे अंग्रेज़ों ने गदर का नाम दिया। उस लड़ाई में जिनो (जिन्हों) ने शहीदी पाई पत्थर का एक बहुत ऊँचा दरवाज़ा खड़ा कर उनके नाम लिख दिये गए।" वह आदमी इस तरह भाषण दे रहा था जैसे वहाँ बारह व्यक्ति नहीं बल्कि सारी दुनिया बैठी हो। कोहली यह तो समझ गया था कि भाषण देने वाला १८५७ के बजाय गदर को १७५८ में करवा रहा है। लेकिन जिस पत्थर के दरवाज़े पर १८५७ के गदर के शहीदों के नाम लिखे हुए हैं, उसके ज़हन में न आया। वह और ध्यान से सुनने लगा। "अगर आप तीसहज़ारी का पुल पार करके आगे उतरते (चलते) जाएँ तो दूर खनाट पुलिस (कनाट प्लेस) आता है। गोल चक्कर में बनी बहुत सारी (सी) हट्टियाँ। ओथों (वहाँ) से एक सड़क सीधी सिन्धी होज़ (सिन्धिया हाऊस) के कोल (पास) से लंघदी (जाती) है। चोखी दूर जाकर बड़े लाट साहब के दफ्तरों से आती सड़क से जा मिलती है। वहीं पत्थर का चारों पासे मुँह वाला घंटा-घर तों (से) भी ऊँचा दरवाजा है। इसे इण्डिया गेट कहते हैं और इसी पर १७५८ के गदर में मरने वालों के नाम लिखे हुए हैं।"

कोहली १९१४-१८ के विश्वयुद्ध में काम आने वालों की स्मृति में इण्डिया-गेट के इस विवरण पर दिल-ही-दिल में हँसने लगा। भाषण

देने वाला ठिगना आदमी उछल-उछलकर और भी जोश में चिल्लाने लगा, "पर (परन्तु) हम शरणार्थी जो आज़ादी की अखीरली (आखिरी) लड़ाई में लूटे-पूटे गए। आज़ादी जल्दी तो (से) जल्दी पाने के लिए जिनको अपने पुशतानी घरों से चुक (उठा) कर यहाँ सूट (फेंक) दिया गया है वो मोरियों के कंडों (किनारों) पर रुल रहे हैं। पत्थर पर हमारा नाम लिखने के लिए वड़ा तो नहीं छोटा-सा दरवाज़ा तक नहीं उसारा (खड़ा किया) गया। हमारी कुरवानी १७५८ के गदर वालों से वहुती (ज्यादा) है। हमने अपना लऊ (लहू) ही नहीं वहाया सगों (वल्कि) हमने अपने लऊ की मलाई वनाकर सारे देश को खिलाई है।"

जिस नमूने की भाषा में भाषण दिया जा रहा था और जिस अन्दाज़ से वाज़ू उछाले जा रहे और उछला-कूदा जा रहा था, यह देखकर कोहली को वहुत मज़ा आ रहा था। लेकिन कमीज़-पतलून में एक आदमी को पास खड़ा देखकर उसने जल्दी अपना भाषण खत्म किया। जैसे ही भाषण सुनने वाले इधर-उधर हुए उसने कोहली के सामने आकर हाथ जोड़े और जरा झुककर 'जय हिन्द' कहा। जब उसे मालूम हुआ कि कोहली सी० आई० डी० का आदमी नहीं तो उसने फिर पहले की तरह छाती तान ली और कोहली को बताया, "मैं हूँ लाला फ़ीरोज़चन्द, प्रेसीडेण्ट हिन्दू महासभा, तीसहज़ारी कैम्प।"

फ़ीरोज़चन्द के साथ चलते-चलते कोहली उसके खेमे के सामने आ पहुँचा था। यह सोचकर कि कहानीकार का मतलव शायद लाला फिरोज़चन्द समझ न सके, कोहली ने बताया कि वह शायर है। इस पर फ़ौरन उसने सुझाव रखा कि जलसों में भाषण से पहले वह अपनी नज़्में सुनाए तो अच्छा रहे। कोहली ने देखा कि उसका खेमा सामान से पटा पड़ा है। इतना सामान देखकर कोहली को लगा कि शायद लालाजी किसी मकान की तलाश में हैं।

कोहली ने लालाजी से पूछा, "आपके पास इतना सामान है, अगर कोई अच्छे-से घर का इन्तज़ाम मैं आपके लिए करूँ तो दिल्ली के किस

इलाके में रहना पसन्द करेंगे ? बहुत कम पैसा खर्च करना पड़ेगा।" फ़ीरोज़चन्द ने यह बात अनसुनी करते हुए पंजाबी में कहा, "तुम अभी बच्चे हो ! तुम नहीं समझ सकते कि यहाँ क्या होने वाला है। कुछ दिनों में मुसलमान यहाँ से निकाल दिए जाएँगे और उनके मकानों में से एक-दो मैं सँभाल लूँगा। यह जो थोड़े-से लोग पीछे लगाए हैं और छोटी-सी लीडरी बनाई है, इसकी मदद से एकाध अच्छा-सा मकान तो उनके हाथ भी आ ही जाएगा।"

कोहली जब कैम्प से बाहर निकला तो इस तरह की नेतागीरी के विषय में सोच रहा था। अभी तक सब-कुछ वह अकेला ही करता रहा है। साथ के लोग केवल उसका माल उड़ाते रहे हैं। क्या लीडर बनने पर उसके पीछे भी ऐसे लोग हो जाएँगे जिन्हें वह अपना उल्लू सीधा करने के लिए इस्तेमाल कर सके ? फ़ीरोज़चन्द को तो यह भी नहीं पता कि गदर कब हुआ था और जो गलत हिन्दुस्तानी वह बोलता है, इससे अनपढ़ लोग ही झाँसे में आ सकते हैं। फिर फ़ीरोज़चन्द के चेहरे पर मक्कारी लिखी हुई है जिससे लोगों का माथा फ़ौरन ठनक जाता है। उसके चेहरे पर इस तरह के भाव न होकर भोलापन है, तभी लोग इतनी आसानी से उस पर भरोसा कर लेते हैं। शायर या कहानीकार के स्थान पर वह लीडर ही क्यों न बनने की कोशिश करे। इस तरह की बातें सोचता हुआ वह मोरी गेट आया। बाज़ार से ही खाना खाकर अपने नये मकान में जाकर लेट गया और इसी सोच-विचार में उसकी आँखों से नींद जाती रही।

सात

पुलवंगश, वाड़ा हिन्दू राव, सराय रोहेला, सब्ज़ी मण्डी और अन्य मुसलमान आवादी के इलाकों से गोलियाँ चलने और बम फटने की आवाज़ें आने लगीं। रात के ग्यारह बजे थे और आधी रात तक ये आवाज़ें इतनी तेज़ हो गई थीं कि दूसरे मुहल्लों में भी सब लोग जाग गए थे। शरणार्थी जो खुले झोंपड़ों या सड़कों-बाज़ारों में रह रहे थे और भी सहम गए थे। दिल्ली के मुसलमानों द्वारा हथियार जमा करने और बलवा करने के इरादों के समाचार उन्होंने अखबारों में पढ़ या सुन रखे थे। उनमें से बहुत-सों ने कपड़े पहन और सामान बटोरकर ज़रूरत पड़ने पर भाग जाने की तैयारी कर ली। उन्हें यह फ़िक्र सता रहा था कि वक्त आने पर स्त्रियों और बच्चों को लेकर वे कहाँ जाएँगे।

इन बारह दिनों में कोहली शरणार्थियों का नेता ही नहीं उनका विश्वासपात्र भी बन गया था। एक-दो दिन सोचने के बाद उसने ऑल इण्डिया रिफ्यूजी वेलफ़ेयर एसोसियेशन का एक बड़ा-सा बोर्ड मोरीगेट के घर के छज्जे पर लटकवा दिया था और उस संस्था का प्रधान भी स्वयं को घोषित कर दिया था। संस्था का नाम उर्दू में भी ऑल इण्डिया रिफ्यूजी वेलफ़ेयर एसोसियेशन ही लिखवाया, क्योंकि उसको विश्वास था कि अंग्रेज़ी नाम का अधिक प्रभाव रहेगा। फ़ीरोज़चन्द की तुलना में

कोहली की रिफ्यूजी एसोसियेशन की संख्या वहुत हो गई और यह तीस-हज़ारी कैम्प तक ही सीमित नहीं रही। कोहली की फ़ीरोज़चन्द से अविक लोकप्रियता का कारण यह था कि मुसलमानों के जिन घरों की चावियाँ उसके पास थीं उनमें से वहुत-सा वेकार सामान लाकर उसने शरणार्थियों में बाँट दिया था। इस तरह आस-पास की तमाम शरणार्थी वस्तियों में कोहली का काफ़ी प्रभाव हो गया था। कोहली-जैसे परोप-कारी व्यक्ति को अपना नेता मानने में उन्हें कोई संकोच नहीं था।

कोहली को खयाल आया कि सफल नेता वनने के लिए उस रात गोलियों की आवाज़ आने पर उसे स्वयं ही शरणार्थियों में जाकर अपने-आपको उनका हितैषी सिद्ध करना चाहिए था। लेकिन उससे थोड़ी वह चूक हो गई। जब मोरीगेट के वाहर के शरणार्थियों ने उसका दरवाज़ा खटखटाया तो उसने जल्दी से कपड़े पहने और उनके साथ हो लिया। पहले तो उसने उन्हें सलाह-मशविरा देना चाहा, लेकिन फिर सोचा कि नेता वनने के लिए कुछ करके दिखाना होगा। आसपास कुछ हिन्दू मुहल्ले थे, जिनके आगे मजवूत फाटक लगे हुए थे। उसने जवान औरतों और लड़कियों को उन मुहल्लों में भिजवा दिया। उसने चार तगड़े जवानों को पुलवंगश की तरफ़ भेजा ताकि वहाँ किसी ऊँची जगह खड़े होकर वे हालात का जायज़ा लें और हो सके तो पहाड़ी पर चले जाएँ और जीतगढ़ की मीनार पर चढ़कर पता लगाएँ कि गोलियों की आवाज़ें किधर से आ रही हैं।

साढ़े तीन-चार वजे गोलियाँ चलने और वम फटने की आवाज़ें वन्द हुईं और लोग फिर अपने विस्तरों पर जा लेटे। पौ फटते ही मुसलमानों की लम्वी कतार तीसहज़ारी कैम्प के सामने से गुज़रने लगी—वूढ़े-बच्चे, मर्द-औरतें, गरीव-अमीर। लेकिन उस कतार में सब एक-से कंगाल, सब एक-से दुखी, सब एक-से निढाल और फटे हाल थे। शायद ही कोई ऐसा हो जिसके तन पर पूरे कपड़े हों। औरतों के शरीर पर तो कपड़े मर्दों से भी अधिक फटे हुए थे। उनमें एक भी ऐसा नहीं था जो घर

छोड़ते और वतन से बेवतन होते समय छोटी-से-छोटी चीज़ भी साथ ले जा रहा हो। कतार रेंग रही थी और लोग भारी कदमों से सिर झुकाए आगे बढ़े जा रहे थे। केवल एक रात के आतंक और क्रूरता ने उनके चेहरों को इस तरह दुख और भय की स्याही से पोत दिया था कि सबकी शक्लें एक-सी हो रही थीं। उन सबकी कमर टूटी हुई थी, सबके बाज़ू निढाल, टाँगें बेजान और सिर से पाँव तक वे सब इस तरह दुख में डूबे हुए थे जैसे वे मौत की गार में से निकलकर आ रहे हैं।

कैम्प और आस-पास के शरणार्थी भी सड़क की दूसरी तरफ़ आ खड़े हुए थे। शुरू-शुरू में कुछ लोग उन्हें ताने देने लगे, लेकिन कतार में रेंगते लोगों की आँखों से बहते आँसुओं को देख सब चुप हो गए। उन्हें याद आ गया कि वे इसी तरह तबाह होकर आये थे और उन पर भी कहर इसी तरह टूटा था। उनके दिल के टुकड़ों की भी उनकी आँखों के सामने हत्या की गई थी। बहुत-से शरणार्थियों की आँखें डबडबा आई थीं, उनके दिल पसीज गए थे। चाननमल की बहन ने अपने कपड़े लाकर कतार में जा रही उन औरतों को देने चाहे जिनके पास इज़्ज़त ढाँपने के लिए पर्याप्त वस्त्र न थे, लेकिन उन्होंने न लिये। बाबा निहाल-सिंह ने बालटी-लोटा लाकर उनको पानी पिलाना चाहा, लेकिन उन्होंने न पिया। इसके बाद बाबा निहालसिंह हाथ जोड़े मुँह-ही-मुँह में 'सत नाम वाहे गुरु' कहता शहतीर की तरह मौन खड़ा रहा और उसकी आँखों से आँसू टपकते रहे। बीच-बीच में वह सुबकने और दाढ़ी नोचने लगता। हिन्दू-सिक्ख शरणार्थी सड़क की दूसरी तरफ़ आकर खड़े होते और चले जाते, लेकिन निहालसिंह शाम तक वहाँ बग़ैर हिले-डुले खड़ा रहा।

सन्ध्या तक मुसलमानों की यह रेंगती हुई कतार लगातार चलती रही। तीन-चार घंटों के बाद यह कतार एक के बजाय दो-तीन व्यक्तियों की हो गई थी। उनके कपड़े कम फटे हुए थे और उनके पास कुछ सामान भी था। पुल बंगश को पार कर वह कतार सराय फूस के सामने से होती

हुई तीसहज़ारी के पुल पर से होकर पीली कोठी के आगे से फ़तेहपुरी और चाँदनीचौक को मुड़ जाती और वहाँ से जामा मस्जिद या पुराने किले की ओर बढ़ती जाती।

अगले दिन सड़कों-बाज़ारों में पड़े शरणार्थियों ने मुसलमानों के मकानों पर कब्ज़ा करना शुरू कर दिया। केवल उन मुहल्लों में ही नहीं जिनमें से मुसलमान निकल गए थे, वरन् उनमें भी जिनमें कुछ घरों को मुसलमान ताले लगाकर चले गए थे, लेकिन बाकी में अभी आबाद थे। जब ताले तोड़कर बन्द मकानों में शरणार्थी आ बसते तो शाम तक वहाँ के बाकी मुसलमान भी मकान खाली करके पुराने किले या शहर के उन मुहल्लों में चले जाते जिनमें अभी पूरी आबादी मुसलमानों की थी और जिनकी रक्षा के लिए अब फ़ौज और पुलिस तैनात कर दी गई थी। मिली-जुली आबादी के बाज़ारों में मुसलमानों की दुकानों को किसी ने चुपके से खोलकर वही धन्धा शुरू कर दिया था। बहुत-सी दुकानें लूट ली गई थीं और खाली दुकानों पर लोगों ने कब्ज़ा जमा लिया था। लूटमार और मकानों-दुकानों पर कब्ज़ा करने वालों में केवल शरणार्थी ही नहीं थे। स्थानीय लोगों ने भी खूब हाथ रंगे थे और इसमें बढ़-चढ़-कर हिस्सा लिया था।

पिछले चार वर्षों में परिस्थितियों की वजह से कोहली का दिल पत्थर बन गया था। फिर भी कतार में जा रहे उन बेहाल, बेबस और खानाखराब मुसलमानों को देखकर उसकी आँखें भीग गईं और वह वहाँ खड़ा नहीं रह सका। जब वह मोरीगेट की ओर लौट रहा था तो उसने हिन्दू स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं को शरणार्थियों से कहते सुना कि कनॉट प्लेस में ग्यारह बजे मुसलमानों की दुकानें लुटेंगी। उसे कनॉट प्लेस में क्वीन्ज़वे की तरफ़ की दुकानों के ऊपर के फ्लैट का खयाल आया, जिसमें अलीगढ़ के वकार रिज़वी रहते थे। वह मुस्लिम लीग के लीडर थे और पाकिस्तान के बड़े हामी होने की वजह से इस वक्त तक उन्हें दिल्ली से चले जाना चाहिए था। कोहली ने सोचा कि उसकी ऑल

इण्डिया रिफ्यूजी वेलफ़ेयर एसोसियेशन का बोर्ड कनॉट प्लेस में लग सके तो उसका महत्त्व वहुत वढ़ जाएगा।

चाननमल कुछ और शरणार्थियों के साथ मुसलमानों के ख़ाली मकानों की तलाश में निकला। किसी भी मकान पर कब्ज़ा करके वह वहन और उसके परिवार को यहाँ से ले जाना चाहता था। दिल्ली क्लाथ मिल को पार करके वे मॉडल वस्ती की एक गली में पहुँचे। गली का फाटक वहुत मज़वूत और ख़ूवसूरत लोहे की जाली का वना हुआ था, लेकिन दोनों तरफ़ की दीवार को तोड़कर उसको उखाड़ दिया गया था। गली पक्की थी, लेकिन तवाही और वरवादी की तस्वीर वनी हुई थी। उसमें हर किस्म का सामान विखरा पड़ा था। वच्चों के खिलौने, लड़कों की स्कूल की कितावें, कापियाँ, स्लेटें, तखतियाँ, शायरों के दीवान, मज़हवी कितावें, एक जगह अंग्रेज़ी की कितावें विखरी पड़ी थीं जिनमें चाननमल शेक्सपीयर के नाटकों का संकलन दूर से ही पहचान गया। उसके पास फ्रेम से वाहर निकली हुई टालस्टाय की तस्वीर थी। उससे ज़रा आगे एक तानपूरा पड़ा हुआ था, जिसका तूँवा ऊपर से गिरने के कारण फट गया था। टूटी हुई कुर्सियाँ, मेज़ें, तिपाइयाँ, शेल्फ़, चारपाइयों के हिस्से, वरतन, चीनी-काँच के सामान के टुकड़े, टूटे मुड़े हुए खाली ट्रंक। घरों के दरवाज़े भी तोड़े गए लगते थे। कोई चौखट के साथ उखड़ा हुआ था, किसी की चूलें, कब्ज़े या कुण्डे उखड़े हुए थे और किसी के वीच के तख्ते टूटे हुए थे। एक मकान, जिसके दरवाज़े पर मुसलमानों का धार्मिक अक्षर ७८६ लिखा हुआ था, चाननमल को कुछ वेहतर हालत में लगा। उसने उसमें प्रवेश किया। वदवू और मक्खियों की भिनभिनाहट से क्षण-भर में ही उसका सिर चकरा गया। आँखों के अँधेरे से अभ्यस्त होने पर जो उसे नज़र आया, देखा न गया। वाहर गली में आकर वह उल्टी-पर-उल्टी करने लगा और फिर साथियों का इन्तज़ार किये वग़ैर तीसहज़ारी लौट आया।

चाननमल की ड्यूटी उन दिनों दो वजे वाद दोपहर से शुरू होती

थी। उस दिन वह समय पर 'देशभगत' के दफ्तर में न पहुँच पाया। पहले दिन की ख़बरों को काफ़ी तोड़-मरोड़कर उसने जो शीर्षक जमाए थे सम्पादक ने रद्द कर दिए थे और उनकी जगह 'दिल्ली शहर पर कब्ज़ा करने की मुसलमानों की साज़िश विफल, हिन्दुओं की चौकसी ने शरारती मुसलमानों को शहर छोड़ने पर मजबूर कर दिया' जैसे शीर्षक लगा दिए थे। सारी ख़बर को नये ढंग से दुबारा लिखा गया था और सम्पादक ने अपनी तरफ़ से यह भी जोड़ दिया था, 'बताया गया है कि मुसलमानों के पास से इतने हथियार बरामद हुए हैं कि अगर उनको इस्तेमाल करने का मौका मिल जाता तो वे शहर की ईंट-से-ईंट बजा देते।' इस तरह अपने ढंग से लिखी गई ख़बर पर शीर्षक के नीचे बीच में लिख दिया था, 'हमारे विशेष संवाददाता द्वारा'।

दफ्तर में पहुँचकर चाननमल सोचने लगा कि उस दिन की शहर की खबरों पर कौनसे शीर्षक जमाए। उपयुक्त शीर्षक सोचते-सोचते उसने अखबार के विशेष संवाददाता की ओर से समाचार दिया। 'दिल्ली में मुसलमानों की तोड़-फोड़ से भारी नुकसान' खबर में सविस्तार वर्णन किया गया कि दिल्ली पर कब्ज़ा करने में विफल होने पर मुसलमानों ने पूर्वनिर्धारित तोड़-फोड़ की योजना पर अमल किया। अपने घरों के दरवाज़े तक तोड़ दिए और उनमें कोई सामान भी साबुत न रहने दिया। बहुत जगह उन्होंने खिड़कियों से नीचे फेंक-फेंककर अपना सारा सामान चूर-चूर कर दिया।

उस अख़बार में काम करने के दस-बारह दिनों में यह पहली खबर थी जो उसके मालिक और सम्पादक दोनों को पसन्द आई थी। चाननमल ने इन थोड़े-से दिनों में यह अच्छी तरह जान लिया था कि अगर अखबार की नीति के अनुसार और मालिक की पसन्द की खबरें तैयार करना न सीखा तो उसके लिए तरक्की की सब राहें बन्द रहेंगी।

अखबार 'देशभगत' का मालिक आचार्य रामचन्द्र था। अख़बार का सम्पादक कोई और था, लेकिन सम्पादकीय आचार्यजी स्वयं लिखा

करते थे और उसके नीचे अपना पूरा नाम नहीं केवल 'राम' लिखते थे। कई धार्मिक संस्थाओं के नेता होने के कारण दिल्ली के एक ठेकेदार से कनॉट प्लेस के नज़दीक उन्हें दिल्ली आते ही जगह मिल गई थी, जहाँ १५ अगस्त से उनके दैनिक पत्र का प्रकाशन शुरू हो गया था। उनके अखबार का १३ अगस्त का अंक लाहौर में प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने पाकिस्तान में रहने और उसका वफ़ादार बनने का अपना निश्चय दोहराया था। १२ की रात को अखबार प्रेस में गया ही था कि दफ्तर के करीब की ग्वालमंडी को मुसलमान पुलिस ने आग लगा दी। इस खबर को सुनकर आचार्यजी ने अपने रसूख से रातों-रात हवाई जहाज़ का इन्तज़ाम किया। अखबार 'देशभगत' में सुबह लोग उनके पाकिस्तान का नागरिक बनकर रहने का अटल निश्चय पढ़ ही रहे थे कि तब वह दिल्ली में जा पहुँचे थे।

चाननमल तीसहज़ारी कैम्प में उसी झोंपड़े में रहता रहा। शरणार्थियों के परिवारों से खचाखच भरी बहुत-सी झोंपड़ियों में भीड़ अब कुछ कम हो गई थी। कुछ में नए शरणार्थी आ बसे थे, जहाँ सड़कों और फुटपाथों से भी बहुत-से शरणार्थी मुसलमानों के मकानों में जा बसे थे, लेकिन उनकी जगह नए शरणार्थी आकर बस गये थे। चाननमल के आसपास बहुत परिवर्तन नहीं हुआ था। सालिगराम और उसकी पत्नी भगवती वहीं रह रहे थे। मुसलमानों के मकानों पर उन्होंने खुद तो कब्ज़ा करना अपनी राष्ट्रीयता के विरुद्ध समझा, लेकिन अपनी सालियों को मुसलमानों के अच्छे-अच्छे मकानों पर कब्ज़ा जमाने में पूरी-पूरी मदद की। भगवती ने लाहौर से आए कांग्रेसी नेताओं के रसूख इस्तेमाल करके अपने बहनोइयों को मुसलमानों की दुकानें भी दिला दीं। सालिगराम ने कोई काम करना शुरू नहीं किया था। भगवती सुबह ही कहीं चली जाती और फिर दोपहर के बाद घर लौटती।

फ़ीरोज़चन्द की हिन्दू महासभा के जितने सदस्य तीसहज़ारी कैम्प से चले गए थे लगभग उतने ही वहाँ नये बसने वालों में से और बन गए

थे। लेकिन वह किसी ख़ास जायदाद या सामान पर कब्ज़ा नहीं कर सका था। लूट के दिन ग्यारह बजे से पहले ही अपने नौजवानों को साथ लिये वह कनॉट प्लेस पहुँच गया था। अभी लूट शुरू ही हुई थी कि लारियों में पुलिस आ पहुँची और उसने गोलियाँ चलाकर लोगों को तितर-बितर कर दिया। वहाँ से फ़ीरोज़चन्द दरियागंज पहुँचा। फ़ैज़ बाज़ार में उसके पहुँचने से पहले ही मुसलमानों की दुकानों और मकानों पर शरणार्थियों ने कब्ज़ा कर लिया था। चाँदनीचौक जाने के लिए जब वह लाल किले के पास पहुँचा तो वहाँ फ़ौज ने नाकाबन्दी कर रखी थी।

अगले दिन फ़ीरोज़चन्द ने मूँछ मुँडवा लीं, पगड़ी उतार अंग्रेज़ी बाल कटवाकर नंगे सिर रहने लगा। उसने लम्बा-सा कोट-पाजामा उतारकर बुशशर्ट, पतलून और बूट पहन लिए। जो उसके बदले हुए हुलिये पर टीका-टिप्पणी करता उसको वह तुरन्त सुना देता कि हिन्दुस्तान आज़ाद हो गया तो क्या, राज तो कोट-पतलून वालों का ही है। देहाती लिबास में तो कोई सरकारी दफ्तरों के पास नहीं फटकने देता। चाननमल ने उसकी नई शक्ल देखकर 'वाह लालाजी' कहते हुए कहकहा छोड़ा तो फ़ीरोज़-चन्द ने उसको डाँटते हुए कहा, "यह चाननमल टनटनमल भी कोई नाम है ! इस दकियानूसी नाम के साथ तुम ज़िन्दगी में कभी तरक्की नहीं कर सकोगे। तुम्हें अपना नाम सी० एम० चोपड़ा रख लेना चाहिए। ख़बर-दार, मुझे आगे से कभी लाला कहा ! मेरा नाम दीवान फ़ीरोज़चन्द है। मुझे दीवानजी कहा करो।" कैम्प में आने के शुरू दिनों में ही फ़ीरोज़-चन्द ने आसपास के लोगों की जाति-पाँति का पता लगा लिया था कि कौन खत्री है, कौन अरोड़ा, कौन ब्राह्मण। इसी कारण फ़ीरोज़चन्द को मालूम था कि चाननमल चोपड़ा खत्री है।

फ़ीरोज़चंद के कहने के कुछ दिन बाद चाननमल अपने नाम के आगे चोपड़ा लगाने लगा और पूरे चाननमल चोपड़ा की बजाय उसने अपने आपको सी० एम० चोपड़ा लिखना और कहना शुरू कर दिया। पहले महीने की तनख्वाह मिलने पर उसने कमीज़-पाजामा पहनकर दफ्तर

जाना वन्द कर दिया और पतलून के साथ पूरे बाजू और नोकदार कॉलर की कमीज़ पहनने लगा।

कनॉट प्लेस में लूट मचने की ख़वर सुनकर कोहली वहाँ ग्यारह बजे ही पहुँच गया था। वहाँ आकर मुस्लिम लीग के लीडर वक़ार रिज़वी के घर के वरामदे पर उसकी नज़र पड़ी तो दीवार पर शिवजी की वहुत वड़ी तस्वीर नज़र आई। गरदन उठाकर उसने ऊपर अच्छी तरह देखा तो वरामदे से इस तरह धुआँ निकल रहा था जैसे वहाँ पूजा हो रही हो। क्वीन्सवे से कनॉट प्लेस को छूती हुई सड़क पार खड़ा कोहली उचक-उचककर उधर ताकता रहा, लेकिन इससे अधिक वह कुछ न देख पाया। इस फ्लैट में विल्डिंग के पीछे से रास्ता जाता था। वहाँ पहुँचकर कोहली ने देखा कि सीढ़ियों के दरवाज़े के ऊपर पूरी चौखट जितना वोर्ड लगा हुआ है, जिस पर 'दैनिक देशभगत' लिखा हुआ था। दरवाज़े के दाईं ओर आचार्य रामचन्द्र के नाम की तख्ती और वाईं ओर की तख्ती पर नरेश कुमार लिखा हुआ था। 'दैनिक देशभगत' का साइनवोर्ड न होता तो भी कोहली को यह जानने में कठिनाई न होती कि आचार्य रामचन्द्र और उनके सुपुत्र नरेश कुमार कौन हैं। कोहली को पहले खयाल आया कि देर से पहुँचा हूँ, इसलिए यह सुनहारा मौका हाथ से जाता रहा है। वह फिर वाज़ार की तरफ़ आया और फ्लैट के नीचे की एक दुकान के अन्दर जाकर उसने यह जानने की कोशिश की कि आचार्य रामचन्द्र ने कब और कैसे वहाँ कब्ज़ा किया था। कोहली को मालूम हुआ कि आचार्यजी ने लाहौर में अपनी जायदाद के एवज़ इस फ्लैट पर कब्ज़ा किया है। अदला-वदली की शर्त में यह भी एक शर्त थी कि अपना सामान रिज़वी साहव ले जाएँगे, क्योंकि उनमें वहुत कीमती कालीन आदि थे जो उनके वाप-दादा ईरान से हिन्दुस्तान आते हुए साथ लाए थे। इसके अलावा आराम व सजावट का अनगिनत सामान था, जिसे देकर आचार्यजी ने आँखें फेर लीं और वक़ार रिज़वी को वहाँ से एक सूई तक न ले जाने दी।

किसी अच्छी जगह ऑल इन्डिया रिफ्यूजी वेलफ़ेयर एसोसियेशन का

दफ्तर न बन सका। फिर भी कोहली ने अपनी एसोसियेशन को लोकप्रिय करने की पूरी-पूरी कोशिश की। उसे यह समझने में देर न लगी कि अखबार में नाम छपे बिना कोई आदमी भी नेता नहीं बन सकता और न ही किसी सभा-सोसाइटी की साख बन सकती है। कैम्प में आने-जाने के कारण उसकी चाननमल और कुछ अन्य अखबारों के कर्मचारियों से जान-पहचान हो गई थी। किसी को रुपये देकर, किसी को खाना खिला या चाय पिलाकर वह दूसरे-तीसरे दिन अपनी एसोसिएशन की खबरें या शरणार्थियों के सम्बन्ध में अपना बयान छपवाने लगा।

दैनिक 'देशभगत' में प्रायः एसोसिएशन की खबरें छपतीं, विशेषकर जब उसमें कांग्रेसी नेताओं की निन्दा या शरणार्थियों के लिए कुछ भी न करने के लिए भारत सरकार को लताड़ सुनाई गई होती। कोहली का नाम इन खबरों में तभी छपता जबकि खबरें इस तरह के शीर्षक देकर छापी जातीं : 'शरणार्थियों को निकालकर दिल्ली के मुसलमानों को फिर आबाद करने की नेहरू पाकिस्तान से साज़िश न करे।' कोहली के एक बयान को चाननमल ने छपने के लिए तैयार किया, जिसमें उसका पूरा नाम व पता दिया हुआ था। पत्र के सम्पादक ने चाननमल को बुलाया और पूछा कि इसके लिए कोहली से उसने कितने रुपये लिये हैं। जब चाननमल ने बताया कि कोई रुपया-पैसा नहीं लिया तो सम्पादक ने सवाल किया कि चाननमल ने खाना उससे कितनी बार खाया है। जब इसका जवाब भी उसने 'न' में दिया तो सम्पादक ने उसे इसी ढंग के कुछ प्रश्न पूछे और चाननमल को स्वीकार करना पड़ा कि वह ऑल इण्डिया और रिफ्यूजी वेलफ़ेयर एसोसिएशन के प्रधान को जानता है। सम्पादक ने चाननमल को बताया कि अखबार में प्रति लाइन विज्ञापन की दर एक रुपया दो आने है और एसोसिएशन के साथ जोड़कर कोहली का पूरा नाम दो लाइनों के करीब है। इसका मतलब यह हुआ कि चाननमल कोहली को दो रुपये चार आने की पब्लीसिटी देना चाहता है। सम्पादक ने चाननमल को दिल्ली के एक व्यापारी का

उदाहरण देते हुए वताया कि किस तरह उसके वयान एकाएक 'देश भगत' में छपने लगे थे और कई वार वयान आने का इन्तज़ार किए विना उसकी तरफ़ से लिखकर छाप दिया जाता था। वजह यह थीं कि आचार्य-जी को उसकी तरफ़ से सौ रुपये प्रतिमास और सम्पादक को दस रुपये प्रतिमास मिलते थे। अगर दफ़्तर में किसी और को भी चाय-पानी के लिए वह कुछ देने लगा था यह उसकी अपनी मर्ज़ी थी। जितना गुड़ डालेगा उतना मीठा होगा।

मूँछें मुँडवाने के दो दिन वाद फ़ीरोज़चन्द के साथ जो घटना घटी उससे हिन्दू सभा की उसकी नेतागीरी पर वहुत बुरा प्रभाव पड़ा। मार्च १९४७ में जब रावलपिंडी में आसपास के ग्रामीण इलाके के मुसलमानों ने लूट-मार की थी और वहाँ से हिन्दू और सिक्ख अपने घर छोड़ने पर मजबूर हो गए थे, तो फ़ीरोज़चन्द सरगोधा से अपने छोटे भाई के पास अम्वाला छावनी आ गया था, जहाँ वह फ़ौज में काम करता था। सरगोधा एक छोटा-सा शहर था। युद्ध-काल में अनाज की कीमत वहुत वढ़ जाने के कारण वहाँ के ज़मींदारों ने खूब कमाया था और फ़ीरोज़चन्द की कोठी के दाम वहुत लग रहे थे। उसने कोठी को सैंतालीस हज़ार का बेच दिया था और तीन-चार महीनों के लिए सरगोधा में वकालत छोड़कर अम्वाला आ जाना उसके लिए मुश्किल नहीं था। प्रतिदिन का थोड़ा-बहुत खर्च चलाने के लिए उसने अपना बैंक का हिसाव अम्वाले में उसी बैंक की ब्रांच में मँगवा लिया था। उसकी एक ही लड़की थी जो बी० ए० पास करने के बाद दो-तीन साल सरगोधा में रही, लेकिन जब अच्छा वर मिलता नज़र न आया तो फ़ीरोज़चन्द ने उसे बी० टी० पढ़ने लाहौर भेज दिया था। फ़ीरोज़चन्द अम्वाला आया था तो लाहौर में शान्ति थी और उसकी वेटी लड़कियों के जिस होस्टल में रहती थी वह वहुत सुरक्षित स्थान पर था। इसलिए उसने वेटी को लाहौर में पढ़ते रहने दिया था। भारत के विभाजन से दो दिन पहले लड़कियों के उस होस्टल पर सशस्त्र मुसलमानों ने आक्रमण किया, बहुत-सी लड़कियाँ मार डाली गईं और

जो वचीं अपहृत कर ली गईं ।

फ़ीरोज़चन्द ने अपनी वेटी का नाम लापता सम्बन्धियों या अपहृत स्त्रियों की सूची में दर्ज नहीं करवाया था । उसने सोचा था कि वह मार दी गई है तो मिलेगी नहीं, अगर अपहरण कर ली गई है तो मुसलमानों के चंगुल से निकलना उतना ही असम्भव है। अपहृत लड़कियों में फ़ीरोज़चन्द की लड़की सुमित्रा भी थी । जव उन्हें मुसलमान अपने मुहल्ले में ले गये तो वहाँ के वुज़ुर्गों ने समझा-वुझाकर उन लड़कियों की इज़्ज़त की रक्षा की और उन्हें डी० ए० वी० कॉलेज के भारतीय कैम्प में भेज दिया। कैम्प के संचालकों ने अम्वाला से पता लगा उसे सीधा तीसहज़ारी कैम्प में पिता के पास भेज दिया ।

सुमित्रा को एक सामाजिक कार्यकर्त्री जव लेकर आई तो फ़ीरोज़-चन्द भौंचक रह गया। उसने किसी को नहीं वताया था कि उसकी पुत्री पाकिस्तान में रह गई है, न ही किसी ने उसे दुख प्रकट करते देखा था। आस-पास सव हैरान रह गए। वेटी से मिलने और उसे प्यार करने के वाद पहले तो फ़ीरोज़चन्द उसे अपने साथ झोंपड़े में ले जाने पर चूँ-चरा करने लगा। सामाजिक कार्यकर्त्री से उसने कहा कि उसकी पुत्री मुसलमानों के पास रहकर आई है, पहले इसे स्त्रियों के किसी आश्रम में रखा जाना चाहिए। जव लोगों ने उसे वुरा-भला कहा तो उसने वेटी को अन्दर आने दिया। उसकी पत्नी ने वीच में एक-दो वार दखल देने की कोशिश भी की, लेकिन पति आँखें लाल करके इस तरह घूरता था कि उसकी ज़वान सिल जाती थी ।

आठ

दिल्ली में साम्प्रदायिक तनातनी के बाद गांधीजी ने फ़ैसला किया कि वह दिल्ली में ही आकर रहेंगे और वहाँ मुसलमानों को बेघर नहीं होने देंगे। इस पर समाचारपत्रों में गांधीजी के विरुद्ध उत्तेजना पैदा करने के प्रयत्न और भी ज़ोरों से किए जाने लगे। अन्य समाचार-पत्रों की तरह 'देशभगत' में बड़े-बड़े शीर्षकों के साथ ख़बरें दी जातीं कि दिल्ली के शरणार्थी कहाँ-कहाँ और कैसे-कैसे गांधीजी के विरोध में प्रदर्शन की तैयारी कर रहे हैं। तीसहज़ारी कैम्प के सम्बन्ध में छपने-वाली खबरें मनघडंत होतीं, या राई से पहाड़ बना दी जातीं। ख़बरों के तोड़ने-मरोड़ने के बारे में चाननमल सारी तरकीबें समझ गया था और वह इसका अभ्यस्त भी हो चुका था, लेकिन नितान्त निराधार समाचार छापना चाननमल को अब भी बहुत बुरा लगता था। ख़बरों पर बढ़ा-चढ़ाकर शीर्षक जमाना बहुत भद्दा लगता था। शीघ्र ही चाननमल को पता चला गया कि इस तरह इन समाचारों के छापने के लिए आचार्यजी को कहीं से विज्ञापनों के रेट पर रकम मिल रही है।

गांधीजी के विरुद्ध समाचारपत्रों द्वारा इस तरह आन्दोलन छेड़ देने के कारण दीवान फीरोज़चन्द की लीडरी फिर चमक उठी थी। रोज़ाना उसके नाम से बयान छपते, जिनमें हिन्दुओं से और विशेषकर शरणार्थियों से आग्रह किया जाता कि वे गांधीजी के ख़िलाफ़ प्रदर्शन की पूरी-पूरी

तैयारी करें और साथ ही गांधीजी को चेतावनी दी जाती कि दिल्ली न आएँ। प्राय: अपने इन वक्तव्यों और अपीलों की सूचना दीवान फ़ीरोज़-चन्द को समाचारपत्रों में पढ़कर ही मिलती। इसी प्रकार तीसहज़ारी कैम्प के भिन्न-भिन्न ज़िलों या शहरों से आए शरणार्थियों को उस ज़िले या शहर की किसी अखिल भारतीय संस्था का प्रधान या मन्त्री बना दिया जाता और उनकी ओर से 'देशभगत' और इसी प्रकार के कुछ अन्य पत्रों में गांधीजी के दिल्ली आने के विरोध में वक्तव्य छापे जाते। जिनके नाम से ये वक्तव्य छपते वे अधिकांशत: अनपढ़ थे। उन्हें तो पता ही नहीं लगता था कि गांधीजी के विरुद्ध कोई वक्तव्य उनके नाम से अखबारों में छपा है। सब कांग्रेस-विरोधी अख़बारों में ये वक्तव्य एक साथ छपते और अक्षरश: एक-से होते थे। इससे चाननमल ने अनु-मान लगाया कि सारे वक्तव्य एक जगह गढ़कर अखबारों को भेज दिए जाते हैं।

तीसहज़ारी शरणार्थी शिविर में सेवा-कार्य करने के लिए तीन संस्थाएँ बन चुकी थीं। उनमें से एक शरणार्थी सेवा समिति थी, जिसका संचालन हिन्दू सेवक संघ कर रहा था। उसका मुख्य उद्देश्य शरणार्थियों को गांधीजी और प्रधान मन्त्री नेहरू के विरुद्ध उभारना था। वे भारतीय मुसलमानों और पाकिस्तान के खिलाफ़ हिन्दुओं में आग भड़काते रहते थे, क्योंकि इस बहाने नेहरू सरकार को जनता के सामने अयोग्य सिद्ध करना चाहते थे। शरणार्थियों और साधारण हिन्दुओं में पाकिस्तान में हो रहे अत्याचारों के कारण बहुत बेचैनी फैली हुई थी। हिन्दू सेवक संघ अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए इस तरह के हथियार इस्तेमाल कर रहा था। शरणार्थी सेवा समिति में हिन्दू सभा, हनुमान दल, आर्य युवक सभा आदि का सहयोग प्राप्त किया जा रहा था। दीवान फ़ीरोज़चन्द इस समिति के कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग ले रहा था।

शरणार्थियों में काम करनेवाली दूसरी संस्था दिल्ली कांग्रेस कमेटी की तीसहज़ारी शाखा थी। इसके भी अधिकांश सदस्यों में मुसलमानों

के प्रति बहुत कटुता थी। वे नेहरू सरकार और गांधीजी को शरणार्थियों की इस हालत के लिए उत्तरदायी मानते हुए भी खुले आम उनको बुरा-भला नहीं कहते थे। सरकारी साधन उनके पास थे। सरकार शरणार्थियों को जो आर्थिक सहायता दे रही थी, उन्हीं के द्वारा वितरित होती थी। इसलिए राजनीति में सक्रिय दिलचस्पी न रखने वाले सब शरणार्थी इस संस्था का साथ दे रहे थे। कम-से-कम वे इसका विरोध खुल्लमखुल्ला करने से कतराते थे। कांग्रेस की इस शाखा में हर रंग और दृष्टिकोण के लोग थे—वे भी जो मुसलमानों को दिन-रात कोसते रहते और वे भी जो शरणार्थियों की विपत्तियों के लिए मुसलमानों को नहीं अंग्रेज़ों को ज़िम्मेदार ठहराते थे। उनमें ऐसे भी थे जो गांधीजी के भक्त थे और ऐसे भी जिन्हें गांधीजी का मुसलमानों के प्रति सौहार्द एक आँख न भाता था। उनमें ऐसे भी थे जो केवल इसलिए साथ थे कि इस तरह शासक-वर्ग से सम्पर्क बनाए रखा जा सकता है। शंकर स्वामी तीस-हज़ारी कांग्रेस कमेटी के अग्रणियों में से था। उसने मोरीगेट के पास ही नहीं बाड़ा हिन्दूराव में भी मुसलमानों की दुकान पर कब्ज़ा कर लिया था और दोनों जगह लोगों की बीमारियों का इलाज कर रहा था। मोरीगेट के पास सुबह सात से नौ और तीसरे पहर तीन से पाँच, बाड़ा हिन्दूरांव में सुबह साढ़े नौ से साढ़े बारह और शाम को साढ़े पाँच से साढ़े सात। 'यहाँ सब बीमारियों का इलाज खुद परमात्मा करता है' और उसके नीचे का पूरा विवरण अब खूबसूरत बोर्ड पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ दोनों जगहों पर लटक रहा था। उसने अपने चारों भाइयों और तीनों बहनोइयों को दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी और दिल्ली तथा भारत सरकार द्वारा खोले गए पुनर्वास विभागों में नियुक्त करवा दिया था।

उस कैम्प और अन्य स्थानों पर शरणार्थियों में काम करनेवाली तीसरी संस्था जनवादी शरणार्थी सभा थी, जिसका अंग्रेज़ी नाम डैमोक्रेटिक रिफ्यूजी एसोसियेशन था। शरणार्थियों में काम करनेवाली अन्य

दोनों संस्थाएँ इस तीसरी संस्था में काम करने वालों को मुसलमानों या कम्यूनिस्टों के एजेण्ट कहती थीं। शरणार्थी सेवा समिति और जनवादी शरणार्थी सभा में अधिकतर कार्यकर्ता कैम्प के बाहर के लोग थे। ये पंजाबी तो थे लेकिन शरणार्थी नहीं लगते थे। जनवादी सभा के कार्य-कर्ताओं में बहुत-सी औरतें और पढ़ी-लिखी लड़कियाँ भी थीं। वे कैम्प की औरतों से मिल-जुलकर अनेक प्रकार के कार्यों में उनकी सहायता करती थीं। मुसलमानों के विरुद्ध वे किसी प्रकार की घृणा नहीं फैलाती थीं। इसी कारण चाननमल की बहन लालकौर और सुमित्रा दोनों उनके बहुत करीब आ गई थीं। अपने पिता दीवान फ़ीरोज़चन्द के साथ सुमित्रा की दो दिन तक बहुत तनातनी रही। फ़ीरोज़चन्द बात-बात पर मुसल-मानों और गांधीजी को मोटी-मोटी गालियाँ देता और सुमित्रा उसे टोकती। तीसरे दिन यह तनातनी इतनी बढ़ गई कि फ़ीरोज़चन्द ने तैश में आकर अपनी बेटी की लात-थप्पड़ों से पूजा कर डाली और उस पर मुसलमानों के साथ रहकर आने का आरोप लगाया। रोती-चीखती सुमित्रा पिता के झोंपड़े से बाहर निकली तो शाम भीग रही थी। उसके शरणार्थी वनिता आश्रम में जाने के लिए तैयार होने पर भी आसपास के लोगों ने उसे वहाँ न जाने दिया। बाबा निहालसिंह के पास उसके रहने का प्रबन्ध कर दिया गया और बाप-बेटी में समझौते की कोशिश की जाने लगी। फ़ीरोज़चन्द अपने किए और कहे पर बहुत लज्जित हुआ, लेकिन सुमित्रा पिता के पास वापस जाने के लिए तैयार न हुई। शरणा-र्थियों के बच्चों के लिए कैम्प में हाल ही में खुले सरकारी प्राथमिक स्कूल में अगले ही दिन उसे अध्यापिका का काम मिल गया और वह बाबा निहालसिंह के पास रहने लगी। जनवादी शरणार्थी सभा से सुमित्रा का सम्पर्क होने के बाद से फ़ीरोज़चन्द ने बेटी को माँ से मिलने के लिए मना कर दिया। इस घटना के बाद फ़ीरोज़चन्द में एक परिवर्तन यह आया कि अब वह ज़ोर-ज़ोर से छींकने लगा था। वह इतने ज़ोर से छींकता कि आसपास खड़े लोगों पर फुहार-सी पड़ने लगती और फिर

वह नाक को इतने ज़ोर से साफ़ करने लगता कि उससे सीटी बजने लगती।

इन शरणार्थी संस्थाओं की आपसी होड़ और विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के परस्पर तनाव की सतह के नीचे ज़िन्दगी की धारा कुछ समय के लिए रुककर फिर बहने लगी थी। हर एक अपने-अपने संस्कारों और धारणाओं के अनुसार जीवन से जूझने लगा था। कठिन परिश्रम ने हर एक की ज़िन्दगी में फिर चमक ला दी थी। जीवन का क्रम पूर्ववत् चलने लगा था। कहीं नई ज़िन्दगी जन्म लेती और आस-पास खुशियों की महक फैल जाती। कहीं जीवन का दीपक बुझ जाता और लोग दुख में साझा करने के लिए इकट्ठे हो जाते। कहीं दो बच्चों के झगड़ने पर महाभारत छिड़ जाता और कहीं किसी का बाल बाँका होने पर जान न्यौछावर कर दी जाती। अपना काम छोड़ औरों का हाथ बँटाते और कुछ अपने धन्धे पर चुपके-चुपके चले जाते और शाम को उतने ही दबे पाँव आकर छोटे-से घरों की विशाल दुनिया में खो जाते और पत्नी के स्नेह और बच्चों की क्रीड़ा में स्वर्ग का सुख प्राप्त कर लेते।

कुछ व्यक्ति यहाँ भी ऐसे थे जिन्हें गन्दे तरीके से औरतों का ज़िक्र करने की पुरानी आदत थी। वे अब भी औरतों की बातें करते-करते होंठ काटते, या अवसर मिलता तो औरतों से घुल-घुलकर बातें भी करते। पुरानी शिकायतें यहाँ भी थीं। जैसे पहले किसी की उपज में कमी इसलिए आ गई थी कि खेतों के पास से रेलवे लाइन निकाल दी गई थी। अब उसे यह शिकायत थी कि यहाँ उसकी दुकान इसलिए तरक्की नहीं कर रही, क्योंकि दुकान के सामने कुआँ है या दुकान की सीढ़ियाँ बाईं तरफ़ होने की बजाय दाईं तरफ़ हैं।

तंग बाज़ारों, अँधेरी दुकानों, टूटे हुए बेरंग मकानों, कीचड़-गर्द से घिरी हुई झोंपड़ियों में वे अपने-अपने तरीके से ज़िन्दगी को खूबसूरत बनाने में लगे हुए थे। सुबह-शाम खेलते हुए बच्चों की आवाज़ों से वातावरण गूँजने लगा था। नलकों पर पानी भरते, राशन की कतारों में खड़े

या राह चलते लड़के-लड़कियों से आँखें लड़ाने लगते। कोई आँखें नीची कर लेती और कोई आँखों-ही-आँखों में वात कर जाती। सव मानवीय सम्वन्धों के धागे फिर से जुड़ गए थे। कहीं व्याह-शादी की वातें छिड़तीं, कहीं कोई घोड़ी चढ़ता, वहनें घोड़ी की वाग पकड़तीं और डोली के स्वागत में लड़कियाँ गाने और नाचने लग जातीं। कहीं लड़की-लड़के के चुपके-चुपके प्रेम-विवाह कर लेने पर उनके माता-पिता छाती पर पत्थर रख रह जाते और कभी कोई आदमी वाल-वच्चों को छोड़कर किसी और की वीवी या वेटी के साथ गायव हो जाता और उसके वाद दाँता-किटकिट मच जाती। लोग ज़िन्दगी जिए जा रहे थे और अपने-अपने ढंग से ज़िन्दगी को सँवारने की कोशिश कर रहे थे, क्योंकि ख़राव-से-ख़राव ज़िन्दगी अच्छी-से-अच्छी मौत से लाख वार वेहतर है। वे यह भी जानते थे कि वड़े-से-वड़े दुःख को अपने वच्चों को छाती से लगाकर भूला जा सकता है और जान तोड़ मेहनत की थकान और गन्दे-से-गन्दे वातावरण की दुर्गंध को घर की वन्द सीमा में वीवी की मुहव्वत में विसारा जा सकता है।

जीवन में मिठास के कितने क्षण होते हैं! ज़िन्दा रहने और ज़िन्दगी से मुहव्वत करने में कितना नशा होता है! उन लोगों से वहुत-कुछ छीन लिया गया था, लेकिन उन्होंने वहुत-कुछ वचा भी लिया था। जो कुछ वच गया था उसी को सँजोए रखने और नया जुटाने के लिए उनके जीवन ने नया अर्थ ले लिया था। उनमें से वहुतों ने वीती घटनाओं पर दुःख प्रकट करना छोड़ दिया था। देर-अवेर सभी के घाव भर गए। दागों को देखकर ही वीते दिनों की याद ताज़ा कर ली जाती थी।

अपने खेतों और पूर्वजों के मकानों को भुलाना आसान नहीं था। लेकिन वे एक प्राचीन परम्परा के उत्तराधिकारी भी तो थे। खेतों और पूर्वजों के घरों की तुलना में वे सभ्यता, परम्परा और प्राचीन ग्रन्थ थे जिनकी रक्षा वे युगों से करते चले आ रहे थे। इन्हीं से उनका जीवन समृद्ध होता था। इसीसे उनके रहन-सहन में निखार आता था। नई

पीढ़ी को यही कुछ सौंपने के लिए वे अपने काम-धन्धों और व्यवसायों में जी-जान से जुट गए।

वे इतना ही जानते थे कि पक्षियों की तरह मनुष्य को दिन निकलते ही अपने काम-धन्धे पर चला जाना चाहिए और शाम को अपने बाल-बच्चों के लिए अन्न-दाना लेकर लौटना चाहिए। अपने परिवार की छोटी दुनिया में खोये हुए, जीवन के छोटे-छोटे संघर्षों में जूझते हुए वे बड़ी-बड़ी समस्याओं में उलझने से डरते थे। दूसरे, वे उन्हें अच्छी तरह समझ भी नहीं पा रहे थे। इस शहर ने अभी उन्हें यह नहीं सिखाया था। शरणार्थियों में काम करने वाली तीनों संस्थाओं के प्रति वे तटस्थ थे। राजनीतिक वादविवादों को पूरी तरह न समझ पाने के कारण जिस संस्था से काम निकलता, निकाल लेते। कोई उन्हें राशन कार्ड बनवाने या क्लेम का फ़ार्म भरने में मदद देता तो वे उसका स्वागत करते। सरकारी आर्थिक सहायता से अगर कोई उनका भाग दे देता तो वे उसका धन्यवाद कर देते। कोई उनकी तरफ़ से शिकायत की अर्ज़ी लिख देता तो उस पर वे हस्ताक्षर कर देते या अँगूठा लगा देते। लेकिन उनसे जब यह कहा जाता कि गांधीजी को मार दिया जाना चाहिए तो बीच में से कोई बोल उठता कि भाई हिन्दू तो मक्खी-मच्छर को नहीं मारता, तुम्हें गांधी महात्मा को मारने की क्या पड़ी है! शाम को जब वे अपने झोंपड़ों के बाहर बैठे होते तो कोई उनसे कहता कि शरणार्थी सेवा समिति के सदस्य बन जाओ। कोई उनसे आकर कहता कि कांग्रेस में शामिल हो जाओ, कोई उन्हें जनवादी शरणार्थी सभा के कार्यों में सहयोग करने के लिए कहता। वे सबकी हाँ-में-हाँ मिला देते। बाबा निहालसिंह या कोई और बुज़ुर्ग उन्हें टालते हुए कह देता कि आप सब पढ़े-लिखे हैं। आपस में फ़ैसला कर लो। जो मिलकर कहोगे हम कर लेंगे।

लेकिन गांधीजी के दिल्ली आने के फ़ैसले के बाद हिन्दू सेवक संघ और शरणार्थी सेवा समिति के कार्यकर्ताओं ने विरोधी प्रदर्शन की जिस ज़ोर से तैयारी शुरू की थी उससे सभी शरणार्थी बहुत प्रभावित हुए थे।

जो कुछ अखबारों में छपता था उससे कहीं अधिक उत्तेजनापूर्ण बातें छोटे-बड़े जलसों में कही जाने लगी थीं। शरणार्थियों की बस्तियों, शिविरों, सड़कों, बाज़ारों और गली-मुहल्लों में जगह-जगह सुबह-शाम जलसे होने लगे थे। यह बात बार-बार दोहराई जा रही थी कि गांधीजी मुसलमानों के घर खाली करवाकर उनमें मुसलमानों को फिर से आबाद करने के लिए आ रहे हैं। कैम्प में भी लोगों से पूछा जा रहा था कि कौन कितने लोगों को प्रदर्शन में साथ ला सकता है और साथ ही हर प्रकार की सहायता देने का वायदा किया जा रहा था। कुछ लोगों को इसके लिए पेशगी रकमें दी जा रही थीं। कांग्रेस या जनवादी सभा के कार्यकर्ता चेतावनी दे रहे थे कि गांधी-विरोधी प्रदर्शन पर जो इतना रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है, यह पूँजीपति और प्रतिक्रिया-वादी शक्तियाँ दे रही हैं, ताकि नेहरू सरकार को उलटने के लिए वातावरण तैयार हो जाए। इस प्रदर्शन के विरोधियों को मुसलमानों या कम्यू-निस्टों के एजेन्ट कहकर खामोश करने की कोशिश की जाती थी।

कोहली ने अपने-आपको अभी तक इन राजनीतिक गुटबन्दियों से अलग रखा था। अपनी रिफ्यूजी वैलफ़ेयर एसोसियेशन के समर्थकों को वह यही परामर्श देता था कि किसी का विरोध न करो और सबसे लाभ उठाओ। चाननमल के परामर्श पर उसने दैनिक 'देशभगत' के सम्पादक मेलाराम मलंग को खाने पर बुलाया था। जिस तरह उसने शराब पी थी और जिस ललक से उसने खाना खाया था, देखकर कोहली को बहुत हैरानी हुई थी। वह सूखा-साखा, लम्बा-तड़ंगा अधेड़ उम्र का आदमी था। निचुड़े हुए नीबू-सी नाक और लटकता हुआ निचला होंठ सदा कँपकँपाते रहते थे। मुंह मूर्खतापूर्ण मुस्कराहट में बार-बार खुल जाता और बात-बात पर वह इस तरह 'हैं-हैं' करता हुआ हँसने लगता जैसे उसके फेफड़े फूंकनी हों। वह आँखें बन्द करके चुसकी ले-लेकर शराब पीता, जैसे शराब बर्फ़ से ठण्डी नहीं की हुई बल्कि अभी-अभी भट्ठी से उतरी है। खाना खाते और प्रत्येक ग्रास चबाते हुए वह ज़बान को होंठों

पर फेरता जाता। हर ग्रास के खत्म होते ही उसके दाँत यों खुले-के-खुले रह जाते और आँखें चमक उठतीं जैसे ज़िन्दगी में पहली बार उसे अच्छा खाना नसीब हुआ है। साथ के कमरे में चूहों की आवाज़ सुनकर वह खिल उठा और कहने लगा कि चूहे उसे बहुत पसन्द हैं, क्योंकि वे आहिस्ता और बिना शोर किए चलते हैं।

दीवानखाने के कीमती सामान की तरफ़ आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए वह कहने लगा, "आप तो बड़े आदमी मालूम होते हैं, आपको बहुत बड़ा लीडर होना चाहिए।" बाद में वह बताने लगा कि लाहौर में उसके बड़े मज़े थे। कोई ऐसा राजा-महाराजा, नवाब या बड़ा ज़मींदार नहीं था जिसने उसकी मुट्ठी गरम न की हो। फलाँ महाराजा से 'देशभगत' के मालिक आचार्य रामचन्द्र को सौ रुपये और उसे बीस रुपये मिलते थे। फलाँ नवाब आचार्यजी को एक सौ पच्चीस रुपये, उसे पन्द्रह रुपये और अखबार में काम करने वाले बाकी लोगों को पाँच-पाँच रुपये प्रति-मास देता था। कुछ लोग इसलिए पैसे देते थे कि उनका नाम अखबार में छपता रहे और कुछ से मासिक टैक्स इसलिए वसूल किया जाता था कि उनके नाम से जो खबरें उड़ रही हों, छपने न पाएँ।

मेलाराम मलंग ने खुद ही सुझाव दिया कि कोहली को आचार्यजी से बातचीत करने की कोई ज़रूरत नहीं। आचार्यजी तो बहुत रकम माँगेंगे। कोहली उसे ही बीस की बजाय पच्चीस रुपए प्रति मास दे दिया करे। ऐसी खबरें, जिन पर आचार्यजी को शक हो सकता है कि पैसे लेकर छापी गई हैं, केवल डाक-संस्करण में छापी जाएँगी। आचार्यजी डाक-संस्करण नहीं पढ़ते। उसने चोपड़ा को भी पाँच-दस रुपए प्रति-मास देने की सिफ़ारिश की। चाननमल को दफ़्तर में अब चोपड़ा के नाम से पुकारा जाता था। कोहली ने चोपड़ा को दस रुपये प्रतिमास देने की तत्काल हामी भर ली।

चलते समय मलंग मुँह खोलकर 'हैं-हैं' करता हुआ हिनहिनाने लगा। हाथ मिलाने के लिए उसने दोनों हाथ आगे बढ़ाए। दाएँ हाथ की

उँगलियाँ बाँए से दो-तीन इंच आगे बढ़ी हुई थीं। हाथ मिलाते समय वह दो बार 'बड़ी मेहरबानी' 'बड़ी मेहराबानी' कहकर बुड़बुड़ाया। फिर दबे-पाँव दरवाज़े से बाहर हो गया।

इसके बाद कोहली को यथासम्भव पब्लिसिटी मिलती रही। दिल्ली के बाहर 'देशभगत' का डाक-संस्करण पढ़ने वाले दिल्ली शहर के निवासियों से अधिक कोहली के नाम से अब परिचित थे। मलंगजी ने कोहली से यह भी कहा था कि यदि वह अपने सम्मान में किसी जलसे का आयोजन या अपनी सेवाओं की सराहना में अभिनन्दन-समारोह करवाना चाहता है या गले में फूलों के हार डलवाकर जलूस निकलवाना चाहता है तो जब चाहे इसका इन्तज़ाम हो जाएगा।

गले में फूलों के हार डलवाकर जलूस निकलवाने और अपने नाम के ज़िन्दाबाद के नारे सुनने के लिए कोहली का जी ललचा उठा, लेकिन इसके लिए खर्च का उसे पता नहीं था। उसके दिल में आया कि मलंगजी से मिलकर कुल खर्च पूछ ले, लेकिन वह खामोश रहा। जब से उसने शायर या कहानीकार के स्थान पर लीडर बनने का निश्चय किया था उसने फ़िज़ूलखर्च बन्द कर दिया था। शराब भी अब वह खुलेआम नहीं पीता था। अखबार में उसका नाम छपने और उसकी ऑल इण्डिया रिफ़्यूजी वैलफ़ेयर एसोसियेशन के प्रेसीडेण्ट होने की शोहरत फैल जाने के बाद एक विदेशी दूतावास का भारतीय कर्मचारी उससे मिलने आने लगा था। वह कभी-कभी उसे शराब की बोतलों की छोटी पेटी दे जाया करता था। छः बोतलें कोहली महीना-भर चलाने की कोशिश करता। दूतावास के उस कर्मचारी द्वारा कुछ छोटे-छोटे देशों के दूतावासों के अन्य कर्मचारियों से उसकी जान-पहचान हो गई थी, जिनसे ज़रूरत पड़ने पर विदेशी शराब सस्ते में मिल जाती थी। इन दूतावासों को कर-मुक्त शराब आयात करने की सुविधाएँ मिली हुई थीं। थोड़े-से लाभ पर विश्वसनीय हिन्दुस्तानियों को वे शराब बेच देते थे। इस तरह स्काच-

ह्विस्की की बोतल, जो बाज़ार में पचास-साठ की मिलती थी, कोहली को पन्द्रह-बीस रुपये में मिल जाती थी।

हवाई जहाज़ की टिकटों वाला रुपया अब खत्म होने वाला था। मुसलमानों के घरों का कीमती सामान बेचकर और सिविल लाइन्स की दो कोठियों की चाबी देकर कोहली ने सवा छः हज़ार रुपया बनाया था। उसमें से पाँच हज़ार उसने बैंक में जमा करवा दिया था। नेता बनने के लिए भी वह काफ़ी सोच-समझकर खर्च करता था। मोरीगेट के घर और गोल मार्केट के कमरे में अभी ढेरों कीमती सामान पड़ा हुआ था, जिसे वह ज़रूरत पड़ने पर बेच सकता था। वैसे भी भविष्य के बारे में भय और अनिश्चितता, जो पन्द्रह अगस्त से कुछ पहले उसका दम घोंट रही थी, अब किसी हद तक कम हो चुकी थी। अपने हाथ की रेखाओं को देखता हुआ वह अपने को यह विश्वास दिलाने में सफल हो जाता था कि कुछ भी हो, किसी-न-किसी तरह उसके पास रुपया आता रहेगा।

गांधीजी के विरुद्ध प्रदर्शन के सिलसिले में स्थिति ने इस तरह मोड़ लिया कि कोहली दोराहे पर आ खड़ा हुआ। वह इस दुविधा में था कि पुरानी नीति में क्या और किस तरह सुधार करे कि कांग्रेस वाले भी उसे दुशमन न समझें और उसकी लोकप्रियता को भी हानि न पहुँचे। कोहली के नाम से सी० एम० चोपड़ा ने 'देशभगत' में एक वक्तव्य छापा, जिसमें ऑल इण्डिया रिफ़्यूजी वेलफ़ेयर एसोसियेशन के प्रधान के तौर पर उसने घोषणा की थी कि एसोसियेशन के एक लाख सदस्य गांधीजी के दिल्ली आने के विरुद्ध सत्याग्रह करने के लिए कमर कस चुके हैं।

उसके नाम से इस वक्तव्य के छपने पर कोहली के माथे पर शिकनें तो पड़ीं, लेकिन उसको इस बात पर खुशी भी बड़ी हुई कि उसकी एसोसिएशन के सदस्यों की संख्या लाख से भी ऊपर छापी गई है। उसे मालूम था कि समाचारपत्र में छपी बात को अधिकतर लोग सोलह

आने सच मानते हैं। अब वह हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी शरणार्थी संस्था का प्रधान था और उसके हाथ में लाख से भी अधिक आदमी थे। इस वक्तव्य के दिल्ली संस्करण में भी छपने पर मेलाराम मलंग और सी० एम० चोपड़ा ने कोहली से एक बहुत बड़ी दावत खाई। उन्होंने कोहली को बताया कि एक लाख या इससे अधिक सत्याग्रहियों का ज़िक्र इस खबर में ज़रूरी था, वरना आचार्यजी आपत्ति करते।

बहुत सोच-विचार के बाद कोहली ने यह राह निकाली कि गांधीजी के विरुद्ध प्रदर्शन के लिए लोगों को उकसाने के बजाय वह गांधीजी से अपील करे कि दिल्ली में मुसलमानों के पुनर्वास के लिए नहीं, बल्कि शरणार्थी हिन्दुओं के आँसू पोंछने के लिए वे आएँ। अपने सब वक्तव्यों और भाषणों में वह इस बात को दोहराना न भूलता कि ऑल इण्डिया रिफ़्यूजी वेलफ़ेयर एसोसिएशन के एक लाख सदस्य बहुत-कुछ कर सकते हैं।

परिचित शरणार्थियों को चार-चार पाँच-पाँच रुपये देकर कोहली शरणार्थी बस्तियों में छोटे-छोटे जलसे करवाने लगा। बड़े जलसों में भाषण देते हुए उसे अभी घबराहट होती थी। वह अपने भाषणों में बात-बात पर शेर सुनाता था। इस पर राह चलते लोग भी आ जुड़ते। वैसे भी भाषण देते हुए वह इस तरह बे-सिर-पैर की बातें करता कि राहगीरों को समझने के लिए कि वह किस पक्ष का है, काफ़ी देर रुकना पड़ता। अपने भाषण को शुरू करते हुए वह कहता, "सुन तो सही जहाँ में है तेरा फ़साना क्या, कहती है तुझको खल्के खुदा ग़ायबाना क्या।" उसके बाद तुरन्त ही जोड़ देता, "आँख जो कुछ देखती है वह लब पर आ नहीं सकता, महवे हैरत हूँ कि दुनिया क्या-से-क्या हो जाएगी।" शरणार्थियों का ज़िक्र आते ही वह इन दो में से एक शेर ज़रूर सुनाता, "लिखा परदेश किस्मत में वतन को याद क्या करना, जब बेदर्द हाकिम हो तो फ़रियाद क्या करना," "हम जो फुटपाथ पर दुकान लिये बैठे हैं, आपकी दीद के अरमान लिये बैठे हैं।"

यू० पी० के लोगों को पुरविये या भय्ये कहता हुआ कोहली उनकी पान खाने की आदत का ज़िक्र करके शेर बोल उठता, "ज़िन्दगी पान-दान है प्यारे, पान है तो जहान है प्यारे। मुँह में बीड़ा है हाथ में बीड़ी, यह हमारी शान है प्यारे।" पूरब के लोगों की इस तरह खिल्ली उड़ाने पर वे वहुत खुश होते। लेडीहार्डिग सराय के दिनों की उसे कुछ अटकल-पच्चू तुकवन्दियाँ भी याद थीं। इधर-उधर की वातों के बीच भीड़ जमाने के लिए वह तुकवन्दियाँ ही सुनाने लग जाता। बोलते-बोलते उसे खुद ध्यान न रहता कि क्या कहना है या वात कहाँ से शुरू हुई थी। जव उसे कुछ और न सूझता तो अकवर इलाहावादी के गांधीजी के वारे में लिखे शेर सुनाने लगता, "नहीं हरगिज़ मुनासिव पेशवीनी दौरे गाँधी में, जो चलता है वह आँखें वन्द कर लेता है आँधी में", "इन्कलाव आया नई दुनिया नया हंगामा है, शाहनामा हो चुका अव वक्ते गांधीनामा है।" वीच में मुसलमानों के रस्म-रिवाज, ईद, मुहर्रम, रोज़ों के वारे में हास्यास्पद वातें सुनाता, पाकिस्तान की निन्दा करने लग जाता और शेर जड़ देता, "देखी जो गाय माता हसरत से ऊँट वोला, अफ़सोस शेखजी ने मुझको पिता न जाना।"

भाषण के अन्त में वह आम लोगों से और खासकर अपनी एसो-सिएशन के एक लाख सदस्यों से अपील करता कि कांग्रेस के पास तक न फटकें, क्योंकि "अगर आग के पास बैठोगे जाकर, तो इक दिन उठोगे अपने कपड़े जलाकर"। अन्त में अपना लिखा हुआ पहला शेर वह हमेशा सुनाता जिससे जलसे में बैठे उसके आदमी समझ जाते कि कोहली साहव ने भाषण समाप्त कर दिया है। वे 'शिवशंकर कोहली और ऑल इण्डिया रिफ्यूजी वैलफ़ेयर एसोसियेशन ज़िन्दाबाद' के नारे लगाने लगते। फूलों के हारों के लिए भी कोहली पैसे अलग से दे दिया करता था। गले में हार पहने वह मंच पर बुत-सा वना खड़ा रहता और अपने ज़िन्दाबाद के नारे सुनकर खुशी से मस्त हो जाता।

एक लाख से अधिक सदस्यों की महान् संस्था का प्रधान होने के

कारण कोहली को अपने महत्त्व का पता लग गया था। अब शरणार्थियों में काम कर रही तीनों सभाएँ उसकी तरफ़ से आँखें मूँदे नहीं रह सकती थीं और न ही समाचारपत्र उसके भाषणों और वक्तव्यों को रद्दी की टोकरी में फेंक सकते थे। अमरीकी और जापानी दूतावासों में उसे डिनर पर निमन्त्रित किया जाने लगा था। बाद में रूसी दूतावास ने भी अक्तूबर-क्रान्ति के अवसर पर उसे निमन्त्रण-पत्र भेजा था। यह जानकर कि वह शायर है, प्रगतिशील लेखक संघ, शनिवार समाज, दिल्ली साहित्यकार संसद आदि के सचिव उससे अपनी-अपनी गोष्ठियों में आने के लिए आग्रह करने लगे थे और वहाँ पहुँचने पर अक्सर बैठकों में उसे सभापति बना दिया जाता था। बेढब देहलवी 'राजधानी के कवि' नाम से एक पुस्तक का सम्पादन कर रहे थे। वह कोहली के पास इस संकलन के लिए कविता लेने आये तो कोहली ने फ़ुरसत न होने के कारण कोई कविता लिख न सकने का बहाना बनाया। बेढब देहलवी ने कहा कि वैसे कविता छपवाने के लिए पचास रुपये चन्दा देना पड़ता है। लेकिन आपको कविता लिखने का अवकाश नहीं तो सौ रुपये दे दीजिए। आपके नाम से एक कविता संकलन में प्रकाशित कर दी जाएगी। इस संकलन में कविता छपने के बाद कोहली अपनी गणना राजधानी के प्रसिद्ध कवियों में करने लगा। औरों के द्वारा रेडियो के लिए लिखी नज़्मों की उसने अपने नाम से किताब प्रकाशित करवा ली थी। इसके लिए उसे उर्दू बाज़ार के ग़ालिब पब्लिशिंग हाउस को सारा खर्च देना पड़ा था। अब उसके साहित्यिक व्यक्तित्व पर शक करना मूर्खता थी।

उन दिनों बहुत-से लोग कोहली से मेल-जोल बढ़ाने की कोशिश कर रहे थे। उनमें अधिकतर गांधी और नेहरू सरकार के विरुद्ध उत्तेजना फैलाने वाले लोग थे। वे गांधीजी के दिल्ली आने के विरुद्ध प्रदर्शन में उससे अपने एक लाख सदस्यों के साथ सम्मिलित होने के लिए आग्रह कर रहे थे। इस तैयारी के लिए कोहली को जिस तरह की सहायता की ज़रूरत थी, वे तैयार थे।

कोहली समझ गया था कि वे क्या चाहते हैं। लेकिन वह हामी भरने की जल्दबाज़ी नहीं करना चाहता था। आग्रह करने वालों में ऐसे हिन्दुस्तानी भी थे जिनका सम्पर्क विदेशी दूतावासों से था। उनसे वह बहुत आत्मविश्वास से बातें करता था। कोहली ने यह कहकर टालना चाहा कि एक लाख आदमियों को दिल्ली बुलाना, उनके भोजन आदि का एक-दो दिन के लिए प्रबन्ध करना और उनके वापस पहुँचाने पर खर्च करना, बहुत बड़ा काम है। कहना आसान है, करना मुश्किल। कई बार इस तरह टाले जाने के बाद गांधी-विरोधी लोग उस प्रदर्शन में शामिल होने की तैयारी के लिए कोहली का सारा-का-सारा खर्च देने को तैयार हो गए। कोहली ने उनसे पूछा कि वे कितने प्रदर्शनकारियों का प्रबन्ध करने की उम्मीद उससे रखते हैं। दिल्ली में से केवल दस हज़ार लोगों का प्रबन्ध वह कर सकता है। बाहर से आदमी बुलाने पड़ेंगे। उनके आने-जाने पर पन्द्रह रुपये प्रति आदमी और प्रत्येक पर दिल्ली में ढाई या तीन रुपये खर्च ज़रूर आ जाएगा। खर्च का यह हिसाब सुनकर वे फ़ौरन एक लाख की बजाय बीस हज़ार प्रदर्शनकारियों की बात करने लगे और इनमें से भी जो दस हज़ार बाहर से आने थे उस पर डेढ़ लाख से अधिक खर्च का हिसाब लगाकर असमंजस में पड़ गए।

अन्त में यह निश्चय हुआ कि ऑल इण्डिया रिफ्यूजी वैलफ़ेयर एसोसिएशन का प्रधान गांधी-विरोधी प्रदर्शन में अपनी संस्था के बीस हज़ार व्यक्तियों के साथ शामिल होगा और ये प्रदर्शनकारी दिल्ली से या आस-पास के पंजाब के ज़िलों से ही बुलाए जाएँगे, ताकि उनके लाने-लेजाने पर अधिक खर्च न हो। कोहली को इस सबका प्रबन्ध करने के लिए पन्द्रह हज़ार रुपए दिये जाएँगे और अगर ज़रूरत पड़ी तो पन्द्रह हज़ार का हिसाब देने पर कुछ और रकम भी मिल सकेगी। इसी पन्द्रह हज़ार में कोहली को काले झण्डे-झण्डियों का प्रबन्ध भी करना होगा। वे चाहते थे कि बीस-के-बीस हज़ार प्रदर्शनकारी, जिनका इन्तज़ाम कोहली करे, हाथ में काले झण्डे-झण्डियाँ लिये हों। इसके लिए

कोहली तैयार न हुआ। उसने वताया कि सौ वड़े झण्डे वाँस-सहित छः-छः रुपये का एक, हज़ार उससे छोटे झण्डे सवा दो रुपए फ़ी झण्डा पड़ेगा। अगर शेष अठारह-उन्नीस हज़ार आदमियों के हाथ में भी झण्डियाँ हुईं तो उसके पास वाकी प्रवन्ध के लिए क्या वचेगा। किसी सूरत में भी कोहली काले काग़ज़ की झण्डियों पर राजी न हुआ। शरणार्थियों की सवसे वड़ी संस्था की ओर से यह पहला प्रदर्शन था और शान के ख़िलाफ़ कोई वात करने के लिए वह तैयार नहीं था।

पन्द्रह हज़ार रुपये में से साढ़े सात हज़ार पेशगी मिलने के पश्चात् कोहली ने यह फ़ैसला किया कि सवसे पहले अपने सम्मान में एक वहुत विशाल समारोह करवाया जाए ताकि दिल्ली के वच्चे-वच्चे को पता लग जाए कि शहर में शिवशंकर कोहली नामक एक व्यक्ति है जो शरणार्थियों की सवसे वड़ी संस्था का प्रेसीडेण्ट होने के अलावा वुद्धिमान् नेता और प्रतिभाशाली साहित्यकार भी है। राजनीतिक जीवन में आने के वाद कोहली के हाथ पहली वार इतनी वड़ी रक़म आई भी। गांधी-विरोधियों के चले जाने के वाद वह यही सोचता हुआ अपने हाथ की रेखाओं को देखता रहा।

सी० एम० चोपड़ा भी तरक्की की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। न्यूज़ एजेन्सी की ओर से छोटी-सी खवर मिली थी, जिसके अनुसार चार अकाली सिक्ख पाकिस्तान में ग़ैर-कानूनी प्रवेश करते हुए वहाँ की पुलिस द्वारा गिरफ़्तार कर लिये गए थे। तलाशी लिये जाने पर उनके पास से कृपाणों के अतिरिक्त सात सौ रुपये भी वरामद हुए थे। इस ख़वर से पहले एटमवम के सम्वन्ध में कोई खवर चोपड़ा की नज़र से गुज़री थी। उसने अकालियों की ख़वर पर शीर्षक लगाया, 'रूस से एटमवम खरीदने की साज़िश। पाकिस्तान में चार अकाली गिरफ़्तार'। चोपड़ा ने इस खवर के आगे-आगे जोड़ दिया कि गिरफ़्तार किये गए एक अकाली ने स्वीकार किया कि वे एटमवम खरीदने रूस जा रहे थे और उनके पास अकाली नेताओं की ओर से मार्शल स्टालिन के नाम से खत था जो

उनमें से एक ने गिरफ्तारी के वक्त निगल लिया। इस खबर को एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यूज़ एजेन्सी ने भारत से वाहर प्रसारित किया और अमरीकी रेडियो रूस के विरुद्ध प्रचार करने के लिए इस पर कई दिन तक टिप्पणी करते रहे।

आचार्य रामचन्द्र इस खबर से वहुत प्रसन्न हुए थे। इस खयाल से कि यह होनहार लड़का तनख्वाह कम होने के कारण किसी और अखबार में न चला जाए, उसने चोपड़ा की तनख्वाह अन्य जूनियर सह-सम्पादकों की तरह अस्सी रुपये प्रतिमास कर दी। कागज़ पर वेतन एक सौ साठ रुपये था और इतने रुपयों की रसीद देनी पड़ती थी। यह परम्परा लाहौर के समय से ही चली आ रही थी।

चोपड़ा के साथ एक मज़ेदार घटना और घटी। सालिगराम के झोंपड़े के वाहर उसे कुछ काग़ज़ मिले, जो हवा से वाहर उड़ आए थे। उनमें एक वारीक टाइप में छपा छोटा-सा विज्ञापन था। चोपड़ा उसे उठाकर पढ़ने लगा :

"अनाथ स्त्री सेवा सदन की अपील

पाकिस्तानी तलवारों से वचकर आये हुए वच्चों और देवियों को धन और कपड़े दान करके जीवन सफल वनाओ। हमारी सभा के कार्य निम्नलिखित हैं :

(१) जिन बच्चों के माता-पिता कमाने में असमर्थ हैं उनकी पढ़ाई आदि का प्रवन्ध करना।

(२) जिन देवियों के माता-पिता नहीं हैं या बेकार हैं, उन देवियों की ब्याह-शादी का प्रवन्ध करना।

(३) विधवा स्त्रियों को काम-धन्धा दिलाना।

(४) जो वुजुर्ग अपनी सेवा आप नहीं कर सकते उनकी सेवा का प्रवन्ध करना।

(५) हमारी इस सभा का मुख्य उद्देश्य यह होगा कि लंगड़ों, लूलों तथा अनाथों की सेवा की जाए।

(६) जो सज्जन बेकार हैं उनकी रोटी का प्रबन्ध करने के लिए अपनी सरकार और धनियों से माँग करना।

इन सब बातों को सामने रखते हुए आप हमारी तन, मन, धन से पूरी सहायता करें, जिससे हमारा उत्साह बढ़े और हम इस काम को सफलतापूर्वक निभा सकें।

सब भाइयों और बहनों का धन्यवाद।

भगवती देवी शर्मा
भूतपूर्व सदस्य, कांग्रेस कमेटी लाहौर"

इस विज्ञापन को पढ़कर चोपड़ा का माथा ठनका और वह समझ गया कि सालिगराम की पत्नी सारा दिन किसलिए बाहर रहती है और उसके आते ही सालिगराम झोंपड़े के अन्दर जाकर क्यों फुसफुसाने और रुपये-पैसों की बात करने लग जाता है। एक-दो दिन के बाद चोपड़ा को पता लग गया कि भगवती देवी कुछ रिश्तेदार स्त्रियों के साथ चन्दा इकट्ठा करती है, जो आपस में ही बाँट लिया जाता है।

इसके बारे में चोपड़ा ने ख़बर तैयार की। अगर वह पहले की तरह अनाड़ी होता तो ख़बर को तुरन्त 'देशभगत' में छपने के लिए दे देता, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। एक रात जब सालिगराम खाना खाकर झोंपड़े के बाहर चारपाई पर आराम कर रहा था, चोपड़ा नमस्ते कहकर उसके पास जा बैठा। इधर-उधर की बातों के बाद उसने वह ख़बर सालिगराम को टार्च की रोशनी में पढ़ने के लिए दी और कहा कि यह ख़बर छपने के लिए अख़बार 'देशभगत' में आई थी। उसने उसे छापने की बजाय चुपके से जेब में डाल लिया था। ख़बर देनेवाले को उसने बहुत समझाया कि यह पड़ोस का मुआमला है, जाने दो। लेकिन वह यही रट लगा रहा था कि हज़ारों रुपया ठग रहे हैं। कुछ उसे भी मुँह बन्द रखने के लिए मिलना चाहिए।

ख़बर पढ़कर सालिगराम एक क्षण के लिए काँप उठा। खद्दर की गोल-सी टोपी माथे की तरफ़ सरक आई। चोपड़ा ने उस समय

और बात करना मुनासिब न समझा। केवल यह कहकर चारपाई से उठ खड़ा हुआ कि उसकी माँग सौ रुपये प्रतिमास की है।

अगले दो दिन तक कभी सालिगराम उसके पास आकर गिड़गिड़ाता और कभी भगवती आकर मिन्नतें करती और कहती कि वे आठ-दस हैं, सौ रुपये प्रतिमास तो उनके अपने हिस्से मुश्किल से आते हैं। अन्त में पच्चीस रुपये प्रतिमास पर बात ठहरी और चोपड़ा ने यही गनीमत समझी।

फ़ीरोज़चन्द ने वकालत फिर शुरू कर दी थी। उसके मुसलमान मुन्शी ने कानून की सारी किताबें, काले कोट, टाइयाँ और साइनबोर्ड तक लाहौर पहुँचा दिए थे। फ़ीरोज़चन्द का भाई अम्बाले से फ़ौजी ट्रक में सारा सामान ल आया। काला कोट घुटनों तक लम्बा था और फ़ीरोज़चन्द पाजामे के ऊपर उसे पहनकर छोटे कालरों की कमीज़ में पतली-सी काली टाई लगा लिया करता था। फ़ीरोज़चन्द ने सब कोट कटवाकर छोटे करवा लिए ताकि इन्हें पतलून के साथ पहन सके। नया बोर्ड बनवाकर झोंपड़े के आगे लटका दिया। दीवान फ़ीरोज़चन्द एडवोकेट के नीचे 'यहाँ क्लेम के बारे में भी मशविरा दिया जाता है' भी लिखा हुआ था।

फ़ीरोज़चन्द की पत्नी बिलकुल बदल गई थी। उसका नाम लछमन देई था। फ़ीरोज़चन्द उसे लच्छी या लच्छो कहकर पुकारता था और जब उसे डाँटता तो इस डाँट-डपट की शुरू लछो बाँदरी (बंदरिया) कह-कर करता। लड़की के वहाँ से चले जाने के बाद भी फ़ीरोज़चन्द बेटी को बुरा-भला कहता रहता और लछमन देई उसको टोकने के अलावा बीच-बीच में कह देती, "तुम तो उसकी जूती के बराबर नहीं।" तैश में आकर फ़ीरोज़चन्द उसे पीटने लगता। एक बार फ़ीरोज़चन्द ने पत्नी की कीकर की डाल से पिटाई की। चोट तो बहुत न आई लेकिन जगह-जगह पीठ पर काँटे चुभ गए और अगले दिन उसका शरीर इतना सूज गया कि उसे हस्पताल ले जाना पड़ा। हस्पताल से आकर लछमन देई

चुपचाप झोंपड़े में बैठे रहने की बजाय उसके आसपास इस तरह चक्कर काटती रहती जैसे झोंपड़ी में आग लगी हुई हो या अभी गिरने वाली हो। पहले फ़ीरोज़चन्द उसे बड़ी कोशिश के बाद कुछ कौर खिला देता। लेकिन अब वह खाती जाती और फ़ीरोज़चन्द भोजन समाप्त करने के बाद वहाँ बैठा उसके पेट भरने का इन्तज़ार करता रहता। लछमन देई से वह अब पहले की तरह कोई चालाकी की बात भी नहीं करता था। पहले वह खर्च का हिसाब देते हुए उसे छल जाया करता था, "तुमने मुझे तेईस रुपये दिये। तीन की चीनी आई, साढ़े चार का आटा, यह हुए साढ़े ग्यारह। पौने चार की दालें, यह हुए सवा इक्कीस। सवा दो रुपये के फल-सब्ज़ी, कुल साढ़े तेईस हुए। अठन्नी जो मैंने अपने पास से खर्च की है, दे दो।" पहले फ़ीरोज़चन्द पत्नी को इसी तरह हिसाब दिया करता था, लेकिन अब वह बीच में ही टोक देती और एक पैसा भी इधर-उधर करना मुश्किल हो जाता। वह पति के मना करने पर भी बेटी से मिलने जाती।

चाननमल सी० एम० चोपड़ा बनने के बाद अपनी बहन और उसके परिवार से कुछ दूर होने लगा था। कई बार उसे लगता कि वे उस छोटे-से झोंपड़े में एक साथ नहीं, बल्कि एक-दूसरे से बहुत दूर दो विभिन्न स्थानों में रह रहे हैं। पाकिस्तान से आई विधवा स्त्रियों के लिए सस्ती और बहुत छोटी किस्तों पर सरकार की ओर से सिलाई की मशीनें मिल रही थीं। लाल कौर सिलाई की एक ऐसी ही मशीन ले आई थी और अपने खर्च का प्रबन्ध स्वयं करने लगी थी। बच्चों को पढ़ाने के लिए भी सरकार की ओर से सुविधाएँ मिल रही थीं। उनसे लाभ उठा लालकौर ने दोनों बड़े बच्चों को स्कूलों में दाखिल करवा दिया था। चाननमल को बहन से पता लगा कि उसका बहनोई लाहौर में मज़दूर यूनियन का कार्यकर्ता ही नहीं कम्यूनिस्ट भी था। लाल कौर अपने पति की बाहरी बातों में बिलकुल दिलचस्पी नहीं लेती थी, लेकिन अब पति की स्मृति बनाए रखने के लिए कम्यूनिस्टों का वह बहुत सम्मान

करती थी। जनवादी शरणार्थी सभा की कार्यकर्त्री उससे अक्सर मिलने आती थी।

वहन से मिलने आनेवाली लड़कियों के उजले और संजीदा चेहरे तथा उनकी चुस्ती और चतुराई देखकर चोपड़ा का दिल मचल उठता। उनके चेहरे धुले-धुलाए, वाल वने-सँवरे और कपड़ों में एक खास सादगी और सफ़ाई होती थी। सुमित्रा के चेहरे पर भोलेपन के साथ-साथ ऐसा निखार आ गया था कि चोपड़ा देखता-का-देखता रह जाता। शहर की नफासत और शिष्टता सबसे पहले शरणार्थी लड़कियों और जवान स्त्रियों पर ही नज़र आने लगी थी। किसी ने दो चोटियाँ लटका ली थीं और किसी ने जूड़ा करना शुरू कर दिया था।

चोपड़ा वाली झोंपड़ियों की कतार में सात झोंपड़े छोड़कर लाजवंती नाम की एक औरत रहती थी। पाकिस्तान में बहावलपुर रियासत से वह आई थी। शरणार्थियों को लाने के लिए भारतीय फ़ौज देर से पहुँची थी और वहाँ के नवाव ने सुरक्षा के लिए रियासत के सब ग़ैर-मुसलमानों को वहावलपुर शहर के एक कालेज की इमारत में ठहरा दिया था। वहाँ ही लाजवंती का पति पेचिश से मर गया था। उसके दो लड़के थे—एक ग्यारह वरस का, दूसरा आठ का। उसने दोनों को सब्ज़ीमंडी के दुकानदारों के पास शागिद रखवा दिया था। घर का काम-धन्धा सुवह ही खत्म करके वह सारा दिन इधर-उधर घूमती रहती। भुने हुए चने या मकई की थैली लिये वह सारा दिन जवड़ों को चक्की के पाटों की तरह चलाती रहती। चोपड़ा का शरीर अच्छा था। कोट-पतलून पहनने और तरक्की हो जाने के कारण चेहरे पर चमक आ गई थी। वह युवक-सा लगने लगा था। चोपड़ा से दस साल वड़ी होते हुए भी, लाजवंती उसमें दिलचस्पी दिखाने लगी थी। वह लाल कौर के लिए छोटा-वड़ा कोई भी काम करने के लिए सदा तत्पर रहती। शाम को जब चोपड़ा घर लौटता तो वह उसके पास आ बैठती और ताश के पत्तों को फेंटते हुए कहती, "आओ हो जाए ताश की एक बाज़ी।" बात अनसुनी हो जाने पर भी वह

चोपड़ा के पास बैठी बातें करती रहती। कहती कि सब स्त्रियाँ मनचली होती हैं और किसी औरत के प्यार को ठुकरा देना बहुत बड़ा पाप है। बातें करते समय उसके लाल-लाल गदराए हुए गाल और भी दमक उठते और उसके रसभरे होंठ लटक आते। बीच-बीच में आत्महत्या कर लेने के विचार का ज़िक्र करना भी वह न भूलती।

लाजवंती ने आत्महत्या तो न की, लेकिन चोपड़ा को उससे शीघ्र ही छुटकारा मिल गया। शंकर स्वामी ने भगवे कपड़े उतारकर अपना नाम फिर गौरीशंकर रख लिया और लाजवंती से सिक्ख रीति के अनुसार विवाह कर लिया। यह आनन्द-कारज उसने इसलिए नहीं किया कि उन दोनों में कोई सिक्ख था, बल्कि इसलिए किया कि लाजवंती के सामने विवाह का प्रस्ताव आते ही वह इसे अगले दिन के लिए नहीं टालना चाहती थी। शाम हो जाने कारण उस समय एक ग्रंथी ही मिल सका, जिसने चुटकियों में फेरे डलवा दिए।

सुबह से शाम तक माँगकर अगले दिन मुँह-अँधेरे सारी भीख गुरुद्वारे चढ़ा आने वाली भिखारिन का नाम हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ताओं ने 'सीता देवी' रख दिया था। जब वह पाकिस्तान से आई थी तो बोल नहीं सकती थी और किसी को भी पता नहीं था कि वह कहाँ से आई है, उसके कौनसे सम्बन्धी और वे कहाँ-कहाँ हैं। एक विधवा ने, जो पाँच, तीन और डेढ़ साल की तीन लड़कियों के साथ सियालकोट के एक गाँव से बचकर निकल आई थी, उसे अपने पास रख लिया था। हिन्दू सेवक संघ में काम करने वाली महिलाओं ने उस गूँगी को सलवार-कुरते के स्थान पर बिलकुल सफ़ेद बिना कन्नी की धोती पहना दी। इस उजले लिबास में उसका बिना धुला चेहरा बिखरे बालों के बीच और भी दयनीय लगता था। हाथ में काली झंडी देकर वे उसे शरणार्थी बस्तियों में लिये फिरते। गांधीजी के विरुद्ध प्रदर्शन की तैयारी में वे सारा दिन घूमते रहते। शाम को सीता देवी के हाथ में एक रुपया या सोलह आने या चौंसठ पैसे दे देते जिन्हें वह पल्लू में बाँध लेती और अगले दिन पौ फटने

से पहले गुरुद्वारे चढ़ा आती। गुरुद्वारे से आने के बाद हिन्दू संघ की स्वयं-सेविकाएँ सफ़ेद धोती पहनाकर दिन-भर चक्कर काटने के लिए फिर उसे तैयार कर देतीं।

कोहली ने अपने सम्मान में समारोह करवाने का इरादा ज़ाहिर किया तो मेलाराम मलंग निचला जबड़ा लटकाकर 'हैं-हैं' करता हुआ कुछ मिनट हँसता रहा, जैसे उसको इस फ़ैसले पर असीम खुशी हुई हो। अगले दिन उसके पास डॉक्टर त्रिलोचन आ पहुँचा, जो एक स्थानीय कालेज में पढ़ाने के साथ-साथ इस प्रकार के समारोहों का आयोजन भी किया करता था। डॉक्टर त्रिलोचन ने समारोह का प्रबन्ध करने की फ़ीस पाँच सौ रुपये माँगी। इसके लिए उसे चार-पाँच सप्ताह सुबह-शाम भाग-दौड़ करनी पड़ती और सौ-डेढ़सौ रुपये टैक्सी आदि के किराये पर लग जाते। उसने बताया कि इस बार उसे लाभ बहुत ही कम होगा, क्योंकि मलंगजी ने पूरे सौ रुपये कमीशन लेकर ही कोहली का नाम-पता बताया है।

कोहली को बताया गया कि शहर के लगभग सभी बड़े-बड़े नेताओं, डॉक्टरों, वकीलों, व्यापारियों और सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा राजनीतिक संस्थाओं के प्रधानों से हस्ताक्षर करवाकर समारोह के निमन्त्रण-पत्र भेजे जाएँगे। जिन हज़ार से अधिक शहर के गिने-चुने लोगों के पतों पर निमन्त्रण-पत्र भेजे जाएँगे, उनमें से लगभग सौ के पास उसे खुद जाना पड़ेगा ताकि उनका आना निश्चित हो जाए। अगर ये सौ व्यक्ति न आये तो समारोह टटपूंजियों का मेला बनकर रह जाएगा। जब तक आमन्त्रित करने वालों में कुछ बड़े आदमी न हों और समारोह में कुछ उनसे भी बड़े महानुभाव न आयें तो सम्मान कैसा! अच्छी चाय हो और अच्छी-से-अच्छी जगह उसका आयोजन हो, इसी से सम्मानित होने वाले व्यक्ति का प्रभाव बढ़ता है।

नई दिल्ली के सबसे बड़े होटल इम्पीरियल इण्टरनेशनल में समारोह करने का फ़ैसला हुआ। वहाँ चार रुपये प्रति व्यक्ति चाय का

खर्च आता। लेकिन कुर्सी, मेज़ों, कनातों और शामियानों का खर्च अलग से करने की ज़रूरत नहीं थी। वैसे भी इम्पीरियल इण्टरनेशनल होटल का नाम इतना बड़ा था कि आधा सम्मान तो समारोह वहाँ आयोजित हो जाने से ही हो जाता है।

कोहली को बताया गया कि कम-से-कम हज़ार व्यक्तियों को निमन्त्रण-पत्र भेजना आवश्यक है। विदेशी राजदूतों को निमन्त्रित करना ज़रूरी है। उनके आने से समारोह की शान बढ़ती है। आसपास के राज्यों के मन्त्रियों को भी बुलाना चाहिए। इससे उनको दिल्ली टूर करने का मौक़ा मिल जाता है और वे आने की पूरी कोशिश करते हैं। निमन्त्रण-पत्र के नीचे इसीलिए लिखा जाता है: 'बड़े-बड़े राष्ट्रीय नेताओं और मिनिस्टरों के इस समारोह में सम्मिलित होने की आशा है।' यह पढ़कर वे सब नेता और मिनिस्टर, जो 'बड़े' नहीं हैं, इसलिए आ जाते हैं कि कहीं वे छोटे न समझे जाने लगें। इसके अलावा ऐसे लोग भी हैं जो बिन-बुलाए आते हैं। डॉक्टर त्रिलोचन ने कोहली का छोटा-सा भाषण भी लिखकर रटने के लिए और कदेआदम आईने के सामने खड़े होकर अभ्यास करने के लिए दे दिया। इस भाषण में कोहली की टैगोर, इकबाल आदि से मुलाकात और भारत और विदेश के उन महापुरुषों से बातचीत करने का जिक्र किया गया था, जिनकी उस पार्टी में उपस्थित होने की ज़रा भी सम्भावना नहीं थी। कोहली को यह भाषण बहुत पसन्द आया। भाषण में उसने चार उपयुक्त स्थानों पर अपनी एसोसिएशन के एक लाख सदस्यों का ज़िक्र भी जोड़ दिया।

निमन्त्रण-पत्र इस तरह शुरू होता था: 'श्री-श्रीमती···को सुप्रसिद्ध साहित्यकार, प्रमुख देशभक्त और दानवीर शरणार्थी-सेवी श्री शिवशंकर कोहली के सम्मान में दिल्ली के नागरिकों की ओर से इम्पीरियल इण्टरनेशनल होटल में आयोजित टी-पार्टी में सादर आमन्त्रित किया जाता है।' कार्ड के दूसरी तरफ़ बड़े बारीक टाइप में सौ नाम छपे थे। साठ नाम ऊपर थे और उनके नीचे जो चालीस नाम थे, उनके साथ जिस

सभा के वे प्रधान थे, जुड़ा हुआ था। इनमें से दो-तीन दर्जन नाम तो कोहली ने सुन रखे थे या अखबारों में पढ़ रखे थे। बाद में कुछ लोग आकर कोहली से शिकायत करने लगे कि कार्ड की पीठ पर उनका नाम भी होना चाहिए था। कई बहुत छोटे लोगों के नाम तो छाप दिये गए हैं, लेकिन उन जैसे बड़े आदमी का नाम वहाँ नहीं है। ऐसे लोग भी कोहली के पास आये जिनके पास निमन्त्रण-पत्र नहीं भेजा गया था। किसी ने शिकायत की कि फलाँ नये-नये वकील को कार्ड भेजा गया है, लेकिन उसे नहीं भेजा गया जो तेरह साल पुराना एडवोकेट है। कोहली को पता चला कि कुछ वकील, डॉक्टर और व्यापारी ऐसे हैं जिनके रोज़गार पर ऐसे सामाजिक समारोहों में न बुलाया ज़ाना बुरा असर डाल सकता है। ऐसे भी लोग हैं जो मिनिस्टरों और अफ़सरों से मिलने के ऐसे अवसर ढूँढते रहते हैं। कोहली को इसका पता भी चल गया कि कार्ड के पीछे नाम छपवाने और निमन्त्रण-पत्र प्राप्त करने के लिए कुछ लोगों को डॉक्टर त्रिलोचन की मुट्ठी भी गरम करनी पड़ी है।

नौ

गांधीजी दिल्ली रेलवे स्टेशन पर पधारे तो वहाँ लोगों की भीड़ इस तरह ठाठें मार रही थी और इस तरह धक्कम-धक्का हो रहा था कि उन्हें स्टेशन से बाहर निकलने में दो घण्टे के करीब लग गए। शहर-भर की कांग्रेस कमेटियों ने गांधीजी के स्वागत के लिए हिन्दू सेवक संघ के विरोधी प्रदर्शन से कहीं अधिक तैयारी कर रखी थी। काली झंडियाँ-झंडे जो कुछ हज़ार लोग लेकर आये थे, पुलिस ने छीन लिए थे। गांधी-विरोधी नारे शुरू-शुरू में ज़ोर-शोर से लगे और फिर मन्द पड़ गए। दूर-दूर के कस्बों और ग्रामों से आए शरणार्थियों के लिए गांधीजी और अन्य राष्ट्रीय नेताओं के दर्शन का यह पहला अवसर था। शीघ्र ही वे नारेबाज़ी भुलाकर गांधीजी और अन्य नेताओं के दर्शन के लिए धक्कम-धक्का करने लगे।

दैनिक 'देशभगत' और कांग्रेस-विरोधी अन्य समाचारपत्रों में छपी खबरों के अनुसार ये दो लाख के लगभग नर-नारी गांधीजी के विरोध में प्रदर्शन करने वहाँ पहुँचे थे। 'गांधी वापस जाओ' के नारों से आसमान गूँज उठा था और चारों तरफ़ काले झंडे दिखाई दे रहे थे। हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ताओं के लिए यह सिद्ध करना बहुत मुश्किल था कि गांधी-विरोधी प्रदर्शनकारियों में कितने कोहली द्वारा रेलवे स्टेशन

पर इकट्ठे किये गए थे और कितने आदमी काली झंडियाँ लिये हुए थे।

साढ़े सात हज़ार रुपये देने के पश्चात् हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ताओं के पूछने पर कि वह प्रदर्शन के लिए क्या तैयारी कर रहा है, कोहली उनसे बाकी के रुपए माँगने के अतिरिक्त और कोई बात न करता। उसके सम्मान में आयोजित समारोह आशा से भी अधिक सफल रहा था। बहुत-से ऐसे नेता वहाँ आये थे जिनके नाम उसने केवल सुन रखे थे और सोचा करता था कि उनसे मिलने पर हाथ जोड़कर उनके सामने झुक जाएगा। सुनहरी अक्षरों और चाँदी के फ्रेम में जड़ा अभिनन्दन-पत्र जब उसे समर्पित किया गया तो बड़े-बड़े नेताओं ने उसके गले में फूलों के हार डाले और तालियाँ बजाई थीं। समारोह के बाद तो कोहली बहुत ही रोब-दाब से बात करने लगा था। गांधी-विरोधी प्रदर्शन के लिए आग्रह करने वाले लोगों को डाँटते हुए उसने कह दिया था कि अगर उसे पूरी रकम शीघ्र न दी गई तो पन्द्रह-बीस हज़ार के बजाय वह छः-सात हज़ार प्रदर्शनकारियों का भी प्रबन्ध न कर सकेगा।

उन दिनों एक घटना और घटी थी, जिससे हिन्दू सेवक संघ के प्रदर्शन में शामिल होने का शरणार्थियों का उत्साह बहुत घट गया था। मिशन अस्पताल के कोने पर इमली का एक पेड़ था। झंडे को उलटा पकड़े सीतादेवी को उस इमली के पेड़ से इमली तोड़ते हुए स्त्रियों ने कई बार देखा और कैम्प में कानाफूसी होने लगी। किसी ने कहा कि धोती में से सीतादेवी का पेट कुछ लटकता हुआ नज़र आने लगा है। वह बहुत ही कम खाने लगी थी। जो रोटियाँ उसे दी जातीं वह किसी लड़की या लड़के को दे देती। सियालकोट से आई औरत के झोंपड़े में जाकर कैम्प की कुछ बूढ़ी औरतों ने सीतादेवी का पेट देखा और शक पक्का होने पर सिर पीटकर रह गईं।

कैम्प और उसके आस-पास जब यह खबर फैली तो लोगों में गुस्से की लहर दौड़ गई। इस गूँगी निराश्रय अबला पर यह अत्याचार देखकर सबके दिल रो उठे। वह अत्याचारी का नाम बताने में असमर्थ थी,

इसलिए लोगों का गुस्सा हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ताओं के विरुद्ध प्रकट हुआ, जो उन दिनों उसे अपने साथ लिये फिरते थे। गांधी-विरोधी आन्दोलन के सम्बन्ध में हिन्दू सेवक संघ के स्त्री-पुरुषों का वहाँ आना कुछ समय के लिए बन्द हो गया। उस कैम्प में उनके प्रमुख समर्थक दीवान फ़ीरोज़चन्द थे। सब उस पर गुस्सा निकालने लगे। वैसे भी कैम्प-भर में उसके विरुद्ध बहुत नाराज़गी थी। वकालत चलाने के बाद वह फुरसत के समय झोंपड़ी के बाहर कुर्सी और छोटी-सी मेज़ लगाकर बैठा करता और हर आते-जाते पर व्यंग्य किया करता। मूँछें मुँडवा देने पर भी वह हाथ होंठों के पास ले जाकर इस तरह उँगलियाँ मरोड़ता रहता जैसे मूँछों को ताव दे रहा है। वह क्लेम के सिलसिले में कैम्प के शरणार्थियों की सहायता करने की बजाय उनको ठगने की कोशिश करता। इसलिए सब उससे बहुत चिढ़े हुए थे। इस अवसर से लाभ उठाकर वे फ़ीरोज़चन्द को वहाँ से निकालने पर उतारू हो गए। सियालकोट से आई विधवा स्त्री सीतादेवी को अब अपने पास नहीं रखना चाहती थी। इसलिए भी कैम्प और आसपास के लोग फ़ीरोज़-चन्द की झोंपड़ी सीतादेवी के लिए खाली करवाना चाहते थे। कुछ ने बीच-बचाव करके फ़ीरोज़चन्द के विरुद्ध लोगों को समझाया और बाबा निहालसिंह और सुमित्रा सीतादेवी के पास मामले को ले गए।

दैनिक 'देशभगत' में हिन्दू महासभा या हिन्दू सेवक संघ के विरुद्ध किसी प्रकार के समाचार छपने की मनाही थी। सीतादेवी के सम्बन्ध में दिये गए समाचार को बहुत बुरे ढंग से वर्णित करके स्वयं सेवक संघ की बजाय जनवादी शरणार्थी सभा और कम्यूनिस्टों से जोड़ दिया गया। इसी पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र ने दो सम्पादकीय लेख लिखे, जिनमें भारतीय कम्यूनिस्टों पर रूस के अनुकरण में समस्त धार्मिक और नैतिक संस्कारों को नष्ट करने का आरोप लगाया और उसके साथ किसी विदेशी पादरी की लेखमाला भी प्रकाशित करनी शुरू की, जिसमें परिवार और विवाह आदि परम्पराओं का रूस में बहिष्कार

कर देने का उल्लेख था। आचार्यजी ने अपने सम्पादकीय में जो कुछ लिखा था, उन्हें इतनी समझ नहीं थी। पादरी का लेख भी खास तौर पर प्राप्त किया गया लगता था। बाद में सी० एन० चोपड़ा को पता चला कि विदेशी मामलों पर आचार्यजी जो सम्पादकीय लिखते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर जो कम्यूनिस्ट देशों के विरोध में और पूँजीवादी देशों की प्रशंसा में लेख छपते हैं, अधिकतर एक विदेशी राजदूतावास से सम्बन्धित संस्था से आते हैं और उनके छपने के लिए विज्ञापन की दरों पर धन मिलता है।

चोपड़ा अब एक सफल पत्रकार बन गया था। आचार्यजी खबरों को पेश करने के तरीके और उन पर उसके द्वारा जमाये गए शीर्षकों को बहुत पसन्द करने लगे थे। कश्मीर के सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री नेहरू का मैत्रीपूर्ण भाषण 'पं० नेहरू कश्मीर पाकिस्तान को देने के लिए तैयार' जैसे शीर्षक के नीचे छापा जाता। जब फ्रांस के आम चुनावों में कम्यूनिस्टों द्वारा दो सौ सीटें हासिल करने की खबर आती तो वह तीन सौ से अधिक हारी हुई सीटों का ज़िक्र करता और शीर्षक लगाता: 'फ्रांस में कम्यूनिस्टों की करारी हार'। अमरीका द्वारा थाईलैण्ड में हवाई फ़ौज भेजने की खबर को चोपड़ा बहुत छोटा बनाकर और उसके ऊपर मोटी-सी खबर अपनी तरफ़ से जोड़कर लिखता: 'रूस वियतनाम में हर प्रकार के शस्त्र भेज रहा है।' खबरें गढ़ने में चोपड़ा की कुशलता देख आचार्यजी ने उसे अपने दैनिक का चीफ़ रिपोर्टर बना दिया और उसका वेतन भी सौ रुपये प्रतिमास कर दिया।

चीफ़ रिपोर्टर बनने के कुछ दिन बाद चोपड़ा का सम्पर्क प्रजातन्त्रात्मक संस्कृति-मण्डल से हुआ। उनकी ओर से एक पार्टी के लिए निमन्त्रण-पत्र मिला। इस पार्टी का आयोजन स्प्रिचुअल एण्ड मारल रिआर्मामेंट नामक संस्था के बाहर से आए एक शिष्ट-मण्डल के स्वागत में किया गया था। इस संस्था के महानुभाव दिल्ली में दो नाटक करना चाहते थे और उसके लिए प्रबन्ध करने आए थे। उन्होंने बताया कि नाटकों के पात्र विभिन्न

देशों और जातियों से लिये गए हैं और इनके द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि विश्व-शान्ति की स्थापना के लिए मानव-जाति को केवल नैतिक बल बढ़ाने की आवश्यकता है। उन्होंने दिल्ली के सबसे बड़े होटल में लगभग पचास पात्र ठहराए थे। नाटक स्टेज करने के लिए दिल्ली का सबसे बड़ा सिनेमा हॉल 'ग्लेमर' बुक कर लिया गया था। नाटक के मुफ्त 'पास' बाँटे जाने थे। फिर भी इस संस्था के महानुभाव चिन्तित थे कि उन दो नाटकों के लिए तीन दिन तक दर्शक कैसे एकत्रित किए जाएँ। पिछली बार जब उन्होंने अपने नाटक दिल्ली में स्टेज किए थे तो बहुत पब्लिसिटी करने पर भी हॉल तकरीबन खाली रहा था और बहुत कम दर्शक आये थे। इस टी-पार्टी में दिल्ली के दैनिक समाचारपत्रों के रिपोर्टरों और प्रतिनिधियों के अतिरिक्त सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्रों के कुछ प्रमुख व्यक्ति भी आमन्त्रित थे। उनमें कोहली भी था।

पार्टी समाप्त हुई तो डेढ़-दो दर्जन निमन्त्रित व्यक्ति वहाँ रुके रहे। कोहली ने चोपड़ा को भी रोक लिया। डॉक्टर त्रिलोचन भी वहाँ था। वह उस संस्था के महानुभावों से कुछ बातें कर रहा था।

वहाँ उपस्थित संस्था के आठ व्यक्तियों में से सात विदेशी थे और आठवाँ बिहार के एक प्रसिद्ध नेता का छोटा भाई था। उसकी उम्र इक्कीस वर्ष के लगभग थी। उसने राजस्थानी तरीके से बड़ी-सी पगड़ी बाँध रखी थी। भारत के प्रतिनिधि के तौर पर उसे बाहर ले जाया जा रहा था। इसलिए जैसी भी पगड़ी बाँधना सिखाने वाला उसे दिल्ली में मिला, वैसी ही पगड़ी उसने बाँधनी सीख ली। बाकी के सात में से तीन अमेरिकन थे। एक अमेरिका का सबसे बड़ा पादरी था, दूसरा अमेरिका के तीन बड़े करोड़पतियों में से एक था और तीसरी एक महिला थी जो अब्राहम लिंकन के वंश की थीं। वह बहुत बूढ़ी थी, चेहरा झुर्रियों से भरा हुआ था और सारे शरीर पर मोटी-मोटी नसें उभरी हुई थीं। वह मौन और निश्चल बैठी हुई थी। चाय-पार्टी के शुरू होते ही उसने सुनने का

आला कान में लगा लिया था। वाक़ी चार में एक हब्शी, एक मिस्री, एक वर्मी भिक्षु और एक जर्मन था। वे सव अपने-अपने राष्ट्रीय लिवास पहने हुए थे। जर्मन फ़ौजी था और हब्शी वहुत लम्वा और दुवला-पतला था। वर्मी भिक्षु ने नये पीले वस्त्र पहन रखे थे। मिस्री ने कोट-पतलून के साथ अरवी लोगों की तरह सिर पर वँधे कपड़े के गिर्द डोर वाँध रखी थी। उसे मिस्र के वादशाह का रिश्तेदार वताया गया था। अमरीकी करोड़-पति उस दल का नेता था। वह चमकते हुए कपड़े की नीली पतलून के ऊपर लाल-पीले फूलों और हरे पत्तों की छपाई वाली वुशर्ट पहने हुए था। पुआल से वना वहुत वड़ा हैट उसके हाथ में था।

वातचीत के दौरान कोहली और चोपड़ा को पता चला कि पिछली वार इस संस्था की ओर से दिल्ली में जो नाटक किये गए थे उनके प्रचार और दर्शकों के प्रवन्ध का मामला डॉक्टर त्रिलोचन के हाथ में रहा था। इसके लिए उसे काफ़ी पैसा दिया गया था। डॉक्टर त्रिलोचन समझा रहा था कि पिछली वार समय थोड़ा था और पव्लिसिटी पर उसके कहने के अनुसार रुपया नहीं खर्च किया गया था। लेकिन इस वार यह संस्था उसे किसी तरह भी काम सौंपने को तैयार नहीं हुई। पिछली वार संस्था का दस हज़ार रुपया खर्च हुआ था। इस वार वे अधिक रुपया खर्च करने को तैयार थे।

दिल्ली में स्प्रिचुअल एण्ड मारल रिआर्मामेंट की एक शाखा थी जिसमें वड़े-वड़े कारखानेदार, धनवान, व्यापारी और विश्वविद्यालय के उच्च श्रेणी के प्रोफ़ेसर थे। अव की वार सारे कार्यों का प्रवन्ध वे किसी कुशल व्यक्ति को सौंपना चाहते थे। इस सम्वन्ध में अमरीकी करोड़पति और पादरी प्रजातन्त्रात्मक संस्कृति-मण्डल के कार्यकर्ताओं से परामर्श करने आए थे। वहुत-से नाम सुझाये गए। एक नाम पर आपत्ति की गई कि इस व्यक्ति को एक-दो वार कम्यूनिस्टों से सहानुभूति रखने वाले कुछ लोगों से हाथ मिलाते हुए देखा गया है। एक व्यक्ति का नाम इसलिए रद्द कर दिया कि जो दो अमरीकी वैज्ञानिक रूसी जासूस होने

के सन्देह में पकड़े गए थे उनकी रिहाई की अपील पर इस व्यक्ति ने भी हस्ताक्षर किए थे। चोपड़ा ने कोहली का परिचय प्रजातन्त्रात्मक संस्कृति-मण्डल के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हेरेन सान्याल से कराया। वह पहले से ही कोहली को जानता था। कोहली के अभिनन्दन-समारोह में वह भी आमन्त्रित था। कोहली के कहने पर कि शायद वह इस संस्था की मुश्किल हल कर सके, उसे अमरीकी करोड़पति से परिचित करा दिया गया।

कोहली को उसका नाम मैक्स गोल्डस्टेन बताया गया। कोहली का परिचय संस्कृति-मण्डल के अध्यक्ष ने प्रसिद्ध साहित्यकार कहकर कराया। कोहली स्वयं मिस्टर गोल्डस्टेन को बताने लगा कि वह ऑल इण्डिया रिफ्यूजी वेलफ़ेयर एसोसिएशन का प्रेसीडैंट है और उसकी एसोसिएशन के एक लाख से भी ऊपर सदस्य हैं। गोल्डस्टेन ने अपनी मुश्किल कोहली के सामने रखते हुए कहा कि वह नाटक-प्रदर्शन के छः दिनों के दौरान सिनेमा हॉल की नौ सौ सीटों के लिए आठ-नौ सौ दर्शक चाहता है, ताकि हॉल भरा हुआ लगे। प्रवेश मुफ्त होने पर भी पिछली बार हॉल खाली-खाली-सा रह गया था।

कोहली ने घिसे हुए पायदान जैसे अपने सिर पर तीन-चार बार हाथ फेरा और बड़े विरक्त भाव से कहा, "मुझे आप पर रहम आता है। मैं नौ सौ का तो नहीं, नौ हज़ार आदमियों का इन्तज़ाम रोज़ाना के लिए शायद कर सकूं।" फिर गोल्डस्टेन से हाथ मिलाते हुए उठ खड़ा हुआ और कहने लगा, "मुआफ कीजिए, मैं छोटे पैमाने पर कोई काम नहीं करता।"

गोल्डस्टेन भौंचक्का-सा उसकी तरफ़ देखता रह गया। संस्कृति-मण्डल का अध्यक्ष कोहली को एक तरफ़ ले गया और साथ-साथ गोल्ड-स्टेन को भी। कोने में रखी कुरसियों पर वे बैठ गए। कोहली कहने लगा, "मुआफ कीजिए, मैं छोटे पैमाने पर कोई काम नहीं कर सकता।" कुछ देर के मौन के बाद कोहली ने बात आगे बढ़ाई, "वैसे भी नौ

सौ के स्थान पर नौ हज़ार आदमी रोज़ आने चाहिएँ। नौ सौ दर्शक आएँगे, चुपके-चुपके आकर अपनी जगहों पर वैठ जाएँगे और खेल खतम होने पर उसे पसन्द या नापसन्द कर घरों को चले जाएँगे। नौ हज़ार आदमी आएँगे तो एक-एक सीट के लिए दस-दस दर्शक धक्कम-धक्का करेंगे, धींगामुश्ती होगी। नौ सौ हॉल के अन्दर होंगे तो आठ हज़ार से अधिक वाहर शीशे तोड़ेंगे और होहल्ला मचाएँगे। सड़कों पर ट्रैफ़िक रुक जाएगा, पुलिस आएगी और इस शहर में ही नहीं, सारे देश में चर्चा होगी। आप संवाददाताओं और फोटोग्राफरों का प्रवन्ध कर रखिए। अगले दिन दुनिया-भर के समाचार-पत्रों में दिल्ली के लोगों का आपके नाटकों के लिए अभूतपूर्व उत्साह का ज़िक्र होगा।"

कोहली की वात से गोल्डस्टेन की निस्तेज आँखें चमक उठीं और वह सिर को ऊपर-नीचे हिलाने लगा। अचानक गोल्डस्टेन बीच में ही बोल उठा, "लेकिन यह होगा कैसे? पिछली वार तो किसी दिन सौ से अधिक दर्शक नहीं आए थे।"

इस वार नौ सौ के स्थान पर नौ हज़ार दर्शकों का जमघट कैसे एकत्रित होगा, यह वात कोहली ने वताने से साफ़ इन्कार कर दिया और नाटकीय अन्दाज़ में कहने लगा कि अगर वह चाहे तो नौ सौ सीटों के लिए नौ हज़ार दर्शक आकर धक्कमधक्का कर सकते हैं, एक-दूसरे से गुत्थमगुत्था हो सकते हैं, एक-दूसरे के कपड़े फाड़ और सिनेमा हॉल में कुरसियाँ तोड़कर संस्था और उसके नाटकों के लिए हिन्दुस्तानी लोगों के उत्साह का इतना ज़ोरदार सवूत दे सकते हैं कि दुनिया-भर में इसकी चर्चा हो।

गोल्डस्टेन ने अपने पादरी साथी और फिर अन्य साथियों को वुला लिया और वातें होने लगीं। उनके आग्रह करने पर भी कोहली ने यह वताने से इन्कार कर दिया कि छः दिन तक नौ हज़ार दर्शक किस प्रकार जुटाए जाएँगे। वह दोहराता रहा कि नौ हज़ार से अधिक दर्शक प्रति-दिन हॉल में मौजूद होंगे। उसकी ऑल इण्डिया रिफ्यूजी वेलफ़ेयर

एसोसिएशन के या उसी तरह के अनपढ़ लोग नहीं, बल्कि पढ़े-लिखे शहरी, जैसे आमतौर पर सिनेमा-थियेटरों में होते हैं।

एकाएक अमरीकी करोड़पति ने बहुत गम्भीर होकर कोहली से प्रश्न किया, "चीन के बारे में तुम्हारी क्या राय है?" उन दिनों समाचार-पत्रों में हर रोज़ चीनी कम्यूनिस्ट सेनाओं के पीकिंग की तरफ़ बढ़ने की खबरें आ रही थीं। कोहली अखबार में 'शरणार्थियों में आज कम्बल बाँटे जाएँगे,' या 'नेहरू की मुस्लिम-परस्ती का एक और सबूत' जैसी खबरें और शीर्षक ही देखता था। चीन के बारे में प्रकाशित खबरें उसकी नज़र से कम गुज़री थीं। चायना शब्द सुनते ही उसे चीनी के बर्तनों का खयाल आया। उसने झट से जवाब दिया, "चायना बढ़िया होना चाहिए। लेकिन अंग्रेज़ों के साथ बढ़िया चायना भी हिन्दुस्तान से चला गया, अब यहाँ नहीं मिलता।" गोल्डस्टेन ने चकराकर कोहली और आसपास के लोगों की तरफ़ देखा। अपनी बात समझाते हुए उसने फिर कहा, "टी सेट और डिनर सेट अच्छे चायना का होना चाहिए और कटलरी भी उम्दा होनी चाहिए, लेकिन हिन्दुस्तान में बढ़िया क्वालिटी की इस किस्म की चीज़ें अब नहीं मिलतीं।"

चायना से कोहली ने जो मतलब निकाला था गोल्डस्टेन को जब यह समझ आया तो वह हँसी से लोटपोट हो गया। अमरीकन बुढ़िया कानों में सुनने का आला लगाकर गोल्डस्टेन से बात पूछने लगी। गोल्डस्टेन के बताने पर वह भी कहकहे लगाने लगी। एक व्यक्ति ने कोहली से पूछा, "सुना है गांधी या नेहरू का कत्ल होने वाला है, तुम्हारा क्या खयाल है?" शरणार्थियों में गांधीजी और प्रधान मंत्री नेहरू के विरुद्ध बहुत उत्तेजना थी और कुछ कट्टर हिन्दुओं से यह बात सुनी थी कि यदि गांधी और नेहरू को मार दिया जाए तो देश का बहुत भला होगा। लेकिन इन विदेशियों को इस बात का पता कैसे चला! उसने जवाब दिया, "यह तो ज्योतिषी उनकी जन्मपत्री देखकर बता सकते हैं। हिन्दुस्तान में बड़े-बड़े अच्छे ज्योतिषी हैं, जिनकी बात कभी झूठी नहीं

होती ।"

इसी प्रकार के एक-दो और प्रश्न कोहली से पूछे गए और उसने अपने ही ढंग से उनके उत्तर दिए । बाहर अँधेरा हो गया था । संस्कृति-मण्डल का अध्यक्ष प्रोफ़ेसर सान्याल उठकर अन्दर के कमरों की तरफ़ गया और जब वह लौटा तो उसके पीछे-पीछे चपरासी था, जिसके हाथ की ट्रे में ह्विस्की की दो बोतलें और दर्जन के करीब जाम थे । शराब डाल दी गई और दो-तीन व्यक्तियों को छोड़कर बाकी पैग उठाकर पीने लगे । उस छोटे-से पैग से कोहली के होंठ मुश्किल से तर हुए । कोहली ने ह्विस्की की दूसरी भरी बोतल खोली और उसे मुंह से लगाकर गटागट पीने लगा । प्रोफ़ेसर सान्याल के हाथ उठे-के-उठे रह गए । कोहली के बोतल खाली करके मेज़ पर रखते ही गोल्डस्टेन खड़ा होकर तालियाँ बजाने लगा जैसे बहुत बड़ा कारनामा देख रहा हो । लुढ़ककर कुर्सी से नीचे गिरने की बजाय जब गोल्डस्टेन ने कोहली को इतनी शराब पीने के बाद भी पहले की भाँति आराम से बातें करते देखा, तो वह प्रभावित हुए बिना न रह सका । स्कीम जानने के लिए उन्हें उतावला देखकर कोहली ने गोल्डस्टेन को सुझाया कि वे एक दिन और दिल्ली में रहें और यदि उसकी सहायता की सचमुच ज़रूरत है, तो वे उसके घर आकर बात कर सकते हैं । यह कहते हुए अपना कार्ड गोल्डस्टेन के हाथ में देकर हाथ मिलाया और बड़े मैत्रीपूर्ण ढंग से कहा, "कल चाय मेरे साथ पीजिएगा, मेरे पास बहुत बढ़िया चायना है ।"

दस

चाननमल चोपड़ा को चीफ़ रिपोर्टर का काम वहुत पसन्द था और पैसा कमाने के कुछ और तरीके भी वह सीख गया था। जलसों, सभाओं, मीटिंगों, सम्मेलनों, गोष्ठियों आदि के समाचारों में कुछ लोगों का नाम दे देने और दूसरे कुछ का न देने से कितना अन्तर पड़ता है, चोपड़ा को रिपोर्टर होने के वाद ही इस वात का अन्दाज़ा हुआ। अखवार में अपना नाम छपा देखने की कुछ लोगों में इतनी सनक देखकर चोपड़ा को वहुत अचरज हुआ। कोई व्यक्ति उसकी खातिरदारी इसलिए करता कि उसका नाम किसी समाचार में दे दिया गया है और कोई इसलिए उसे चाय पीने पर मजवूर करता कि अगली वार समाचार देते हुए वह उसका नाम पिछली वार की तरह नहीं भूलेगा। लेकिन सिर्फ़ खातिरदारी से ही चोपड़ा सन्तुष्ट न होता। धीरे-धीरे जितना उसको वेतन मिलता था, ऊपर की आमदनी उससे दुगुनी होने लगी थी।

प्रजातंत्रात्मक संस्कृति-मण्डल द्वारा आयोजित पार्टी के अवसर पर चोपड़ा की भेंट मिस्र के राजदूत से हुई। राजदूत के एक लेख को, जिसमें मिस्र के शाह फारूक की वहुत प्रशंसा की गई थी, चोपड़ा ने दैनिक 'देश भगत' में छपवा दिया। इस विचार से कि 'देशभगत' का मालिक आचार्य रामचन्द्र इस पर आपत्ति न करे, चोपड़ा ने उस लेख के शुरू में पाकिस्तान

के विरुद्ध और अन्त में अमेरिका की प्रशंसा में एक-एक पैरा जोड़ दिया था। उस लेख के प्रकाशन के पश्चात् मिस्र के राजदूत ने चोपड़ा को शाहंशाह मिस्र की ओर से पार्कर का सोने की क्लिपवाला फ़ाउण्टेन पैन और ह्विस्की की बोतलों की एक पेटी दी। पैन को चोपड़ा ने कोट की अन्दरूनी जेब में सँभालकर रख लिया। शराब की बोतलें वह बहन के पास तीसहज़ारी कैम्प में नहीं ले जाना चाहता था, उन्हें वह कोहली के पास मोरीगेट छोड़ आया। एक और मुश्किल उसके लिए यह थी कि वह शराब शाम को नहीं पी सकता था और रात को नशे की हालत में घर नहीं पहुँचना चाहता था। इसलिए वह कोहली के घर जाकर दिन के दस-ग्यारह बजे शराब पीता। अधिक न पीने पर भी वह नशे में इतना धुत्त हो जाता कि खबरों की खोज में शहर का चक्कर लगाना उसके लिए बहुत मुश्किल हो जाता। जब छः-सात दिन कोहली 'देश-भगत' के कार्यालय में न गया और न ही कोई खबर भेजी तो आचार्यजी और मलंगजी को बहुत चिन्ता हुई। उसे ढूँढ़ने दफ्तर का एक आदमी तीसहज़ारी कैम्प होता हुआ कोहली के घर पहुँचा। तीसरा पहर हो चुका था, लेकिन चोपड़ा का नशा अभी अच्छी तरह नहीं उतरा था। मलंगजी का रुक्का पढ़ते हुए चोपड़ा की नज़र खान अब्दुल गफ्फ़ार ख़ाँ की तस्वीर पर पड़ी, जो उस कमरे की एक दीवार पर बशीर अहमद के ज़माने से लटक रही थी। सीमाप्रान्त के प्रसिद्ध नेता खान अब्दुल-गफ्फ़ार ख़ाँ फ्रन्टियर गांधी के नाम से मशहूर थे और उनको पख़्तू-निस्तान के सिलसिले में पाकिस्तान सरकार ने कैद कर रखा था। इस सिलसिले में एक वक्तव्य चोपड़ा ने एक-दो दिन हुए कहीं पढ़ा था। उसने कोट की भीतरी जेब से सोने की क्लिपवाला पैन निकाला और मलंगजी को उत्तर दिया कि वह एक बड़े महत्त्वपूर्ण समाचार के लिए इतने दिनों से टक्करें मार रहा है। आज ही उस समाचार की पुष्टि हुई है और समाचार साथ भेजा जा रहा है।

कागज़ के एक टुकड़े पर चोपड़ा ने समाचार इस तरह लिखा—"जेल

में सरहदी गांधी अन्धे हो गए—पाकिस्तान सरकार का उन्हें अस्पताल भेजने से इन्कार। हमारे विशेष संवाददाता को लाहौर से अत्यन्त विश्वसनीय सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि जेल में पाकिस्तान सरकार के अत्याचारों के कारण सरहदी गांधी, ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ाँ की नज़र जाती रही है। विस्तार से खबर लिखकर आगे यह बताया गया था कि इस खबर का पाकिस्तान के अखवारों में प्रकाशन रोक दिया गया है।"

यह समाचार अगले दिन 'देशभगत' में छपा। बम्बई के एक अंग्रेज़ी दैनिक के दिल्ली संवाददाता ने यह समाचार अपने पत्र में भेजा। वहाँ से बी० बी० सी० के संवाददाता ने लन्दन भेज दिया। वहाँ से प्रसारित होने के वाद रायटर न्यूज़ एजेन्सी ने यह समाचार वहुत-से देशों के समाचार-पत्रों को भेज दिया। 'देशभगत' में छपने के दो दिन वाद यह खबर हिन्दुस्तान के सब अखवारों में पहले पृष्ठ पर वड़े-वड़े शीर्षकों के साथ प्रकाशित हुई।

इस खबर के प्रकाशन के वाद भारत और पाकिस्तान के समाचार-पत्रों में जो वाद-विवाद छिड़ा, जो तू-तू मैं-मैं और गाली-गलौज हुई और 'देशभगत' को इससे दुनिया-भर में जो ख्याति प्राप्त हुई उससे आचार्यजी फूले न समाते थे। वैसे भी 'देशभगत' ने दिल्ली आकर वहुत सफलता प्राप्त की थी। लाहौर में इसकी बिक्री कभी चार-पाँच हज़ार से आगे नहीं वढ़ी थी। दिल्ली में उन्होंने लाहौर से आये अन्य उर्दू दैनिकों से पहले अपना समाचारपत्र प्रकाशित करना शुरू कर दिया था। लाहौर से आए वहुत-से उर्दू दैनिक अमृतसर, जालन्धर या अम्वाला से निकलने लगे थे, जहाँ से समाचारपत्रों का अन्य शहरों में वितरण का प्रवन्ध उतना अच्छा नहीं था। इसलिए अन्य उर्दू दैनिक 'देशभगत' से वहुत पीछे रह गए थे।

'देशभगत' की नीति की आधारशिला सदा ही से प्रत्येक का विरोध करने की रही थी। सरकार के समर्थकों का विरोध करना ही इस अखवार का लक्ष्य रहा। अखवार की नीति सदा यही रही कि उत्तेजना

फैलाई जाए और साम्प्रदायिक विद्वेष को भड़काया जाए। प्रेम से भिन्नता उत्पन्न होती है। विभिन्न विचारों और धारणाओं के लोग अपने-अपने तरीके से प्रेम या प्रशंसा करते हैं, लेकिन घृणा या विरोध ऐसी शक्ति है जो विभिन्न भावनाओं और सिद्धान्तों के लोगों में एक-सा ज़हर भर देती है और उन सबको एक ही पंक्ति में ला खड़ा करती है। आचार्यजी सदा यही कहा करते कि जो धर्म केवल प्रेम लेकर चले, वे असफल रहे और जिस धर्म ने घृणा उत्पन्न की, वह विजयी हुआ। जब तक ईसाई प्रेम की बातें करते रहे, मार खाते रहे। घृणा और विरोध का हथियार हाथ में लेते ही वे शक्तिशाली और अजेय बन गए। उन्होंने स्पेन से मुसलमानों को मार भगाया और एशिया तक आ पहुँचे और ख़लीफ़ाओं तथा सुल्तानों के दाँत खट्टे किए। आचार्यजी के अनुसार हिन्दू धर्म के पतन का कारण हिन्दुओं की घृणा करने में अक्षमता थी और अगर हिन्दुओं ने घृणा करना न सीखा और अपने अन्दर घृणा न जगाई तो उनके साथ जो विगत डेढ़ हज़ार साल से होता आया है, वही फिर होगा और यह स्वतन्त्रता भी चार दिन की चाँदनी बनकर रह जाएगी।

पाकिस्तान बनने के साथ-साथ जो घटनाएँ घटीं और जिस तरह लोग तबाह और बरबाद होकर आए, इससे समस्त वातावरण विषाक्त हो रहा था। 'देशभगत' के लिए यही उपयुक्त समय था। 'देशभगत' की दैनिक बिक्री दो-तीन महीनों में ही पाँच हज़ार से बढ़कर तीस हज़ार तक जा पहुँची थी।

लाहौर से आए एक और पत्रकार ने वैसे ही आग उगलने वाले दो दैनिक दिल्ली से निकालने शुरू किए। एक 'शेर खालसा', जो अपने-आपको सिक्खों का प्रतिनिधि कहता था और सिक्खों में हिन्दुओं के खिलाफ़ नफ़रत पैदा करता था। और दूसरा 'बजरंगबली', जो हिन्दुओं को सिक्खों के विरुद्ध उत्तेजित करता था। दोनों अखबारों में वह सम्पादकीय लेख भी दो नामों से लिखता था। सिक्खों के अखबार में

'ववर अकाली' के नाम से और हिन्दुओं के समाचारपत्र में 'वीर वैरागी' के नाम से। पंजाब की भाषा पंजावी होनी चाहिए या हिन्दी, हिन्दू अफ़सर सिक्खों को वसाने में अड़चन डाल रहे हैं या सिक्ख अधिकारी हिन्दू शरणार्थियों से अन्याय कर रहे हैं—इस तरह की वातें उठाकर उस पत्रकार ने अपने दोनों दैनिक अखवारों की विक्री वढ़ा ली थी। इससे आचार्यजी को कुछ चिन्ता हुई। लेकिन शीघ्र ही उन्होंने इसका उपाय सोच लिया।

'देशभगत' की वढ़ती हुई विक्री को वनाये रखने के लिए आचार्यजी ने घृणा-प्रचार को ही तेज़ नहीं किया, वरन् उसका उद्देश्य और पात्र भी ढूंढ़ लिया। उस घृणा का उद्देश्य हिन्दू धर्म का पुनर्जागरण और पात्र गांधीजी और नेहरू सरकार थे। हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण के लिए धर्म-निरपेक्ष राज्य के स्थान पर हिन्दू-राज्य होना चाहिए और इस रास्ते के सव रोड़े हटा दिये जाने चाहिएँ—इस प्रकार की वातें लिखकर 'देश-भगत' गांधीजी और नेहरू सरकार पर चाँदमारी करने लगा।

भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उत्साह में पाकिस्तान से आए शरणार्थी अपनी मुसीबतों को कुछ समय के लिए भूल-से गए थे। लेकिन अपने नये जीवन के कठोर यथार्थ से उन्हें शीघ्र ही जूझना पड़ा। वे कितने निराश्रय और निस्सहाय थे, जीवन-संघर्ष कितना तीव्र और दुरूह था और इसके लिए उनके पास कितने अल्प सावन थे। हरएक के सीने पर कोई-न-कोई घाव था, जो हरदम रिसता रहता था। किसी के माता-पिता खो गए थे तो कोई अपने भाई या वहन को ढूंढ़ रहा था। किसी को सिर छिपाने के लिए आश्रय की तलाश थी, तो किसी को रोजगार की। ये सव कठिनाइयाँ और यातनाएँ शरणार्थियों के क्रोध को मन्द न होने दे रही थीं और यह क्रोव तव और भी उवल पड़ता था जव शरणार्थियों को सरकार द्वारा दी जा रही छोटी-छोटी सुविधाओं के लिए वहुत कष्ट उठाना पड़ता या अपमानित होना पड़ता।

लोगों में असन्तोष उस समय प्रकट नहीं होता है जव वे नितान्त

दरिद्र और निस्सहाय होते हैं, लेकिन जब उनकी दशा कुछ सुधरने लगती है तो असन्तोष के अंकुर भी फूटने लगते हैं। जैसे-जैसे शरणार्थी बसते गए उनमें असन्तोष तीव्रतर होता गया। उन्हें आर्थिक और मानसिक क्षति बहुत पहुँची थी। अब तनिक-से अभाव और छोटे-से कष्ट पर उनके ज़ख्म ताज़ा हो जाते। इस क्रोध और घृणा को भारत सरकार की धर्म-निरपेक्षता और गांधीजी के विरुद्ध इस्तेमाल करके बहुत-से लोग और दल लाभ उठाने की कोशिश कर रहे थे और आचार्यजी भी उस समय 'देशभगत' की बिक्री बढ़ाने के लिए इसे अच्छा गुर समझ रहे थे।

इसके अतिरिक्त 'देशभगत' के दो नये विशेष संस्करण प्रति सप्ताह निकलने लगे, जिससे उसकी बिक्री बनाये रखने में मदद मिली। 'धर्म और संस्कृति संस्करण' मंगल को छपता, जिसमें पहले पृष्ठ पर समाचारों के स्थान पर धार्मिक चित्र और अन्दर धार्मिक विषयों पर कुछ लेख होते थे। दूसरा फ़िल्मी संस्करण बृहस्पतिवार को छपता था जिसमें पहले पृष्ठ पर फ़िल्म एक्टरों की तस्वीरें और अन्दर फ़िल्मों के बारे में चटपटी जानकारी के दो पृष्ठ होते थे। रविवार संस्करण पहले से ही प्रकाशित हो रहा था। इस संस्करण में अश्लील कहानियाँ प्रकाशित की जाती थीं।

अंग्रेज़ी और हिन्दी के दैनिकों की भाँति उर्दू के दैनिकों में अधिक प्रतियोगिता नहीं थी। अंग्रेज़ी के दैनिकों से आधे पृष्ठ 'देशभगत' के थे। दोनों की कीमत एक-सी थी, विज्ञापन-दरें एक-सी, लेकिन उर्दू की छपाई अंग्रेजी से बहुत सस्ती पड़ती थी। इसलिए तीस हज़ार की दैनिक बिक्री पर, विज्ञापनों की आमदनी-सहित एक हज़ार रुपया प्रतिदिन आचार्यजी की वास्तविक आय थी। यह साढ़े तीन लाख रुपये से अधिक की वार्षिक आय अधिकतर आय-कर से मुक्त थी, क्योंकि हिसाब-किताब का लेखा इस तरह तैयार किया जाता था कि आय-कर अधिक न देना पड़े। 'देशभगत' का दफ्तर अब कनॉट प्लेस में उस फ्लैट में खुल गया था जो आचार्यजी ने वक़ार रिज़वी से अपनी लाहौर की जायदाद की

अदला-बदली में लिया था। दिल्ली में दंगे शुरू होते ही उन्होंने पृथ्वीराज रोड पर एक मुसलमान की वहुत बड़ी कोठी पर कब्ज़ा कर लिया था। कोठी कीमती सामान से सजी हुई थी। रिज़वी के कनॉट प्लेस वाले फ्लैट से उस कोठी में सामान लाया गया। आचार्यजी की उस शानदार कोठी के मुकावले दिल्ली-भर में दूसरी कोठी नज़र न आती थी। तीस हज़ार प्रति मास की कर-मुक्त आमदनी और इस तरह के शाही रहन-सहन के कारण आचार्यजी और उनके परिवार के अन्य सदस्यों के पाँव ज़मीन पर नहीं टिकते थे। आचार्यजी अपने सम्पादकीय में लगातार ज़हर उगलते। आय बढ़ जाने पर वह अपने-आपको पहले से भी अधिक बुद्धिमान और ब्रह्मज्ञानी मानने लगे थे। उनकी वातचीत करने के अन्दाज़ और लिखने के ढंग से यह लगता था कि वह अपने को प्रधान मन्त्री नेहरू से भी दस गुना अधिक अक्लमन्द समझते हैं, क्योंकि पं० नेहरू की तीन हज़ार रुपये प्रतिमास आय के मुकावले आचार्यजी की आमदनी तीस हज़ार प्रतिमास थी।

इतनी आय और इतनी सम्पन्नता का मतलव यह नहीं था कि आचार्यजी शौकीन तवीयत के आदमी थे। दरअसल वह वहुत सादा आदमी थे, सचमुच उनको ईश्वर और हिन्दू धर्म पर अपार श्रद्धा थी। वह वहुत संयमी थे और यह संयम गत चालीस वर्षों में एक दिन भी नहीं टूटा था। प्रातःकाल पाँच वजे उठकर, नहा-धोकर वह आधा घण्टे सन्ध्या, फिर एक घण्टा हवन और पूजा करते थे। उससे पहले पानी तक मुँह नहीं लगाते थे। सात वजे वह मौसम के अनुसार दूध या लस्सी पीते। दस-ग्यारह इंच ऊँचे उस पीतल के गिलास में तीन पाव दूध या लस्सी आती थी। नाश्ते के साथ कुछ और खाना उन्हें पसन्द न था। उसके वाद वह पन्द्रह मिनट के लिए अखवार पर नज़र डालते और फिर साढ़े सात वजे मुहम्मदअली आचार्यजी से डिक्टेशन लेने आ जाता। आचार्यजी कमरे में चक्कर काटते हुए वोलते जाते और मुहम्मदअली उनके पीछे-पीछे चलता हुआ लिखता जाता। यह क्रम साढ़े नौ तक

चलता रहता। आचार्यजी अपने सम्पादकीय जिस भाषा में डिक्टेट करवाया करते थे वह प्रकाशन-योग्य नहीं होती थी। हिन्दी, उर्दू, पंजावी, अंग्रेज़ी—जिस भाषा का शब्द या वाक्य उन्हें सूझता वह वही बोल देते और मुहम्मदअली नकल करते समय सब शब्दों को उर्दू में बदल देता, जो वहुत भद्दे लगते या विलकुल अग्राह्य होते।

साढ़े नौ वजे तक आचार्यजी सम्पादकीय लिखवा चुकते। उनके घर के सब लोग तव तक सोए रहते थे। उनके दुख का मुख्य कारण यही था। उनकी पत्नी, जो पहले आठ-नौ तक नहा-धो लेती थी, अब एकदम बदल गई थी। लाहौर में 'देशभगत' में फ़िल्मों के विज्ञापन छापने के एवज़ में सिनेमा के 'पास' भी आया करते थे। आचार्यजी तो कभी भी सिनेमा आदि नहीं देखते थे, लेकिन मुफ्त पास मिलने के कारण वाकी सब परिवार—पत्नी, पुत्रवधू, लड़कियाँ और दूसरे लोग—सिनेमा देखने रोज़ जाया करते थे। दो-दो, तीन-तीन वार पिक्चर देखने के वाद थकने पर ही ना करते थे। एक रात जव वे सिनेमा से लौटे और डिनर खाकर ऊपर गये तो आचार्यजी का चार महीने का पोता खटोले में मरा पड़ा था। आचार्यजी वहुत चिन्तित हुए। पहले उन्होंने सोचा कि मुआमल की तफ़तीश करवाएँ, लेकिन वहुत-से रिश्तेदार आये हुए थे। इस ख़याल से कि पुलिस सबसे पूछ-ताछ करेगी और सारी विरादरी और विरोधी अखवारों में इसकी चर्चा होगी, उन्होंने खामोश रहना वेहतर समझा।

पोते की मौत के बाद आचार्यजी की पत्नी ने सिनेमा देखना तो विलकुल वन्द कर दिया, लेकिन उसे रात-भर नींद नहीं आती थी। पौ फटने के समय आँख लगती तो नौ-दस बजे से पहले विस्तर न छोड़ती। आचार्यजी पत्नी को समझाते कि नरेश अभी पच्चीस साल का ही तो है और अभी तो तुम्हारे और भी पोते-पोतियाँ आएँगे। लेकिन पत्नी का दिल न मानता। वह यही कहती कि बेटे की शादी के पाँच साल बाद पोते का मुँह देखना नसीब हुआ था, आँखें तरस गई थीं और अब परमात्मा ने यह अनर्थ कर दिया है।

आचार्यजी के इकलौते लड़के नरेश और बहू सुशीला पर बच्चे की मौत का कुछ भिन्न प्रभाव पड़ा था। पाँच साल पहले बाँझ होने के ताने सुन-सुनकर इक्कीस-बाईस वर्ष की आयु में ही सुशीला बुझ-सी गई थी। लेकिन फिर बेटा हुआ था पाँच साल बाद। बेटे की मौत के कुछ महीने बाद सुशीला का चेहरा भर आया था, जवानी निखर उठी थी और वह फिर से सत्रह-अठारह वर्ष की नववधू लगने लगी थी। नरेश में परिवर्तन कुछ और ही प्रकार का हुआ था। आचार्यजी को उसके बारे में चोरी-छिपे सिगरेट-शराब पीने और गोश्त खाने की खबरें मिलती रहती थीं। घर में शाकाहारी थे और मांस-अण्डे को छूने तक की मनाही थी। कट्टर सनातनी होने के नाते उनके घर और दफ्तर में कोई सिगरेट नहीं पी सकता था। हिन्दुओं के प्रसिद्ध नेता होने के कारण किसी ने कभी उनके सामने सिगरेट पीने की जुर्रत नहीं की थी। उनके सामने किसी का शराब पीकर आना तो दूर रहा, कोई इसका ज़िक्र तक नहीं कर सकता था। लेकिन अब नरेश ने खुल्लमखुल्ला घर में सिगरेट पीनी शुरू कर दी थी और वह रोज़ रात को मुँह में शराब की बू लिये हुए आता। सिगरेट वह अपने कमरे में ही पीता था, लेकिन इतनी पीता था कि सारा घर बू से हर समय भरा रहता। आचार्यजी को यह सोचकर और भी चिढ़ होती कि वह अब किस मुँह से अपने इन सिद्धान्तों को लोगों से कठोरता से पालन करने के लिए कहें और कैसे अपने भाषणों में इन बातों की निन्दा करें।

चार-पाँच महीनों के बाद एक दुर्घटना और घटी—सुशीला को ममेरी बहन की शादी पर मायके जाना था। साथ ले जाने के लिए डेढ़ दर्जन बढ़िया साड़ियाँ उसने ड्राईक्लीनिंग के लिए भेजीं। पाकिस्तान बनने से पहले हिन्दू-मुस्लिम दंगों के सिलसिले में उन दिनों लाहौर में आग लगाए जाने की पहली वारदात हुई थी, जिसमें उस ड्राईक्लीनर की दुकान भी जल गई थी। इतनी बढ़िया साड़ियों के जल जाने से सुशीला को बहुत सदमा पहुँचा। साड़ियों के जलकर राख होने की खबर मिलते ही

वह इस तरह हक्की-वक्की रह गई जैसे उस पर विजली गिर पड़ी हो। अगली सुवह जव वह उठी थी तो उसके वालों की कुछ लटें सफ़ेद नज़र आईं। अगले छः दिनों में उसके सिर के सारे वाल वरफ़-से सफ़ेद हो गए।

इसके वाद नरेश और भी आवारा हो गया। वह और भी धुआँधार सिगरेट और शराव पीने लगा। वहुत रात गए और कभी तो सुवह ही वह घर लौटता। थर्ड डिवीज़न में मैट्रिक पास करते ही आचार्यजी ने उसे 'देशभगत' के स्टाफ़ में रख लिया था। उसका वेतन तीन सौ नियत किया गया था, जवकि किसी और आदमी की उससे आधी भी तनखाह नहीं थी। आचार्यजी ने वहुत कोशिश की कि वह किसी तरह दफ्तर आने लगे, ताकि कुछ वर्षों में थोड़ा-वहुत काम सीखकर उनका भार हल्का करने के योग्य हो जाए। लेकिन वेतन के कागज़ भी हस्ताक्षर के लिए उसको घर ही भेजे जाते थे। विवाह के वाद सुशीला का नाम भी 'देश-भगत' के स्टाफ़ में लिख लिया गया था और महीना पूरा होने पर वेतन के कागज़ उसको भी घर पर ही हस्ताक्षर के लिए भेज दिए जाते थे। दोनों का वेतन आचार्यजी अपने पास रख लिया करते थे और उन्हें खाने-कपड़े के अतिरिक्त जेव-खर्च के लिए अच्छी रकम दे देते थे। इस तरह समाचारपत्र का खर्च वढ़ जाने से इनकम-टैक्स कम देना पड़ता था।

'देशभगत' के दफ्तर में तनखाह सात तारीख को वाँटी जाती थी। अव नरेश सात तारीख को दफ्तर खुलते ही आ पहुँचता और अपना और सुशीला का मासिक वेतन खुद ले जाता। यह सव उस खर्च के अतिरिक्त था जो आचार्यजी उस पर करते थे। इस रकम में से भी महीना खतम होने तक कौड़ी भी न वचती।

धार्मिक अवसरों पर आचार्यजी के भाषणों में अव राजनीतिक रंग आने लगा। आचार्यजी के वस्त्र पहले से भी अधिक सफ़ेद होते, लकिन उनके चेहरे पर अव मलिनता की छाया आ गई थी। यह वहुत छिपाने

पर भी न छिपती और उनकी स्वच्छ और सद्भावना से भरी मुस्कराहट को अव हल्का-सा ग्रहण लगा रहता।

दिल्ली आने के बाद आमदनी बढ़ जाने और रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो जाने पर भी आचार्यजी के दुःख कम नहीं हुए थे। नये वातावरण में नरेश और भी बन्धनमुक्त हो गया था और छः सौ की बजाय हज़ार रुपये प्रतिमास खर्च करने लगा था। सुशीला अपना वेतन स्वयं ही लेने लगी थी। उसने अंग्रेज़ी तरीके से बाल कटवा लिए थे। एक ब्यूटी एक्सपर्ट से उसने बालों को हल्का सुनहरी रँगवा लिया था। शाम रेस्तराँ और क्लबों में गुज़ारती, रात को नॉविल पढ़ती रहती और अगले दिन सुबह सबसे देर में उठती।

सम्पादकीय लेख लिखवा देने के बाद आचार्यजी सबको जगाने के लिए आवाज़ें देते। कभी नौकर से पूछते कि नरेश जागा है या नहीं। कभी कहते, नरेश की माँ को जगा आओ। साथ-साथ वह अन्य उर्दू और अंग्रेज़ी के दैनिक और साप्ताहिक समाचारपत्र पढ़ते जाते। दिल्ली आकर उन्हें पढ़ने की बहुत-सी सामग्री अमेरिकन दूतावास से मिलने लगी थी। न्यूयार्क के सभी महत्त्वपूर्ण दैनिक समाचारपत्र दो दिन के भीतर-भीतर भारतीय समाचारपत्रों के सम्पादकों तक पहुँचा दिए जाते, ताकि विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर उनको अपनी राय बनाने में सहायता मिले। दिल्ली में विदेशी आर्थिक सहायता से कम्यूनिस्ट और नेहरू सरकार विरोधी अनेक संस्थाएँ स्थापित हुई थीं। उनसे भी बहुत-सी पाठ्य-सामग्री मुफ्त प्राप्त होती थी। इस सब पर विहंगम दृष्टि डालकर जिस सूचना का इस्तेमाल आचार्यजी अगले दिन अपने सम्पादकीय में करना चाहते उस पर निशान लगा देते। यह काम एक-डेढ़ बजे तक खत्म हो जाता।

डेढ़ बजे के लगभग आचार्यजी खाने के कमरे में आते। परिवार का जो भी सदस्य वहाँ मौजूद न होता उसे आवाज़ें देकर बुलाते, क्योंकि इसी समय सारा परिवार एक जगह बैठ पाता था। शाम को नरेश

बाहर होटलों में खाना खाता था, सुशीला भी प्रायः आठ बजे के बाद घर लौटती थी। आचार्यजी ठीक आठ बजे रात को भोजन कर लेते थे। बाद में लॉन पर आध-पौन घण्टा टहलकर नौ बजे के लगभग सोने के कमरे में चले जाते। दोपहर के भोजन के बाद आचार्यजी घण्टा-भर आराम करके कार में बैठ तीन बजे दफ्तर जा पहुँचते थे।

बहुत ज़िद करने पर नरेश की तनखाह एक हज़ार रुपये प्रतिमास हो गई थी। आचार्यजी इस शर्त पर माने थे कि नरेश रोज़ नहीं तो हफ्ते में तीन-चार बार दफ्तर ज़रूर आए, चाहे थोड़ी देर के लिए ही आए। घर कनॉट प्लेस से काफ़ी दूर था और यह सोचकर कि यार-दोस्तों से गप-शप के लिए एक अड्डा वहाँ अच्छा रहेगा, नरेश आचार्यजी की बात मान गया था। सुशीला ने भी दफ्तर में एक कमरा अपने लिए बना लिया था। वह वहाँ रोज़ आने लगी थी और दफ्तर के काम में हस्तक्षेप करने लगी थी।

न चाहते हुए भी मुहम्मदअली को लाहौर से दिल्ली आना पड़ा था। वह पाकिस्तान में रहना चाहता था, लेकिन 'देशभगत' का नौकर होने के कारण पाकिस्तान और मुस्लिम लीग के विरुद्ध इतने बयान उसकी ओर से लिखकर छापे गए थे कि मुसलमान उसके बहुत खिलाफ़ थे। मुस्लिम लीग के प्रधान मुहम्मदअली जिन्ना के प्रत्येक वक्तव्य का जवाब अल्लामा मुहम्मदअली के नाम से 'देशभगत' में छाप दिया जाता था। गठे हुए शरीर पर लम्बी-घनी दाढ़ी उसको बहुत फबती थी। मोटी नाक बहुत बारीक कटी हुई मूँछों के कारण और भी रौबदार लगती थी। वह पठानों की तरह की खाकी शलवार, ऊपर लबादा और सिर पर ऊँची टोपी पहनता था। इस खयाल से कि मुसलमान होने के कारण मुहम्मदअली को दिल्ली में और कहाँ नौकरी मिलेगी, आचार्यजी उसे यहाँ भी अस्सी रुपये प्रतिमास ही दे रहे थे। यहाँ आकर खुफ़िया पुलिस के लोगों से उसकी मुलाकात हो गई। उनको किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश थी जो शकल-सूरत से पक्का मुसलमान लगता हो। उसे वे

जामा मस्जिद और अन्य जगहों पर, जहाँ मुसलमान एकत्रित होते थे, भेजकर जानकारी हासिल करना चाहते थे। मुहम्मदअली इस काम के लिए तैयार हो गया और इसके लिए उसे मुस्लिम-विरोधी अख़बार 'देश-भगत' से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना पड़ा। उसने यह नौकरी इसलिए नहीं की थी कि यहाँ अच्छा वेतन था, वल्कि उसने यह सोचा था कि देर-सवेर वह पाकिस्तान के हाई कमीशन से सम्बन्ध स्थापित करके उनके लिए मुखवरी करने लगेगा और भारतीय खुफ़िया पुलिस में होने के कारण उस पर सन्देह भी नहीं होगा। इस तरह उसे अपने वतन जाने का अवसर मिल सकेगा। उसके सव रिश्तेदार पश्चिमी पाकिस्तान के ज़िला कैंमल-पुर में थे। वे सव उससे इतनी घृणा करते थे कि सगे भाइयों ने भी उसके किसी खत का जवाव कभी नहीं दिया था।

मुहम्मदअली के चले जाने से आचार्यजी को कम सदमा नहीं पहुँचा था। उन्हें लगा कि जैसे उनकी कलम टूट गई है। तीस-चालीस वर्ष पत्रकारिता करने के वाद भी आचार्यजी को कोई भाषा शुद्ध लिखनी नहीं आई थी। पिछले दस-पन्द्रह सालों में मुहम्मदअली उनके मुँह से निकली वात ही नहीं, उनके दिल की वात भी समझता था। अक्सर आचार्यजी की आधी वात को मुहम्मदअली लिखते समय पूरा कर दिया करता था। कई वार आवेश में आचार्यजी ऐसी वातें वोल जाते जिन्हें छाप देने से अनर्थ हो सकता था। लेकिन मुहम्मदअली ऐसी वातों को काट-छाँट देता था।

उन्हीं दिनों सी० एम० चोपड़ा भी 'देशभगत' की नौकरी छोड़ अंग्रेज़ी के दैनिक 'नेशनल टाइम्स' में चला गया था, जहाँ उसे चीफ़ रिपोर्टर के काम के लिए चार सौ रुपये प्रतिमास मिलते थे। वहुत कहने पर भी आचार्यजी उसकी तनख़ाह डेढ़ सौ करने के लिए तैयार नहीं हुए थे। चोपड़ा का 'देशभगत' छोड़ना भी आचार्यजी के लिए एक सदमा था, लेकिन मुहम्मदअली के सदमे से कम। दिल्ली और वाहर के धार्मिक जलसों में आचार्यजी अक्सर वुलाए जाते थे। ऐसे स्थानों पर वे भाषण भी देते

थे। चोपड़ा उनके प्रवचनों की अच्छी-सी ख़बर बनाकर छाप देता था। एक बार वह अमृतसर गये हुए थे। बीमार हो जाने के कारण वह जलसे में न जा सके। लेकिन उनका उस जलसे में भाषण अगले दिन अख़बार में छपा हुआ था। इतना अच्छा रिपोर्टर मिलना बहुत मुश्किल था।

आचार्यजी को उन दिनों दो आघात और सहने पड़े। नरेश एक अमरीकी लड़की के इश्क में फँस गया था और सुशीला रिफ़्यूजी वेल-फ़ेयर एसोसिएशन के नेता शिवशंकर कोहली के साथ आने-जाने लगी थी।

रूसी क्रान्ति के उपलक्ष्य में सोवियत दूतावास में आयोजित समारोह में कोहली की सुशीला से मुलाकात हुई थी। शहर से मज़दूरों और किसानों के जलूस अभी वहाँ नहीं पहुँचे थे। दो हज़ार से भी अधिक लोग वहाँ उपस्थित थे। इनमें हर वर्ग और हर विचारधारा के लोग थे। आचार्य रामचन्द्र ऐसे समारोहों में भाग नहीं लिया करते थे। उनके स्थान पर सुशीला वहाँ आई थी। बहुत-से बुद्धिजीवी किस्म के लोग एक साथ खड़े थे। कॉफ़ी हाउस में जाने के कारण सुशीला उनमें से कुछ को जानती थी। उनके पास से गुज़रती हुई वह वहाँ आकर ज़रा रुक गई थी। कुछ क्षण बाद कोहली भी वहाँ आ खड़ा हुआ था और परिचित लोगों से हाथ मिलाने लगा था। 'राजधानी के कवि' का सम्पादक बेढब देहलवी भी वहाँ था। अपरिचित व्यक्तियों से वह कोहली का परिचय कराने लगा। बारी-बारी से परिचय कराता हुआ जब वह सुशीला के पास पहुँचा तो ख़ामोश हो गया, क्योंकि वह स्वयं उसे नहीं जानता था। कुछ क्षणों की ख़ामोशी के बाद चुस्ती दिखाते हुए उसने कहा, "मैडम, कृपा करके अपना परिचय आप स्वयं ही दे दीजिए।"

सुशीला अचानक इस तरह की बात हो जाने से हड़बड़ा गई थी और चिढ़कर कहने लगी, "मेरे नाम से तुम्हें क्या लेना-देना है!" इससे पहले कि बेढब देहलवी कोई बेढब बात करता, कोहली ने मुआमले की नज़ाकत को पहचाना। उसने दोनों हाथ आगे करके सुशीला के आगे

झुककर आदाब की, फिर घिसे हुए पायदान-सा सिर आगे बढ़ाकर बड़ी नम्रता से कहा, "बन्दा आपका परिचय पाकर बहुत खुशकिस्मत समझेगा अपने-आपको।" यह कह कोहली ने अपने नाम-पते का कार्ड सुशीला के हाथ में दे दिया।

नरेश की भेंट अमरीकन युवती मिस पारकिन्सन से बड़े आकस्मिक ढंग से हुई थी। इस युवती से नरेश की मुलाकात प्रजातन्त्रात्मक संस्कृति-मण्डल के दफ्तर में कई बार हुई। एकाध बार मिस पारकिन्सन ने उसके साथ चाय पी। एक दिन मिस पारकिन्सन ने नरेश के सामने ताज देखने की इच्छा दर्शाई। हिन्दुस्तान आये हुए कई महीने हो जाने पर भी उसने ताज अभी तक नहीं देखा था।

अगले इतवार नरेश मिस पारकिन्सन को अपनी कार में आगरा ले गया। यह फ़ैसला नरेश अभी तक नहीं कर सका था कि मिस पारकिन्सन ने सचमुच ताजमहल उससे पहले देखा था कि नहीं। लेकिन जब वे वहाँ से लौटे तो नरेश को उससे प्रेम करने के सिवाय और कोई चारा नहीं रह गया था।

ग्यारह

अपने भाई चाननमल में जो परिवर्तन हो रहा था उसे देखकर लाल-कौर हैरान होती और उसे कुछ भय भी लगता। यह परिवर्तन चाननमल से मिस्टर चोपड़ा और फिर चोपड़ा साहब हो जाने तक ही सीमित न था और न ही यह परिवर्तन उसकी बातचीत, खान-पान और रहन-सहन के ढंग तक ही सीमित था। कुछ ही महीनों में वह बहुत प्रभावशाली आदमी बन गया था। उसका शरीर भर गया था और उसमें कोई चीज़ परिचित नहीं रही थी। उसके चेहरे पर घर लौटने पर मुस्कान होती, लेकिन लालकौर को उसमें बनावटीपन की झलक दिखाई देती। उसकी आँखें पहले की तरह नीची रहतीं, लेकिन वे अब निर्मल नहीं रही थीं और उनमें लाल डोरे साफ़ दिखाई देने लगे थे। कई बार उसका चेहरा इतना भावहीन होता कि लालकौर को उसमें अजनबी चेहरा नज़र आता। उसकी आवाज़ पकी हुई और ऊँची हो गई थी। घर आकर वह उसके पास नहीं, दूसरे कोने में बैठकर अपनी छोटी-छोटी मूँछों को अँगुलियों से छेड़ता रहता। उसकी आँखें बार-बार झपकतीं और किसी सोच में डूबी रहतीं, जैसे उसे कोई भूली हुई बात याद नहीं आ रही हो।

इन परिवर्तनों को देखकर, लालकौर अपने को बेहद अकेली महसूस करने लगती और कई बार तो अकेलापन और असहायता का भाव इतना तेज़ हो जाता कि वह अपने और अपने बच्चों के भविष्य के बारे में बहुत भयभीत हो उठती। धीरे-धीरे उसे महसूस होने लगा कि उसके चारों ओर परिवर्तन आ रहे हैं। नई परिस्थितियों में व्यक्तियों का भी परिवर्तित हो जाना ज़रूरी है। वे विवश हैं। यह परिवर्तनशीलता स्थितियों से जूझने का एक तरीका है।

धीरे-धीरे लालकौर को यह भी महसूस होने लगा कि अकेलापन उसके जीवन का ही नहीं, सब लोगों के जीवन का हिस्सा बन गया है। अपने गाँवों और छोटे-छोटे नगरों में वे ऐसा एकाकीपन कभी महसूस नहीं करते थे। इतने बड़े नगर में आकर, जहाँ लाखों मनुष्य बसते हों, अपने-आपको अकेला पाना और उससे भयभीत होने का कारण लालकौर की समझ में नहीं आ रहा था। कभी वह सोचती कि शहर में आकर लोगों की मान्यताएँ तेज़ी से बदलने लगी हैं और यह एकाकीपन पुरानी मान्यताओं के छिन्न-भिन्न हो जाने का परिणाम तो नहीं।

किस तरह लोगों के पुराने संस्कार और मान्यताएँ यहाँ आकर बदल रही हैं, देखकर लालकौर को अचरज होता। गाँव में भी गरीब और दीन लोग रहते थे, लेकिन उनको कभी यह ख़याल नहीं आता था कि अपनी गरीबी के लिए वे किसी को दोष दें। वे यही जानते थे कि कुछ लोगों को गरीब रहना पड़ता है। गरीब-अमीर एक रथ के पहिये हैं और दोनों पहियों के बिना संसार के रथ का आगे बढ़ना असम्भव है। गाँव में अगर कोई उन पर अत्याचार करता था तो वे सोचते थे कि विधाता सब-कुछ देख रहा है। भाग्य बहुत बलवान है और ईश्वर सीधे-सादे आदमियों की झोलियाँ भी कभी-कभी इस तरह भर देता है कि बड़े-बड़े अक्लमन्द मुँह ताकते रह जाते हैं। कामचोर आदमियों को ईश्वर दो जून रोटी नहीं देता। परमात्मा जब मुँह देता है तो रोटी का इन्तज़ाम भी कर देता है। लेकिन रोटी मुँह में अपने हाथ से ही डालनी

पड़ती है।

शहर में आकर उन्हें पता चला कि जीवन कितना कठोर है और जीने के लिए अथक संघर्ष करना पड़ता है। जी-तोड़ मेहनत करने पर भी मनुष्य गरीब और भूखा रह सकता है और हाथ-पर-हाथ धरे बैठे लोग लाखों के मालिक हो सकते हैं। यहाँ आकर उन्होंने यह भी सीखा था कि जीवन-संघर्ष में मिलकर नहीं, एक-दूसरे से लड़कर और एक-दूसरे का गला काटकर ही आगे बढ़ा जा सकता है। झूठ, कपट और स्वार्थ ज़रूरी हैं।

लालकौर ने यह भी देखा कि गरीब ही नहीं अमीर भी दुखी हैं। शहर में सब अपने को तुच्छ और अपमानित महसूस करते हैं। वह भी अन्य लोगों की तरह सोचा करती थी कि मनुष्य के अन्दर भगवान् का वास है। लेकिन अब मनुष्य में झूठ-कपट ने घर कर लिया था और जिसके बग़ैर इस दुनिया में गुज़ारा नहीं हो सकता था। दूसरों को धोखा दिये बग़ैर कौन ज़िन्दा रह सकता है? वह सोचती रहती कि आदमी कितनी जल्दी बदल जाता है और वह किस आसानी से पुरानी मान्यताएँ छोड़कर नई अपना लेता है।

सिलाई के काम में लालकौर को बहुत मेहनत करनी पड़ती थी। और भी बहुत-सी औरतों ने सिलाई की मशीनें ले ली थीं। सिलाई का भाव बहुत कम हो गया था। अन्य स्त्रियाँ बीच में कपड़ा खा जातीं और सिलाई में कच्चा धागा इस्तेमाल करती थीं। लेकिन लालकौर अपने-आपको ऐसा करने के लिए तैयार नहीं कर पाई थी। वह सुबह से शाम तक लगी रहती, तब भी बाल-बच्चों के लिए दो जून भोजन न जुटा पाती। सिलाई के पैसे वसूलने के लिए बीस-बीस चक्कर काटने पड़ते। काम मिल जाना मुश्किल था, लेकिन लोगों से अपनी मेहनत की कीमत वसूल करना उससे भी मुश्किल। न चाहने पर भी उसे भाई से मदद लेनी पड़ती।

इसी तरह और लोग भी जी-तोड़ मेहनत करने पर मुश्किल से

वाल-वच्चों का पेट भर पाते। कैम्प में से वहुत-से शरणार्थी विरला मिल, दिल्ली क्लाथ मिल आदि में मज़दूरी करने लगे थे। वे सुवह जाते और शाम को इस तरह थके-माँदे आते जैसे उनकी कमर तोड़ दी गई है। अपने खेतों में उन्हें इससे भी अधिक, इससे भी कड़ी मेहनत करनी पड़ती, लेकिन वे इस तरह अधमरे नहीं हो जाया करते थे।

हर आदमी और हर वस्तु एक तेज़ वहाव में वह रही थी। हर जगह दौड़-धूप, खींचातानी, धक्कमधक्का-सी मची हुई थी। किसी के पास आराम करने की, साँस लेने की फ़ुरसत नहीं थी। किसी को शान्ति और सन्तुष्टि नसीव नहीं थी। लालकौर सोचती कि शहर की ज़िन्दगी में इतना असन्तोष, इतनी लिप्सा, इतना छल क्यों है ?

हर दसवें-वारहवें दिन दीवान फ़ीरोज़चन्द लड्डू वाँटता। हिन्दू महासभा, तीसहज़ारी का वह प्रधान था। उसी के कार्यकर्ता फ़ीरोज़चन्द के लिए लड्डू वाँटने का काम करते थे। पतले रंगदार कागज़ में, लिपटा हुआ एक-एक लड्डू वे फ़ीरोज़चन्द को जानने वाले सभी लोगों को देते जाते। साथ-साथ कहते जाते कि फ़ीरोज़चन्द ने कत्ल का मुक-दमा जीता है, या दीवानजी ने दरीवे के एक जौहरी को दो लाख की दीवानी जिता दी है, या दीवानजी ने खारीवावली के एक सेठ की फ़ौज-दारी जीतकर उसके दुश्मनों को दो-दो साल के लिए जेल भिजवा दिया है। वाहर के लोग तो नहीं, लेकिन कैम्प वाले जानते थे कि ये लड्डू सिर्फ़ उसके सफल वकील होने की हवा वाँधने के लिए वाँटे जा रहे हैं। दीवानजी के पास कचहरी का काम इतना कम था कि वे सारा दिन कैम्प में वैठे मक्खियाँ मारा करते। धीरे-धीरे लड्डू वाँटने का कुछ प्रभाव पड़ा। फ़ीरोजचन्द के पास मुकदमे आने लगे। वह हफ्ते में तीन-चार दिन कचहरी जाने लगा। लेकिन जव से फ़ीरोज़चन्द को कुछ काम मिलने लगा तो वह और भी असन्तुष्ट नज़र आने लगा, जैसे उसकी वकालत विलकुल न चल रही हो।

भगवतीदेवी ने अनाथ स्त्री सेवा सदन के नाम पर चन्दा जमा

करना बन्द कर दिया था। उसने और सालिगराम ने आठ और रिश्तेदारों को साथ मिलाकर शरणार्थी ग्रामोद्योग सहकारी संस्था बना ली थी। सहकारी बैंकों से तो उन्हें अधिक रुपया कर्ज़ न मिल सका, क्योंकि संस्था के हिस्से दस-दस, बीस-बीस रुपये के थे और बैंक उस रकम से दस-बारह गुना से अधिक कर्ज़ नहीं दे रहे थे। लेकिन सालिगराम और भगवती देवी ने परिचित कांग्रेसी नेताओं से मिल-मिलाकर अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ से एक लाख रुपये की मदद ले ली थी। कस्तूरबा गांधी ट्रस्ट से भी उनको अबला और विधवा शरणार्थी स्त्रियों की सहायता के लिए पच्चीस हज़ार रुपये का अनुदान मिल गया था। इस राशि से सालिगराम के रिश्तेदारों ने अपने-अपने काम-धन्धे अच्छी तरह शुरू कर दिए और इन सब धन्धों में सालिगराम का आधा हिस्सा था। पटेलनगर में सरकार की ओर से शरणार्थियों के लिए बनी दो-मंज़िली इमारतों में से सालिगराम ने एक हथिया ली थी और तीस हज़ारी का कैम्प छोड़कर अब वहाँ जा रहने लगा था।

कैम्प में उसी झोंपड़ी में दीनदयाल आकर रहने लगा। पंजाब के एक मन्त्री का वह नजदीकी रिश्तेदार था। उस मन्त्री ने अपने नाम के बजाय दीनदयाल के नाम पर पंजाब भर के लिए किसी पेपर मिल की सोल एजेंसी ले ली थी। उसे एक प्रतिशत कमीशन मिल जाती थी। पंजाब सरकार उसी मिल का कागज़ अपने काम में लाती थी और बड़ी-बड़ी प्रकाशन-संस्थाएँ और प्रेस भी उसी मिल का कागज़ काम में लाते थे। इस तरह एक प्रतिशत कमीशन पर भी दीनदयाल को काफ़ी आमदनी हो जाती थीं। इसका बड़े वाला भाग मिनिस्टर साहब ले जाते थे, फिर भी दीनदयाल के पास अच्छी रकम बच जाती थी। महीने में वह एक बार हिसाब करने पंजाब जाता, जहाँ जालन्धर में उसने छोटा-सा दफ़्तर खोल रखा था।

सब्ज़ीमंडी के पास विधाताराम की दुकानदारी कुछ दिन खूब चमकने के बाद मन्द पड़ गई थी। वहाँ उसी तरह की दर्जनों दुकानें खुल

गई थीं। एक दुकानदार ने अपने दुकान के आगे बोर्ड लगा लिया था—'अनारकली लाहौर का सबसे मशहूर हलवाई यही है'। लेकिन वह मुलतान से आया था। दूसरे ने इससे भी बड़ा बोर्ड लटका दिया—'लायलपुर की मशहूर ख़ालिस घी की हलवा-पूरी यहाँ बिकती है', यद्यपि वह सस्ते-से-सस्ता वनस्पति घी इस्तेमाल करने के कारण सबसे सस्ती चीज़ें बेच रहा था। नई खुली दुकानें बहुत ढंग से सजाई गई थीं। कई दुकानदारों ने तो हज़ारों रुपये के सामान से दुकानें सजाई थीं। विधाताराम के पास इस काम के लिए पूंजी नहीं थी। देहात से आने के कारण उसे शहरी दुकानदारी का ढंग भी नहीं आता था। उसने फिर से बतासे-मिश्री बनाने का काम शुरू कर दिया और गुज़ारे के लिए कुछ पैसा कमाने लगा। उसकी दोनों लड़कियाँ पाकिस्तान से आ गई थीं। बड़ी लड़की के लिए वर मिल जाने पर उसने उसकी शादी कर दी थी। अब छोटी लड़की के लिए वर की चिन्ता में लगा रहता था और दुकान में कुछ पैसा लगाकर कारोबार बढ़ाने के बजाय वह इस लड़की की शादी के लिए पैसा जोड़ने में लगा हुआ था।

विधाताराम के छः और आठ साल के दोनों बेटे दुकान पर काम करने लगे थे। यहाँ आने से पहले दोनों स्कूल जाते थे। हर रोज़ सुबह जब और बच्चे स्कूल जाने लगते तो वे भी अपनी पुरानी किताबें उठाकर पढ़ने के लिए तैयार हो जाते। जो कुछ उन्हें याद था उसे ऊँची आवाज़ में रटते रहे। विधाताराम उनको स्कूल जाने से रोकता। जब वे ज़िद करते तो उन्हें खूब पीटता। उसका इरादा था कि काम चलने लगे तो दुकान पर नौकर रखकर इन्हें पढ़ने भेजने लगेगा। लेकिन दुकान का काम मन्दा पड़ता जा रहा था और इन बच्चों का दुकान में हाथ बँटाना ज़रूरी था। विधाताराम अब कमर झुकाकर चलने लगा था। उसकी गर्दन सूख गई थी और सिर हर वक्त हिलता रहता था। उसके माथे पर एक घाव का निशान था, जो चेहरा सूख जाने से बहुत ही उभर आया था। पूछने पर वह बताया करता कि बचपन में जामुन के पेड़ से गिरने

से चोट लग गई थी। सुबह के समय स्कूल जाने पर ज़िद करने के कारण जब वह बेटों को पीटता तो कोई कह उठता कि उसके माथे का घाव जामुन के पेड़ से गिरने की वजह से नहीं, बाप की पिटाई से पड़ा है और उसका बदला वह अपने बेटों से ले रहा है। यह सुनकर खिसियाना-सा हो बेटों को पीटना बन्द कर वह उन्हें झोंपड़ी में ले जाता।

लायलपुर के पास के गाँव से आया हुआ करतारसिंह सामने की कतार में रहता था। उसके दाएँ हाथ की एक अँगुली कटी हुई थी। प्रथम विश्वयुद्ध में उसके छः चचा ज़बरदस्ती फ़ौज में भरती कर लिए गए थे और सारे लड़ाई में काम आ गए थे। दूसरे महायुद्ध के समय जब भरती करने वाले 'भरती हो जाओ रंगरूट' गाते हुए उसके गाँव में आये तो करतारसिंह के पिता ने अपने दोनों बेटों के दाएँ हाथ की एक-एक अँगुली काट दी ताकि गोली चलाने में असमर्थ होने के कारण उन्हें ज़बर-दस्ती भरती न किया जाए। करतारसिंह ने दिल्ली आकर किसी ट्रांस-पोर्ट कम्पनी में ट्रक-ड्राइवर की नौकरी कर ली थी। उसे सौ रुपये से कम तनख़ाह मिलती। आस-पास के शहरों से रात के समय सामान ढोना पड़ता था। एकाएक करतारसिंह ने नौकरी छोड़ दी और एक बस खरीद ली थी। जिस कम्पनी में वह नौकर था, उसका मालिक और यू० पी० के कुछ व्यापारी रोज़ आकर उसे डाँटते और पुलिस के हवाले कर देने की धमकी देते, लेकिन मुआमला वहीं-का-वहीं रहता। करतारसिंह यू० पी० की चीनी मिलों से ब्लैक में बेचने के लिए चीनी के ट्रक दिल्ली लाया करता था। चीनी मिल का आदमी साथ होता था। रास्ते में पुलिस कोई हस्तक्षेप नहीं करती थी। चीनी दिल्ली लाकर यहाँ के व्यापारियों के हवाले कर दी जाती थी। एक दिन बोरियों से लदे ट्रक को बीच में करतारसिंह ने रोका और चीनी मिल के आदमी का खात्मा करके लाश गंगा में फेंक दी। चीनी अपने एक रिश्तेदार के ज़रिए मेरठ में बेच दी। उसका पुराना मालिक और चीनी का व्यापारी धमकी देकर चुप रह जाते, क्योंकि पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराने से पहले उन्हें अपना यह

अपराध स्वीकार करना पड़ता कि वे चोरी-छिपे यू० पी० से दिल्ली चीनी लाते रहे हैं और चोर-बाज़ार में वेचते रहे हैं। करतारसिंह का मन अब धर्म में वहुत रमने लगा था। वह रोज़ सुवह गुरुद्वारे जाने लगा था। वस रोहतक-हिसार के रूट पर चलाने लगा था और उसे लगभग तीस रुपये रोज़ की आमदनी होने लगी थी। यह पता होने पर भी कि उसने एक आदमी की हत्या करके यह पैसा हासिल किया है, लोग उसकी पहले से ज्यादा इज़्ज़त करते थे।

उससे कुछ परे रामप्रकाश अरोड़ा आ बसा था। उसकी चार लड़कियाँ थी, चारों बी० ए० पास। शुरू में सुमित्रा की तरह साठ-सत्तर रुपये मासिक वेतन पर उन्होंने नौकरी की। लेकिन कुछ महीनों में ही चार-पाँच सौ रुपये मासिक वेतन पाने लगीं। सुवह वन-ठनकर दफ्तर जातीं तो शाम को उससे भी वन-ठनकर इन्तज़ार कर रही कारों में वैठकर जाने कहाँ जातीं।

सुमित्रा को प्राइमरी स्कूल छोड़ना पड़ा। उसे जहाँ कहीं भी काम मिलता, पाँच-दस दिन में उसे वहाँ से निकाल दिया जाता। वह नये सिरे से नौकरी की तलाश में जुट जाती।

जनवादी शरणार्थी सभा की स्त्रियों के सम्पर्क में सुमित्रा वरावर आती रही थी और उनकी ईमानदारी, शालीनता और कार्य-लगन से वह वहुत प्रभावित हुई थी। सुमित्रा की जान और लाज वचाने में मुसलमानों ने मदद की थी। इसलिए जनवादी शरणार्थी सभा की मुसलमानों के विरुद्ध घृणा न फैलाने वाली बात वहुत आकर्षक लगती थी। वे स्त्रियाँ वहुत लगन से काम करती थीं और किसी तरह के दिखावे में उनका विश्वास नहीं था। उनमें एक लड़की गीता एक प्रसिद्ध कांग्रेसी लीडर की वेटी थी और आन्दोलनों में जेल हो आई थी। जेल में वहुत-सी कितावें पढ़ने का उसे अवसर मिला और वह कम्यूनिस्ट विचारों की होकर जेल से निकली। जेल से बाहर आकर कम्यूनिस्टों के साथ राजनीतिक काम करने के बाद वह कम्यूनिस्ट पार्टी में शामिल हो गई थी।

गीता से सुमित्रा की पहली भेंट जनवादी महिला समाज की एक छोटी-सी बैठक में हुई। जनवादी महिला समाज की बैठकों में केवल महिला-कल्याण और उन्नति-जैसे विषयों पर चर्चा होती थी। जनवादी महिला समाज के सम्पर्क में आने के बाद सुमित्रा समाचारों और अन्य समस्याओं को भिन्न दृष्टि से देखने लगी। जनवादी महिला सभा की छोटी-छोटी बैठकों में कम्यूनिज़्म और कम्यूनिस्ट पार्टी के विषय में अधिक बातें नहीं होती थीं। कम्यूनिस्टों को रूस से पैसा मिलता है और कम्यूनिस्ट पार्टी में वही लोग सम्मिलित होते हैं जो साधारण नैतिक संस्कार नहीं मानते, यह सुमित्रा की भी धारणा थी। लेकिन अब यह धारणा गीता और अन्य कम्यूनिस्टों के सम्पर्क में आने के बाद बदल गई। सुमित्रा ने देखा कि वे लोग ही सादा और सरल जीवन के हामी थे। गीता ने दिल्ली यूनिवर्सिटी से एम० ए० पास की थी और उसे कहीं भी अच्छी नौकरी मिल सकती थी। लेकिंन वह पार्टी का काम करती थी। घर से रोटी खाकर सुबह निकलती और शाम को फिर वहाँ जाकर ही भोजन करती। माँ-बाप से मिले जेबखर्च को भी वह पार्टी के काम पर खर्च कर देती थी। सुमित्रा को पता चला कि जो व्यक्ति सारा समय पार्टी का काम करता है, पार्टी उसे गुज़ारे के लिए केवल पच्चीस रुपये प्रतिमास देती है। कम्यूनिस्ट बनना त्याग-भरे जीवन को अपनाना है। इसके लिए स्वार्थ ही नहीं छोड़ना पड़ता, बल्कि बहुत-से छोटे-छोटे आराम और सुख भी छोड़ देने पड़ते हैं। जनवादी महिला समाज की गोष्ठियाँ छिप-छिपकर होती थीं। कभी-कभी गीता वहाँ न पहुँच पाती। इसका कारण वह अपने शैडो से छुटकारा न पाना बतलाती। एक-दो बार शैडो शब्द इस प्रसंग में सुनने के बाद किसी से पूछने पर सुमित्रा को मालूम हुआ कि खुफ़िया पुलिस का आदमी अक्सर उसके पीछे-पीछे साइकिल पर चलता है। इस किस्म की गोष्ठियों के स्थानों का वह सी० आई० डी० वालों को पता नहीं देना चाहती और यहाँ आने से पहले वह रास्ते में ही कहीं पीछा छुड़ाकर आती थी।

जनवादी महिला समाज की गोष्ठियों में जाने से सुमित्रा को भारत और अन्य देशों की स्त्रियों की समस्याओं और साम्यवाद के वारे में कुछ पाठ्य-सामग्री मिली और उसने जाना कि साम्यवाद किस तरह मानव-जाति में आशा की नई रूह फूंकता है, किस तरह मानवता के भविष्य के वारे में नई राहें उजागर करता है। अब वह यह अनुभव करने लगी कि उसमें ज्ञान की पिपासा बराबर बढ़ रही है। पड़ोस की चारों अरोड़ा लड़कियों की कुछ ही दिनों में इतनी तरक्की कर जाने पर अब उसे जलन महसूस न होती। चारों तरफ़ अर्थ के लिए दौड़-धूप और लूट-खसोट हो रही थी। वह यह भी जान गई थी कि गरीबी का क्या कारण है और उसे कैसे दूर किया जा सकता है।

एक बात सुमित्रा समझ नहीं पा रही थी। साम्यवादियों के अनुसार भारत में क्रांति तीन-चार वर्ष में होने वाली है और उसके वाद सब शोषण और दरिद्रता दूर हो जाएगी। भारत के पूंजीपति-वर्ग को धराशायी करने वाले भूचाल के चिह्न सुमित्रा को कहीं दिखाई नहीं दे रहे थे और न ही उसे इन गोष्ठियों के बाहर कहीं क्रांति की स्थितियाँ दिखाई देती थीं। गोष्ठियों में आनेवाली थोड़ी-सी महिलाओं तक में क्रांति या कम्यूनिस्ट पार्टी के लिए इतना उत्साह नहीं था कि हर कुर्बानी के लिए तैयार हो जाएँ।

एक बार जनवादी महिला समाज की एक गोष्ठी हिन्दी के एक लेखक श्री पथिक के घर में हुई। वह तो वहाँ नहीं था, लेकिन उसकी पत्नी और चार बच्चों की हालत देखकर सुमित्रा का दिल तड़प उठा। भूख और अभावों की ऐसी तसवीर उसने पहले कहीं नहीं देखी थी। उसे पता लगा कि हिन्दी का यह लेखक किसी दैनिक समाचारपत्र में काम करता था। लेकिन सम्पादक के आदेशानुसार किसी समाचार को कम्यू-निस्ट-विरोधी रंग देने से इन्कार करने पर उसे नौकरी छोड़नी पड़ी थी। इस विचार से कि तीन वर्ष के अन्दर-अन्दर देश में जनवादी क्रांति हो जाएगी, उसने नौकरी करने का इरादा छोड़ दिया था। छः सौ रुपये उसे

नौकरी से हटाए जाने के समय मिले थे। तीन साल तक इस रकम से गुज़ारा करने का फ़ैसला करके वह प्रति मास सोलह रुपये दस आने से अधिक ख़र्च नहीं करता था। अपने चारों बच्चों को उसने स्कूल से उठा लिया था और उनको घर पर ही पढ़ाने लगा था। वह साम्यवादी विचार-धारा वाली पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में करता और प्रगतिशील पत्रों के लिए लेख लिखता था, जिनसे उसे कोई पारितोषिक प्राप्त नहीं होता था। घर की हर वस्तु पर अभाव, दरिद्रता और भूख की छाप थी। एक महिला पूछने लगी कि पथिकजी फिर कहीं नौकरी क्यों नहीं कर लेते ? यह सुनकर लेखक की पत्नी ने चिढ़कर कहा, "क्या हुआ, आजकल कुछ नहीं कमाते, जिस स्त्री का पति मर जाता है, वह भी तो छाती पर पत्थर रख लेती है।"

उन छोटी-छोटी गोष्ठियों के बाहर कहीं भी किसी को आने वाली क्रांति का पता नहीं था। जिन हज़ारों-लाखों लोगों के लिए यह क्रांति होनी थी, उनको न तो इसकी इच्छा थी और न ही इसकी आशा। उन्होंने इस क्रांति का नाम तक नहीं सुना था। तीन-चार वर्ष में यह कैसे होगा, सुमित्रा समझ न पाई।

फिर भी सुमित्रा जनवादी आन्दोलन की ओर तेज़ी से आकर्षित होती गई। चीनी कम्यूनिस्ट फ़ौजें चीन के दक्षिणी प्रदेशों की ओर बड़ी तेज़ी से बढ़ रही थीं। समाचारपत्रों में यह चर्चा रोज़ हो रही थी कि सेनाएँ शीघ्र ही चीन में उतारकर अमरीकी सरकार चीन के गृह-युद्ध में हस्तक्षेप करेगी, क्योंकि केवल युद्ध-सामग्री जुटाने से कम्यूनिस्ट फ़ौजें रुक नहीं पा रही थीं। च्यांगकाई शेक ने कम्यूनिस्ट सेनाधिकारियों की माताओं, पत्नियों, बहनों और बेटियों को शंघाई, कैण्ट और दक्षिण के अन्य शहरों में गिरफ्तार कर लिया था। उनमें से कुछ को गोली से उड़ा दिया था और बाकी सबको भी मार देने की धमकी दी थी। स्त्रियों की इस हत्या के विरुद्ध अमरीकी दूतावास पर प्रदर्शन करने का जनवादी महिला समाज ने फ़ैसला किया। जो कम्यूनिस्ट या कम्यूनिस्टों के समर्थक

पत्र सुमित्रा पढ़ती थी, उनसे लगता था कि दिल्ली में एक बहुत बड़ी घटना होने वाली है और इस प्रदर्शन के लिए दिल्ली में विशाल पैमाने पर तैयारी हो रही है। अन्य समाचारपत्रों में इसका कोई उल्लेख नहीं था, न ही उनमें च्यांगकाई शेक के विरुद्ध कोई खबर छपती थी। कम्यूनिस्टों के पत्र बहुत कम लोग पढ़ते थे। सुमित्रा सोचती कि इस प्रदर्शन या चीन में स्त्रियों की हत्या की खबर आम लोगों को पता ही नहीं, तो वे प्रदर्शन में कैसे भाग लेने आएँगे।

उन दिनों अधिकतर कम्यूनिस्ट कार्यकर्ता अण्डरग्राउण्ड हो गए थे। गीता उनकी गोष्ठियों और बैठकों में तो आती रही थी, लेकिन प्रदर्शन के दिन वह गांधी ग्राउण्ड में नहीं थी। सुमित्रा और लालकौर-सहित इक्कीस महिलाएँ जनवादी महिला सभा के उस प्रदर्शन में सम्मिलित होने के लिए पहुँची थीं। अमरीकी दूतावास जाने के लिए जब वहाँ से जलूस शुरू हुआ तो उसमें से दो स्त्रियाँ खिसक गईं और वे उन्नीस रह गईं। उन दो के बारे में शक था कि वे खुफ़िया पुलिस की हैं। उन्नीस औरतों के जलूस के आगे-पीछे पचास के करीब पुलिस की औरतें थीं और उनके पीछे दो बसों में सशस्त्र पुलिस के दस्ते थे।

जलूस के आगे-आगे दो औरतें थीं। एक औरत के हाथ में तिरंगा और दूसरी के हाथ में लाल झण्डा था। उसके बाद तीन गज़ चौड़ा और डेढ़ गज़ ऊँचा एक बैनर था जिसके दोनों ओर बाँस सिये हुए थे। इसे दो औरतें किनारों से थामे सारी सड़क रोके आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़ रही थीं। इस पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था—'अमरीकी साम्राज्य काग़ज़ का शेर, मारो फूंक कर दो ढेर।' उसके पीछे सात औरतें झण्डे लिये चल रही थीं। लालकौर अकेली एक बड़ा झण्डा उठाए चल रही थी। 'जो हमसे टकराएगा, चूर-चूर हो जाएगा', 'चीन ने राह दिखाई है, हमारा नारा इन्कलाब' के नारे लगाती औरतें तेज़ कदमों से आगे बढ़ती जा रही थीं। कहीं ट्रैफिक रुक जाता तो कुछ राहगीर जलूस देखने के लिए खड़े हो जाते। दरियागंज में तीन और महिलाएँ जलूस में

आ शामिल हुईं। जलूस ने हार्डिंग पुल पार किया और संयुक्त राज्य अमरीका के दूतावास जाने के लिए मण्डी हाउस की तरफ़ मुड़ा। उस तरफ़ जाने वाली सड़क पुलिस ने वन्द कर रखी थी और वहाँ बन्दूकों और लाठियों से लैस पाँच-छः सौ पुलिस वालों के अतिरिक्त अश्रुगैस की लारी और कैदियों को उठा ले जाने वाली दो गाड़ियाँ भी थीं।

दूतावास को जा रही सड़क पर कोलतार के खाली ड्रम रखकर वन्द कर दिया गया था। जलूस वहाँ पहुँचकर रुक गया। लाल झण्डा थामे शान्ता नाम की महिला भाषण देने लगी और दूसरी औरतें सड़क पर बैठकर सुनने लगीं। भाषण में यह कहा गया कि दुनिया की कोई ताक़त उन्हें अमेरिकन दूतावास तक जाने से नहीं रोक सकती। भाषण के वाद उस महिला ने सबको ललकारा कि रुकावट तोड़कर आँधी की तरह आगे बढ़ जाओ। इसके वाद वह और उसके साथ दस-ग्यारह महिलाएँ आगे बढ़ीं। कोलतार के ड्रम ऊँचे थे, उनको कूदकर पार करना सम्भव नहीं था। एक ड्रम को सरकाकर वे आगे बढ़ीं। पुलिस के सिपाहियों ने उनके झण्डे छीन लिए और सबको धकेलकर वैन में डाल दिया। सुमित्रा अगली कतार में थी। वह एक लड़की के साथ आगे लपकी। उन्हें भी पकड़कर वैन में भर दिया गया। कुछ देर बाहर प्रतीक्षा करने के वाद लालकौर और दूसरी औरतें अपने-अपने घर लौट गईं।

वैन के अन्दर उन्हें कुछ खाने को दिया गया और दो पुलिस की औरतों ने उनका नाम-पता लिखा, तलाशी ली और उनके पास जो कुछ था, ले लिया। आधी रात होने पर वैन चलने लगी और कई घण्टे चलने के वाद सुबह मुँह-अँधेरे एक जंगल के पास रुक गई। महिलाओं के वहाँ उतरने से इन्कार करने पर पुलिस की दो औरतों ने अन्य पुलिसवालों की सहायता से उन्हें नीचे उतार दिया और वैन वापस चली गई।

ग्यारह वजे तक इधर-उधर भटकने के बाद वे एक गाँव में पहुँचीं। पता लगा कि पास का रेलवे स्टेशन डिबाई दस मील की दूरी पर है। बग़ैर कुछ खाए-पिए वे शाम को डिबाई पहुँचीं। वहाँ से अलीगढ़ होकर

दिल्ली पहुँचा जा सकता था, लेकिन गाड़ी उन्हें अगली सुवह ही मिल सकती थी। उस छोटे-से शहर में वे कम्यूनिस्ट पार्टी के दफ्तर का पता पूछने लगीं, मगर वहाँ के कम्यूनिस्ट पार्टी के दफ्तर का शहर में किसी को पता नहीं था। उसके वाद उन्होंने शहर के समाचारपत्र-विक्रेताओं का पता लगाया, ताकि उनसे मालूम किया जाए कि इस शहर में कौन कम्यूनिस्ट पार्टी का अंग्रेज़ी या हिन्दी साप्ताहिक मँगवाता है। समाचारपत्र-विक्रेताओं ने कभी इन पत्रों के नाम तक न सुने थे। रात उन्होंने स्टेशन के वेटिंग रूम में गुज़ारी और सुवह की गाड़ी से वे विना टिकट दिल्ली की ओर चल पड़ीं।

गाड़ी चली तो शान्ता भाषण देने लगी। वह कम्यूनिस्ट पार्टी की सदस्य वनने से पहले किसी कॉलेज में लेक्चरर थी।

नारे और भाषण सुनकर एक टिकट-चैकर उधर आ निकला। वह 'रेलवे मेन्स यूनियन' का सदस्य होने की वजह से कम्यूनिस्ट पार्टी से सहानुभूति रखता था। उसने अलीगढ़ स्टेशन पर वहाँ की 'रेलवे मैन्स यूनियन' द्वारा उनके लिए भोजन का प्रवन्ध किया और गार्ड से कहकर दिल्ली स्टेशन से वाहर निकलने का भी इन्तज़ाम कर दिया।

दो दिन की अनुपस्थिति के वाद जव सुमित्रा स्कूल पहुँची तो उसे पढ़ाने से मना कर दिया गया। चार दिन खाली बैठे रहने के पश्चात् उसे नौकरी से डिसमिस किए जाने का नोटिस मिल गया और वह किसी और नौकरी की तलाश करने लगी।

सुमित्रा को इस प्रदर्शन की वात समझ नहीं आई थी। चीन के लिए लोगों में इतनी सहानुभूति होते हुए भी वीस-वाईस महिलाएँ ही एकत्रित की जा सकी थीं। इस प्रदर्शन को यह रूप क्यों दिया गया था? अगर प्रदर्शन किया ही जाना था तो इस तरह गिरफ्तार होने से चीन को या जनवादी महिला समाज को क्या लाभ हुआ? 'यह आज़ादी झूठी है, भूलो मत' की तरह के नारे क्यों ज़रूरी हैं, यह सुमित्रा न समझ पा रही थी। यह स्वतन्त्रता झूठी है। लेकिन जिस मानसिक अवस्था में लोग

रह रहे हैं, उनके लिए यह झूठ ज़रूरी है। इसी तरह 'जो हमसे टकराएगा, चूर-चूर हो जाएगा' के नारे का क्या अर्थ है ? जब जनवादी आन्दोलन इतना निर्बल है, तो इस तरह के नारे लगाना अपने-आपको धोखा देना है। इस दुविधा और नौकरी की तलाश में रहने की वजह से सुमित्रा जनवादी महिला समाज की बैठकों में उन दिनों हिस्सा न ले सकी।

एम्प्लायमेंट एक्सचेंज में नाम लिखाने के हफ़्ते-भर बाद उसे एक विदेशी कम्पनी में रिसेप्शनिस्ट की नौकरी मिल गई और चार दिन बाद ही बिना कारण बताए उसे नौकरी से हटा दिया गया। उसके बाद उसने पुनर्वास-मन्त्रालय में क्लर्क की नौकरी की, सात दिन बाद वहाँ से भी नोटिस मिल गया। बाद में सुमित्रा ने पाँच-छः जगह और नौकरी की, लेकिन कुछ दिनों बाद हर जगह से हटा दी जाती। हर जगह नौकरी के फ़ार्म पर नाम और पता भरना पड़ता था। नाम-पता लिख लेने के बाद दिल्ली पुलिस को पूछताछ करने के लिए भेज दिया जाता था। जब वहाँ से रिपोर्ट आती कि वह कम्यूनिस्ट है तो उसे नौकरी से निकाल दिया जाता। उसने कुछ प्राइवेट नौकरियाँ करने की कोशिश भी की। सदर बाज़ार में किसी अफ़सर को अपने बच्चों को घण्टे-भर पढ़ाने के लिए एक अध्यापिका की आवश्यकता थी, सुमित्रा ने वहाँ काम करना शुरू किया। शाम के समय वहाँ जाती थी। अफ़सर बच्चों के साथ उसके पास आ बैठता और उससे व्यर्थ की बातें करने लगता। सुमित्रा वहाँ कुछ दिन से अधिक काम न कर सकी। इसी तरह करोलबाग के एक कारखानेदार को अपने बच्चों के लिए एक गवर्नेस की ज़रूरत थी। जब वह वहाँ काम पर गई तो पड़ोस से पता लगा कि पहली गवर्नेस एक रात अचानक नौकरी छोड़कर घर से बाहर निकल आई थी। यह सुनकर सुमित्रा उसी शाम तीसहज़ारी कैम्प लौट आई।

बेरोज़गार होने पर वह सोचने लगी—क्या एक बार कम्यूनिस्टों के सम्पर्क में आ जाने के बाद कोई और चारा नहीं ? क्या कम्यूनिस्ट पार्टी की तरफ़ एक बार हाथ बढ़ा देने के बाद सब राहें बन्द हो जाती हैं ?

बारह

मारेल रिआर्मामेंट के प्रतिनिधि जब कोहली से विदा हुए तो उसका दिल आत्मतुष्टि से भरा हुआ था। उसने इस मौके के लिए खास तौर पर कपड़े खरीदे थे, जैसे अमरीकी फ़िल्मों में हीरो पहनता है। सीढ़ियों पर उसने सुर्ख गलीचा बिछा दिया था। बैठक का सामान बढ़िया होने के कारण उसने न बदला, लेकिन दीवार की तसवीरें नई खरीदीं। प्रेसीडैण्ट ट्रूमेन की तसवीर दीवार पर लटकाना उसने उचित न समझा। प्रजातन्त्रात्मक संस्कृति-मण्डल के दफ़्तर में उन्होंने हिटलर की दबी ज़बान में तारीफ़ की थी। कोहली को हिटलर की तसवीरें तो न मिलीं, लेकिन वह चर्चिल की तसवीर ले आया था, जिसके बारे में भी उनकी धारणा अच्छी थी। सूली पर लटक रहे यीशु मसीह का रंगीन चित्र भी वह ले आया। दरवाज़े के सामने दीवार पर ग़ालिब की तसवीर बाईं ओर सरकाकर उसकी जगह उसने अभिनन्दन-पत्र लटका दिया और उसके साथ दाहिनी तरफ़ ग़ालिब की तसवीर से बड़ा अपना एक फोटो सजा दिया।

कोहली ने सोचा था कि वह उनसे मतलब की बात बहुत कम करेगा और शराब या खाने-पीने की चीज़ों की बातों में उन्हें उलझाए रखेगा। उसने 'देशभगत' के दफ्तर में टेलिफ़ोन करके सुशीला को भी

निमन्त्रित कर लिया था। वह दो टेलिफ़ोन कश्मीरी गेट के डाकखाने से एक जानकार के ज़रिए एक दिन के लिए माँग लाया था। चाय के साथ तरह-तरह की खाने की अनेक चीज़ें थीं।

सबसे पहले कोहली ने उन्हें अपने अभिनन्दन-समारोह के फोटोग्राफ दिखाए। पहले ही एक फोटोग्राफर के पास जाकर इस प्रकार की सभाओं के बाहर की भीड़ की कुछ तसवीरें उसने खरीद ली थीं और उनको एल्बम में लगा लिया था।

सुशीला को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी कहकर कोहली ने उनसे उसका परिचय कराया। गोल्डस्टेन ने मुस्कराते हुए कहा कि जब वह कोहली की उम्र का था, तो छः महीने से अधिक किसी प्राइवेट सेक्रेटरी को नहीं रखता था। शराब के पैग चलने लगे और शीघ्र ही कमरा शराब की बू और सिगरेट के धुएँ से भर गया। शराब का पैग लिये हुए गोल्डस्टेन कमरे में इधर-उधर चहलकदमी करने लगा। ग़ालिब की तसवीर के पास आकर उसने ग़ालिब की छोटी दाढ़ी को घूर-घूरकर देखा और कोहली से पूछा, "लेनिन की-सी दाढ़ी वाला यह आदमी क्या कोई कम्यूनिस्ट है ?" कोहली ने बताया कि यह एक मुसलमान शायर है, जो पिछली सदी में दिल्ली में रहा करता था। साथ ही कोहली ने गोल्डस्टेन से सवाल किया, "क्या लेनिन कोई अमरीकी मुसलमान है, जो ऐसी दाढ़ी रखता है ?" कोहली के उत्तर से सन्तुष्टि की एक मुस्कराहट गोल्डस्टेन के चेहरे पर फैल गई।

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का ज़िक्र आया तो गोल्डस्टेन ने कोहली से सवाल किया कि वह कहाँ का रहने वाला है ? कोहली ने उत्तर दिया कि वह एक ऐसी अवस्था में पहुँच चुका है कि उसकी कोई मातृभूमि नहीं रही। उसने अपनी बात की व्याख्या करते हुए कहा कि जीव-जन्तु पहले जलचारी थे, फिर विकास-क्रम द्वारा स्थलचारी और आकाशचारी बने। इस तरह एक मनुष्य भी मानसिक विकास की सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ इस अवस्था में पहुँच सकता है कि वह एक देश का शहरी न होकर अपने-

आपको सारे संसार का नागरिक अनुभव करने लगे ।

कोहली कहने लगा, "मनुष्य इतना विकास कर सकता है कि वह अपने को पृथ्वी का नहीं, समस्त सृष्टि का नागरिक महसूस करने लगे और हो सकता है कि वह अपने को धरती पर पैदा हुआ न कहकर चाँद या बृहस्पति से धरती पर फेंक दिया गया कहे।" गोल्डस्टेन ने फ़ौरन यह वात अपनी नोटबुक में दर्ज कर ली ।

इसके वाद खाने की चीज़ों पर ढँका कपड़ा हटा दिया गया । खाने से सजी मेज़ पर वे टूट पड़े । उसके वाद की अधिकतर वातें औरतों के वारे में थीं । सारा समय चटपटे खाने और चटपटी वातों में गुज़रा । कोहली की एक और वात गोल्डस्टेन ने नोटवुक निकालकर लिख ली । वह वात थी—कोहली की स्त्रियों से प्रेम न करने की वजह । उसने कहा कि जब एक औरत के कपड़े उतार दिए जाते हैं तो सब भावनाएँ और विचार इस तरह शरीर और मन से उड़ जाते हैं, जैसे वन्दूक छोड़ने से पेड़ पर के सब पक्षी उड़ जाते हैं । उस अवस्था में किसी औरत से प्रेम करना, चाहे वह कितनी ही खूवसूरत हो, वहुत मुश्किल है ।

कोहली ने ऐसे चुस्त वाक्य खास इस अवसर के लिए याद किये थे । उन्हें वह समयानुकूल सुनाता रहा और गोल्डस्टेन को प्रभावित करने का पूरा यत्न करता रहा । "सोशलिज़म की रेत पर मानव का भविष्य नहीं पनप सकता, यह तो अध्यात्मवाद की चट्टान पर ही खड़ा किया जा सकता है" जैसे वाक्य उन्हें वहुत पन्सद आए । अन्त में गोल्डस्टेन ने कहा कि कोहली और उसके विचारों में साम्य देखकर उसे वहुत प्रसन्नता हुई है ।

जाने से पहले गोल्डस्टेन ने कोहली से इस बात की पुष्टि फिर करा ली कि वह उनके नाटकों के लिए छः दिन तक नौ हज़ार दर्शक जुटा देगा ।

कोहली ने फ़ैसला किया कि इन नाटकों के लिए पर्याप्त दर्शक एकत्रित करने के लिए वह भरसक प्रयत्न करेगा । पहले की तरह धोखा

देकर एक तरफ़ हो जानेवाली वात अव नहीं चल सकती और न ही इस तरह पैसा इकट्ठा किया जा सकता है। राजनीतिक जीवन में कदम रखने के वाद अव उसे इस वात का वहुत खयाल रखना होगा कि उसे निरा ठग न समझ लिया जाए। वह जानता था कि पहले की तरह साफ़-साफ़ ठगी करने से वह राजनीतिक क्षेत्र में जल्दी ही वदनाम हो जाएगा और वहुत आगे नहीं वढ़ सकेगा।

कोहली ने हिसाव लगाया कि यदि नाटकों के लिए वह पूरी तरह तैयारी करे और उसके लिए जो ज़रूरी है, खर्च करे, तो भी उसके पास वीस हज़ार में से पाँच से दस हज़ार तक वच सकता है। उसने फ़ैसला किया कि वह इस काम को एक कारोवार समझकर ईमानदारी से करेगा ताकि असामियों को पूरी तरह सन्तुष्ट कर सके।

नाटक १६ दिसम्वर से ग्लेमर सिनेमा में शुरू होने थे और तैयारी के लिए केवल वीस दिन वाकी थे। अभिनेता-मंडली १३ दिसम्वर को दिल्ली पहुँच रही थी और गोल्डस्टेन ने भी उसी दिन या उससे एक-दो दिन पहले दिल्ली पहुँचने का वादा किया था। विज्ञापनों के लिए सामग्री और अन्य लिटरेचर गोल्डस्टेन कोहली को दे गया था और ये नाटक दिल्ली में प्रजातन्त्रात्मक संस्कृति-मण्डल के तत्त्वावधान में होने वाले थे।

पहले कोहली डॉक्टर त्रिलोचन से मिला और उसने यह जानने की कोशिश की कि पिछली वार नाटकों की असफलता का क्या कारण था और उनके काम में क्या त्रुटियाँ रह गई थीं। कोहली को मालूम हुआ कि पहले अवसर पर अखवारों में तीन विज्ञापन नाटकों से पहले और एक नाटक वाले दिन दिया गया था। कोहली को यह भी पता लगा कि सिर्फ़ 'पास' छपवाकर सवको भेज दिये गए थे और सीटें रिज़र्व नहीं की गई थीं। 'पास' भी जितनी सीटें थीं, उतने ही जारी किये गए थे, ताकि सीट न मिलने पर कोई हताश न हो।

कोहली ने फ़ैसला कि विज्ञापनों के वजाय अधिक ज़ोर वह सरकुलर पत्रों पर देगा और इन विज्ञापनों और पत्रों में मारल रिआर्मिंट का

ज़िक्र तक नहीं करेगा, ताकि दर्शक इसे घटिया चीज़ समझकर पहले ही वहाँ न आने का निश्चय न कर लें। 'पास' भेजने की बजाय टिकटें भेजी जाएँ, जिन पर सीट-नम्बर दिया गया हो। एक सीट के लिए आठ-आठ नौ-नौ टिकटें जारी की जाएँ, ताकि नौ में से एक दर्शक आ जाए। पहले दिन नौ-के-नौ हज़ार दर्शकों का आना ज़रूरी था। कोहली ने सोचा कि पहले दिन के लिए हर सीट के लिए बीस से भी अधिक टिकटें जारी करे। आठ-नौ हज़ार दर्शक तो वहाँ जमा हो ही जाएँगे।

कोहली बहुत सोचने के बाद इस निश्चय पर पहुँचा कि पहले दिन के लिए एक सीट के लिए बारह टिकटें और बाकी के दिन एक सीट के लिए आठ टिकटें जारी करे। पहले दिन की टिकटों पर 'लकी नम्बर' भी हो और हर टिकट के साथ यह सूचना दी जाए कि जिसका 'लकी नम्बर' निकलेगा उसे दिल्ली का नाट्य-विशारद घोषित करके एक तोला सोने का पदक दिया जाएगा।

विज्ञापनों में यह सूचना दी गई कि हर शो की टिकटें दिल्ली के संस्कृति-प्रेमियों को भेजी जा रही हैं और इनके अतिरिक्त कोई सज्जन नाटक देखने आने का कष्ट न करें। अब कोहली को पच्चीस हज़ार नाम और पतों की ज़रूरत थी, जहाँ टिकटें भेजी जा सकें। टेलीफोन-डायरेक्टरी में से केवल दस हज़ार नाम मिल सके। पाँच हज़ार के करीब वकीलों, डॉक्टरों आदि के नाम की सूची मिल गई। भारत सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों से दस हज़ार के लगभग नाम और मिले। पहले दिन के लिए उसने दो हज़ार टिकटें दिल्ली में विदेशी दूतावासों को भी भेजने का निश्चय किया।

पहले दिन हर सीट के लिए पन्द्रह और अन्य पाँच दिन हर सीट के लिए दस टिकटें छपवाई गईं। पहले दिन के लिए बारह हज़ार और अन्य दिनों के लिए आठ हज़ार टिकटें डाक द्वारा भेज दी गईं। नाम-पते लिखते हुए यह ध्यान रखा गया था कि एक ही नम्बर की टिकटें दिल्ली के भिन्न-भिन्न ब्लाकों में भेजी जाएँ। एम्लायमेण्ट

एक्सचेंज से कोहली ने दस क्लर्क भरती कर लिए थे जो पते इकट्ठा करने और लिखने के काम में लगे रहते। टिकटों के साथ भेजे पत्र में प्रजातन्त्रात्मक संस्कृति-मण्डल की ओर से यह लिखा गया था कि ये नाटक दिल्ली में केवल साहित्य, नाटक और संस्कृति में रुचि रखने वाले लोगों के लिए किये जा रहे हैं और आपके लिए एक शो की दो सीटें रिज़र्व की गई हैं, जिनके लिए टिकटें साथ भेजी जा रही हैं। यदि आपको अपने परिवार या किसी नाटक-प्रेमी मित्र के लिए और टिकटों की ज़रूरत है तो तुरन्त लिखिए, नहीं तो आपकी इच्छा का पालन कर सकना मुश्किल होगा। पहले दिन की टिकटों के साथ 'लकी नम्बर' और नाटच-विशारद पदक का विवरण भी था। यह विदेशी दूतावासों को भेजी गई दो हज़ार टिकटों के साथ नहीं भेजा गया था। बाद में टिकटों के लिए इतनी माँग आई कि एक भी टिकट कोहली के पास न बची।

१३ दिसम्बर को गोल्डस्टेन दिल्ली पहुँचा तो कोहली के बहुत आश्वासन देने पर भी उसको विश्वास न आया कि छः दिन तक हॉल फ़ुल रहेगा। कोहली ने बहुत समझाया कि बाहर से समाचारपत्रों के प्रतिनिधियों और फोटोग्राफ़रों को बुलवा लिया जाए और पहले दिन की भीड़ के दृश्य को फ़िल्माने का प्रबन्ध भी किया जाए। लेकिन गोल्डस्टेन की आशंका बनी रही। उसने अपनी ओर से कुछ विज्ञापन और पोस्टर निकालने चाहे, लेकिन कोहली न माना।

१६ दिसम्बर को शो से आधा घण्टा पहले ग्लैमर सिनेमा के आगे अधिक भीड़ नहीं थी। कोहली चिन्तित हो उठा था।

छः बजकर दस मिनट तक हॉल भरने के लिए पर्याप्त लोग जमा हो गए और गोल्डस्टेन के चेहरे पर चमक लौट आई। सवा छः बजे लोगों का ताँता लगा हुआ था।

साढ़े छः तक सड़क का सारा ट्रैफ़िक रुक गया था। लोगों को कार फर्लाङ्ग-भर दूर पार्क करके सिनेमा तक पैदल आना पड़ा। कोहली ने नई दिल्ली पुलिस स्टेशन को फ़ोन कर दिया। पुलिस के वहाँ पहुँचने तक

हाल के भीतर एक-एक सीट के लिए लोग गुत्थमगुत्था हो रहे थे। एण्ट्रेंस के पास लोग हॉल में घुसने के लिए एक-दूसरे के कपड़े फाड़ रहे थे। सिनेमा के पोर्च में और बाहर सड़क पर कन्धे-से-कन्धा छिल रहा था और इतना शोरोगुल था कि कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं दे रही थी।

पन्द्रह हज़ार लोगों को उसने टिकटें भेजी थीं, उनमें से आठ-दस हज़ार का वहाँ आ जाना कोहली के लिए हैरानी की बात थी। उसका अन्दाज़ा था कि केवल पाँच हज़ार लोग तो अवश्य आ जाएँगे। ट्रैफ़िक रुक जाने के कारण कुछ राह चलते लोग दस-पन्द्रह मिनट के लिए रुककर भीड़ में शामिल हो जाएँगे। इस तरह साढ़े छः के करीब वहाँ आठ-नौ हज़ार लोगों की भीड़ दिखाई देने लगेगी।

पुलिस के आने से पहले ही सिनेमा और आस-पास की इमारतों के शीशे टूटने लगे थे। जब सिनेमा के मैनेजर को मालूम हुआ कि एक-एक सीट के लिए कई-कई टिकटें लोगों के हाथ में हैं, तो कोहली ने एक से ज़्यादा टिकट जारी करने से साफ़ इनकार कर दिया और कहा कि यह सिनेमा वाले या किसी और व्यक्ति ने इन नाटकों की लोकप्रियता से लाभ उठाने के लिए किया होगा। हॉल के अन्दर और बाहर फोटोग्राफर लगातार फोटो खींच रहे थे।

पुलिस वहाँ पहुँची और कुछ सिपाहियों ने स्टेज की ओर से हॉल में जाकर फालतू दर्शकों को बाहर निकाला। सिनेमा के मैनेजर ने लाउड स्पीकर से बार-बार ऐलान किया कि हॉल में सब सीटें भरी हुई हैं। बाहर के लोगों के लिए वहाँ जगह नहीं और वे अपने घर वापस चले जाएँ। इतने पर भीड़ छँटी और साढ़े छः की बजाय पौने आठ बजे नाटक शुरू हुआ।

कोहली अपनी इस सफलता पर बहुत खुश था। गोल्डस्टेन को उससे भी अधिक प्रसन्नता हुई थी। अगले दिन हिन्दुस्तान ही नहीं, यूरोप और अमरीका के अखबारों में भी दिल्ली और हिन्दुस्तान के लोगों के में खबरें छपी थीं। 'देशभगत' और अन्य समाचारपत्रों

में सम्पादकीय लेख छपे थे, जिनमें भारत की जनता की अध्यात्मवाद में असीम आस्था का प्रमाण यह उत्साह बताया गया और सिद्ध किया गया कि इस देश में कांग्रेस सरकार की धर्म-निरपेक्षता या कम्यूनिस्टों की अधर्मता के लिए कोई स्थान नहीं।

इससे पहले अपने नाटकों के लिए गोल्डस्टेन ने कहीं भी इतना उत्साह नहीं देखा था। अमरीका तक में छोटे-से हॉल के लिए दर्शक एकत्रित करने के लिए लोगों को प्रलोभन देने पड़ते और पूरी कोशिश के बाद भी हॉल अक्सर आधा खाली रहता। दिल्ली में कोहली ने लोगों में यह उत्साह कैसे पैदा किया, यह जानने के लिए गोल्डस्टेन बहुत उत्सुक था और उसका विचार था कि अगर वह इस गुर को जान ले तो आध्यात्मिक मारेल रिआर्मामेंट आन्दोलन को सब देशों में बहुत प्रभावशाली तरीके से चलाया जा सके। कोहली ने तरीका बताने से इनकार कर दिया और यही कहा कि जहाँ भी वे इस तरह के शानदार शो करना चाहें, उसको बुला सकते हैं।

बहुत अधिक आत्मविश्वास का कोहली को एक नुकसान ज़रूर पहुँचा। शो के बाद पहली बार जब वह सुशीला से मिला तो नाम लेकर पुकारने की बजाय उसने मुँह से सीटी बजाकर उसका ध्यान अपनी तरफ़ आकर्षित किया। पति का पूरा नाम नरेश कुमार होने के कारण उसे मिसेज़ कुमार कहा जाता था। घनिष्ठता बढ़ने के बाद कोहली ने उसे सुशीलाजी या शीलाजी कहना शुरू कर दिया था और अब शो के अगले दिन कनॉट प्लेस में उसे देखकर आपसे-आप कोहली मुँह से सीटी बजाकर सुशीला को अपनी ओर बुलाने लगा। सुशीला ने उसे देख लिया था और उसका ध्यान अपनी ओर करने के लिए कोहली की सीटी बजाने की ज़रूरत नहीं थी। सुशीला सीटी बजने के बाद एक कदम कोहली की तरफ़ बढ़ी, फिर कुछ क्षण रुककर दूसरी ओर मुड़ गई। तेज़-तेज़ चलती हुई वह अपनी कार में जा बैठी और बग़ैर कोहली की तरफ़ देखे वहाँ से चली गई।

कोहली समझ नहीं सका कि उसने सुशीला को आवाज़ देकर बुलाने की बजाय सीटी मारकर क्यों बुलाया था, जैसे आदमी कुत्ते को बुलाता है। उसको थोड़ी आत्मग्लानि हुई और उसके दिल में आया कि अब वह उससे फिर मिलेगी, तो गिड़गिड़ाकर माफ़ी ही नहीं माँगेगा, बल्कि पहली बार सुशीला के उसके घर आने पर उसने जो हरकत की थी वैसी ही बेवक़ूफ़ी की कोई बात फिर करेगा। उस समय उसका दिल यह मान नहीं रहा था कि सुशीला उससे फिर कभी मिलने आएगी।

सोवियत दूतावास में सुशीला से पहली मुलाकात के बाद अगले दिन कोहली ने उसके घर फ़ोन किया। पता चला कि मेम साहब सो रही हैं। डेढ़ बजे फिर फ़ोन किया तो पता लगा कि मेम साहब लंच कर रही हैं। साढ़े तीन बजे किया तो मेम साहब दफ्तर गई हुई थीं। पूछने पर कोहली को मालूम हुआ कि पूरे सवा पाँच आती हैं और छः बजे के करीब क्लब वग़ैरह के लिए फिर बाहर चली जाती हैं। पाँच बजकर बीस मिनट पर जब कोहली ने फिर फ़ोन किया, तो रिसीवर सुशीला ने ही उठाया। कोहली ने उससे कहा कि सोवियत दूतावास की संक्षिप्त मुलाकात के बाद उस जैसी सौम्य स्त्री से मिलने की उसकी बड़ी इच्छा है। वह बहुत आभारी होगा अगर वह कनॉट प्लेस के किसी रेस्तराँ में चाय पीने की उसकी दावत को स्वीकार कर ले। सुशीला ने यह कहकर कि फ़ुरसत नहीं है, इन्कार कर दिया। कोहली अगले दिन छः बजे डेविको में चाय पीने के लिए सुशीला से विनती करता रहा। फिर यह कहकर कि उससे छः बजे मिलने के लिए तीन बजे से वहाँ बैठा इन्तज़ार करता रहेगा, उसने फ़ोन रख दिया।

अगले दिन कोहली डेवीको में तीन बजे पहुँच गया। घर में उससे बैठा नहीं जा रहा था और न ही कोई काम था। तभी उसने देखा कि दो सहेलियों के साथ सुशीला वहाँ आई और जिस तरह हॉल में उसकी तरफ़ पीठ करके बैठी रही, उससे कोहली ने अन्दाज़ा लगाया कि अन्दर आते समय उसने उसे बैठा देख लिया है और यही देखने आई है कि वह

सचमुच वहाँ तीन बजे से बैठा है या नहीं।

दो-तीन बार फ़ोन करने के बाद सुशीला ने कहा कि वह कनॉट प्लेस के किसी रेस्तराँ में उससे नहीं मिल सकती। लेकिन सिविल लाइन्स के 'सेवाय' होटल में वह पाकिस्तान से आई एक ईसाई सहेली से मिलने जा रही है, कोहली उसे वहाँ सात बजे मिल सकता है। कोहली 'सेवाय' में साढ़े पाँच बजे ही पहुँच गया। छः बजे जब सुशीला वहाँ पहुँची तो वह मौजूद था। अपनी सहेली से मिलकर वह सात बजे से कुछ पहले ही आ गई। उसकी सहेली उसके साथ थी। वह सीधी कार में जा बैठी और वहाँ से चली गई। कोहली बहुत ही परेशान हुआ।

बहुत सोच-समझकर कोहली ने यह स्कीम बनाई कि मोरीगेट के बाहर शरणार्थियों के एक जलसे में सुशीला को सभापतित्व करने के लिए शरणार्थी महिलाओं द्वारा बुलाया जाए और वहाँ से घर ले आए। उसने एक शरणार्थी महिला से फ़ोन पर उससे बात भी कराई, लेकिन सुशीला न मानी। उसी दिन कोहली ने उसे तीन बजे फ़ोन करने की सोची और उसने फ़ैसला किया कि इस बार उससे फ़िल्मी किस्म की बातचीत करेगा।

तीसहज़ारी कैम्प के पास छोटी-सी दुकान में एक शरणार्थी ने टेलिफ़ोन विभाग से पब्लिक कॉल टेलिफ़ोन लगवा लिया था। कोहली इस किस्म के फ़ोन करने वहीं जाया करता था। काग़ज़ पर बहुत-से इश्किया शेर लिखकर और फ़िल्मों में सुने हुए चुस्त वाक्य रटता हुआ वह वहाँ पहुँचा। रास्ते में सोचता रहा कि पहले कौनसा शेर फ़ोन पर कहे। टेलिफ़ोन के बूथ पर उसने दो आने की बजाय एक रुपया देते हुए कहा कि ज़रा लम्बी बात करनी है, कोई और टेलिफ़ोन करने आए तो उसे बाहर ही रोक लेना। नम्बर घुमा सुशीला को बुलाकर उसने शेर कहकर हाले-दिल सुनाना शुरू किया, तो दूसरी तरफ़ से फ़ोन बन्द कर दिया गया। कोहली सब हसरतें दिल में लिये घर लौट आया।

कोहली ने फ़ैसला किया कि उसी शाम वह सुशीला के घर जाएगा।

उसने चाँदनीचौक से दस वढ़िया-वढ़िया साड़ियाँ खरीदीं और साढ़े पाँच वजे पृथ्वीराज रोड पर सुशीला के घर जा पहुँचा। ड्राइंग-रूम में उसे विठा दिया गया और जब सुशीला वहाँ आई, तो कोहली ने शेर कहना शुरू किया, "ठोकरें खा के पहुँच गए तकदीर से हम, नेमतें मिलती हैं अब आपके दर से क्या-क्या !" दूसरा शेर पढ़ने से पहले ही सुशीला ने उसे चुप रहने का इशारा किया और कहा कि वह जल्दी में है, फ़ौरन बताए कि किस लिए आया है। कोहली ने उसे साड़ियाँ दीं और कहा कि वह केवल हुस्न के आगे सिर झुकाने आया है और साथ ही यह साड़ियाँ इसलिए लाया है कि पूछने वाले से कह दे कि कोई दिल वेचने वाला नहीं, साड़ियाँ बेचने वाला आया है। सुशीला ने साड़ियाँ जिस सोफ़े पर वह वैठा हुआ था, उस पर फेंक दीं और यह कहते हुए कि वह वहुत जल्दी में है, कमरे से बाहर निकलकर पोर्च में आ गई। यह कहते हुए कि मुझे रास्ते में टैक्सी स्टैण्ड पर छोड़ दीजिएगा, लोहली विना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए उसकी वाईं तरफ़ कार में वैठ गया।

एक-दो टैक्सी-स्टैण्डों पर सुशीला ने कार रोकने की कोशिश की और कोहली ने 'अगला स्टैण्ड' कहकर टाल दिया। याद किये हुए शेर और फ़िल्मी गीतों को वह वोलता गया और वीच-वीच में सुशीला 'शट-अप' कहती रही। शायराना अन्दाज़ से उसने उसके हुस्न के गुण गाए और वह हँसती हुई कहे जा रही थी कि तुम तो निरे गधे हो। पृथ्वीराज रोड से सुशीला ने जिस सड़क पर गाड़ी मोड़ी उससे कोहली ने अन्दाज़ा लगाया कि वह सिविल लाइन्स की ओर अपनी सहेली से मिलने जा रही है। वह रास्ते में किसी टैक्सी स्डैण्ड पर उतरने की वजाय दरियागंज या कश्मीरी गेट तक ले जाने के लिए उससे कहने लगा।

कश्मीरी गेट पर कोहली ने कार से उतरने से साफ़ इन्कार कर दिया और कहा कि उसका घर करीब है, उसे वहाँ तक तो छोड़ आए। घर के आगे भी वह उसी तरह जमकर कार में बैठा रहा और सुशीला के आगे गिड़गिड़ाने लगा कि उसके घर में वह एक मिनट के लिए ही

आ जाए। इस खयाल से कि आस-पास के लोगों का ध्यान उधर आकर्षित होगा, वह उसके साथ उसके घर में जाने को तैयार हो गई।

कुछ क्षण वे बिलकुल खामोश एक-दूसरे के सामने सोफ़ों पर बैठे रहे। एकाएक कोहली फ़र्श पर बैठ गया और कुत्ते की तरह घुटनों के बल चलता हुआ वह सुशीला के पास आकर उसकी सैंडल और पाँव चाटने लगा। वह उसे ठोकरें मारती रही और कोहली पाँव पकड़े यही रट लगाए रहा कि उसे कुछ मिनट पाँव चूमने दे। पाँव चूमता हुआ वह उसके टखनों को चूमने लगा और आहिस्ता-आहिस्ता उसकी ज़बान और होंठ टखनों से ऊपर होते गए, यहाँ तक कि सुशीला का प्रतिरोध कम होता-होता समाप्त हो गया।

उठकर जब सुशीला फिर सोफ़े पर बैठी तो उसकी गालों पर आँसुओं की मोटी-मोटी बूँदें बह रही थीं। जब उसका ब्लाउज़ भीग-कर उसकी छाती से चिपक गया तो उसे अपने बहते हुए आँसुओं का ध्यान आया। अपनी साड़ी के पल्ले से आँखें पोंछते हुए उसने बड़ी नफ़-रत से कहा, 'यू डर्टी डाग!' उसके बाद वह बिना उसकी ओर देखे चली गई।

हर बार थोड़ी-सी कोशिश के बाद सुशीला मिलने आती रही और हर बार जब वह आती उसके दिल में कोहली के लिए पहले से अधिक नफ़रत होती। कोहली के प्रति इस घृणा को उसने कभी भी शब्दों का रूप नहीं दिया था और न ही इस घृणा को प्रकट किया था। फिर भी कोहली को इसमें तनिक सन्देह नहीं था कि सुशीला के दिल में उसके लिए लेश-मात्र भी स्नेह नहीं।

कोहली को लगा कि वह उससे ही नहीं, अपने-आपसे और अपने सारे परिवार से घृणा करती है। उसके दिल में उन सब विचारों, संस्कारों और मान्यताओं के लिए घृणा है जो उसे अपने परिवार से मिली थीं। वह इतनी शिष्ट, सभ्य और सुन्दर थी कि कोहली को बच-पन में सुनी कहानी याद आ जाती, जिसमें एक देव ने शाहज़ादी को

अपने वश में कर रखा था। अपने प्रति घृणा की बात तो उसकी समझ में आती थी, लेकिन स्वयं अपने से और परिवार से इतनी घृणा करने की वजह उसकी समझ से बाहर थी। कभी-कभी वह आवेश में आकर कहती कि क्या अच्छा हो, यदि मानव-जाति का विनाश हो जाए। दुनिया मानव-जाति के बिना कहीं अधिक ख़ूबसूरत होगी। सोचो, यह सृष्टि कितनी सुन्दर हो, अगर यहाँ केवल आकाश, सागर, सरिताएँ, फूल और पक्षी ही हों।

उसके जाने के बाद कोहली को हर बार लगता कि वह फिर नहीं आएगी। लेकिन स्वयं और अपने परिवार के प्रति घृणा उसे कोहली के पास ले आती। लेकिन इस बार कनॉट प्लेस में सीटी मारकर बुलाए जाने पर वह जिस तरह कार में बैठकर चली गई थी, उससे कोहली को लग रहा था कि वह अब फिर नहीं आएगी।

सुशीला के चेहरे का कोहली को रह-रहकर खयाल आने लगा। सुशीला के अंग-अंग में तनाव और गठीलापन था और उसकी छातियाँ अंगिया हट जाने के बाद और भी उभर आती थीं। उसकी नस-नस में एक राग था जिसके आगे सब साज हेच थे। कनॉट प्लेस की चहल-पहल कोहली को अच्छी नहीं लग रही थी। सुशीला के बारे में सोचते हुए वह बहुत उदास हो गया।

उसे उस शाम प्रजातन्त्रात्मक संस्कृति-मण्डल के दफ़्तर जाना था। एक विदेशी दूतावास के कुछ लोग उससे मिलने आ रहे थे। उन नाटकों की सफलता से इन लोगों पर उसकी धाक जम गई थी और वे कोहली के हाथों में अनेक काम सौंप रहे थे। कोहली ने बहुत चाहा कि वहाँ पहुँचे; क्योंकि नियत समय में कुछ मिनट ही बाकी रह गए थे। लेकिन उससे खड़ा तक नहीं रहा जा रहा था। करीब के बॉर में जाकर वह बैठ गया और ह्विस्की के आधा दर्जन पेग अन्दर जाने के बाद उसकी हालत सुधरी।

कोहली फिर कभी सुशीला से न मिल सका। फ़ोन करता तो वह

उसकी आवाज़ पहचानकर फ़ौरन फ़ोन रख देती। एक बार वह उसके घर पहुँच गया। उसे बताया गया कि मिसेज़ कुमार घर में नहीं हैं और बहुत चाहने पर भी बैठक या बरामदे में उसे सुशीला का इन्तज़ार न करने दिया गया। शाम को क्लबों और रेस्तराँ में कोहली सुशीला की तलाश करता रहता। कोहली ने सुशीला को एक बार क्लब में देख लिया। पीछा करने पर कोहली को मालूम हुआ कि वह शाम को बिड़ला भवन गांधीजी की प्रार्थना-सभा में जाने लगी है। वह वहाँ भी जा पहुँचा। उसे वहाँ देखकर सुशीला औरतों के बीच जा बैठी।

इसके बाद से सुशीला अपनी माँ को साथ लाने लगी। कोहली बिड़ला भवन के बाहर खड़ा उसका इन्तज़ार करता रहता और उससे मिलने की तरकीबें सोचता रहता, लेकिन उसके दिमाग़ में कोई बात न आती।

तेरह

अंग्रेज़ी दैनिक 'नेशनल टाइम्स' में चीफ़ रिपोर्टर का पद मिल जाने पर सी० एम० चोपड़ा तीसहज़ारी कैम्प छोड़कर कांस्टीच्यूशन हाउस में रहने लगा। कर्ज़न रोड के उस सरकारी होस्टल के सौ कमरों की दुनिया कितनी विशाल थी, यह देखकर चोपड़ा की हैरानी की हद न रही।

यहाँ बहुत-से व्यक्ति ऐसे थे जो भारत की पहली लोकसभा का सदस्य बनने की तैयारी कर रहे थे। कुछ ऐसे भी थे जो देर-सवेर भारत का प्रधान मन्त्री बनने का स्वप्न देख रहे थे। कुछ लोग विदेशी दूतावासों को भारत सरकार की हर जानकारी देने का दावा करते थे। कुछ ऐसे भी थे जो यह कहते थे कि सरकार के प्रत्येक मन्त्रालय और विभाग में हर किस्म का काम वे करा सकते हैं। अनेक व्यक्ति कोटा-पर्मिट पास करवाकर हर महीने हज़ारों रुपए लाभ कमाते थे और ऐसे भी लोग थे जो कारखानेदारों और व्यापारियों की मन्त्रियों और संविधानसभा के प्रमुख सदस्यों से मेल-मुलाकात कराकर अपनी जीविका जुटाते थे। चोपड़ा को यहाँ ऐसे व्यक्ति भी मिले जो एक दूतावास के समाचार दूसरे दूतावास को देते थे और विदेशी संस्थाओं को तरह-तरह का सहयोग या विभिन्न क्षेत्रों के भारतीयों का विवरण आदि देकर आराम से ज़िन्दगी

गुज़ार रहे थे। चोपड़ा को यहाँ हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा दार्शनिक, कवि, उपन्यासकार या कलाकार होने के दावेदार भी मिले।

कोहली को टेलीफ़ोन की ज़रूरत थी। लेकिन नये टेलीफ़ोन कनेक्शन बारी के हिसाब से बरसों में मिलते थे। कोहली को टेलीफ़ोन की तुरन्त आवश्यकता थी। जब कोहली ने इसका ज़िक्र चोपड़ा से किया तो चोपड़ा को कांस्टीट्यूशन हाउस में रहने वाले उस व्यक्ति का खयाल आया जो कुछ सौ रुपये लेकर टेलीफ़ोन कनेक्शन फ़ौरन दिला देने का दावा करता है। कोहली की उस व्यक्ति से भेंट हुई। उसने कहा कि वह 'कोहली एण्ड को० प्रोविज़न सप्लायर्स' के नाम से बढ़िया लेटरपैड छपवा ले और उस पर एक दूतावास के नाम ख़त लिखे कि उसकी फ़र्म ने उन्हें खाने-पीने की समस्त सामग्री और देशी-विदेशी शराब देने का ठेका ले रखा है, लेकिन टेलीफ़ोन न होने के कारण यथासमय सेवा करने में बहुत कठिनाई हो रही है। बड़ी कृपा होगी यदि वे दिल्ली टेलीफ़ोन विभाग से टेलीफ़ोन कनेक्शन दिलाने के लिए प्रयत्न करें, ताकि वह उनकी अच्छी तरह से सेवा कर सके। उस व्यक्ति ने कोहली को बताया कि उसकी फ़ीस साढ़े सात सौ रुपये है। पाँच सौ उस दूतावास के एक अधिकारी के लिए, पचास टेलीफ़ोन विभाग के एक क्लर्क के लिए और दो सौ उसका अपना कमीशन।

कोहली ने वही किया जो उसे बताया गया था। कुछ दिनों में ही उसके मोरी गेट के मकान पर टेलीफ़ोन लग गया।

प्रजातन्त्रात्मक संस्कृति-मंडल के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हैरन सान्याल ने कोहली का परिचय अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संरक्षण-सभा की भारतीय शाखा की डाइरेक्टर मिस भावना श्रीकन्त और डैमोक्रैटिक मार्क्सिस्ट एसोसिएशन के सैक्रेटरी कामरेड ए० एस० ब्राइट से करा दिया। यह जानने में कोहली को समय न लगा कि इन दोनों संस्थाओं में भी पहली संस्था की भाँति एक-दो से अधिक सदस्य नहीं और इनके पास भी रुपये-पैसे की कोई कमी नहीं। स्वतन्त्रता संरक्षण सभा की डाइरेक्टर

चाहती थी कि कोई अच्छा-सा ज्योतिषी ढूंढ़ा जाए जो उसके द्वारा आयोजित एक विशेष प्रेस कांन्फ्रेंस में यह कह दे कि तीसरा महायुद्ध मई १९४८ में रूस की ओर से शुरू किया जाएगा और सितम्बर १९४८ में अमेरिका की जीत और कम्यूनिज्म की पराजय के साथ समाप्त हो जाएगा। इसके अतिरिक्त वह ज्योतिषी कुछ और बातें कहने के लिए तैयार हो तो कोहली और उस ज्योतिषी को काफ़ी रकम दी जा सकेगी।

डैमोक्रेटिक मार्क्सिस्ट एसोसिएशन भी कोहली को एक काम सौंपना चाहती थी और इसके लिए एक भारी रकम देने को वे तैयार थे। चैकोस्लोवाकिया दूतावास का एक उच्च अधिकारी, जो चैक भाषा का प्रसिद्ध कवि भी था, भारतीय संस्कृति पर अपनी मातृ भाषा में पुस्तक लिखने के लिए विभिन्न स्थानों की यात्रा कर रहा था। जहाँ जाता वहाँ लोगों से खुलकर मिलता। वह अन्य अधिकारियों की तरह मिलने से कतराता नहीं था। इस अधिकारी को वरगलाने और उसे झाँसा देने के बहुत प्रयत्न किये गए। लेकिन उसने दूतावास और भारत छोड़ने से साफ़ इन्कार कर दिया था। डैमोक्रेटिक मार्क्सिस्ट एसोसिएशन के सैक्रेटरी के पास उस चैक-अधिकारी का एक खत था, जिसमें लिखा हुआ था कि वह अपनी मर्ज़ी से आत्महत्या कर रहा है, क्योंकि वह अपने देश वापस जाकर साम्यवाद के स्वतन्त्रताविहीन नर्क में रहने से बेहतर मृत्यु को समझता है। उस पत्र में चैकोस्लोवाकिया की कम्यूनिस्ट सरकार के विरुद्ध बहुत-कुछ कहा गया था। डैमोक्रटिक मार्क्सिस्ट एसोसिएशन का सैक्रेटरी यह चाहता था कि कोहली उस चैक-अधिकारी से जान-पहचान कर ले और मौका मिलने पर किसी उँची इमारत से उसे गिरा दे, या किसी और तरह उसका काम तमाम कर दे और साथ ही उसका अपने हाथों लिखा खत उसकी जेब में डाल दे।

कोहली यह दोनों काम करने के लिए तैयार हो गया। लेकिन साथ ही उसने यह भी कह दिया कि इतने कम पैसे पर वह यह काम करने के लिए तैयार नहीं। कोहली जानता था कि ये एक-एक सदस्य की

संस्थाएँ बड़े-बड़े दफ्तर बनाए बैठी हैं और पैसा पानी की तरह बहा रही हैं। किसी को वे नेहरू सरकार विरोधी-पत्र निकालने के लिए धन दे रही हैं तो किसी को समाजवाद-विरोधी पुस्तकें लिखने या प्रकाशन के लिए मदद दे रही हैं। भारत के बुद्धिजीवियों में 'स्वतन्त्रता-प्रेम' बढ़ाने के लिए किसी की जेब भरी जा रही है तो कोई इस बात के लिए ऐश कर रहा है कि वह एशिया में विभिन्न देशों में कम्यूनिस्ट-विरोधी सांस्कृतिक मोर्चा तैयार कर रहा है। कोई इस कारण अपने हाथ रंग रहा है कि कुछ राजनीतिज्ञों से उसकी मैत्री है। कोहली पर यह स्पष्ट था कि इन संस्थाओं के पास पैसे की कोई कमी नहीं और न ही वे सोच-समझकर खर्च करती हैं। उसने यह भी सोच लिया था कि इन दोनों कार्यों के लिए डॉक्टर त्रिलोचन और कुछ और व्यक्तियों से पहले बातचीत की जा चुकी है और उन्होंने यह काम करने से इन्कार कर दिया है। वह यह जानता था कि ऐसी संस्थाएँ और भी हैं और उनसे भी इसी किस्म के काम उसे मिलते रहेंगे। अगर उसने शुरू में ऐसे कामों के लिए कम रकम ली तो बाद में अच्छी रकम वसूल करना मुश्किल हो जाएगा। कोहली ने उनसे साफ़-साफ़ कह दिया कि उसने इन कार्यों को सफलतापूर्वक पूरा करने के ढंग सोच लिए हैं। इस विषय में वे अब अक्सर उससे पूछताछ करते रहते थे।

कोहली अब अक्सर कांस्टीट्यूशन हाउस आने लगा था। कमरों के बाहर बरामदे में चहलकदमी करते हुए कोहली ने कई बार देखा कि उससे भी हीन बुद्धि के लोगों की बड़ी-बड़ी महत्त्वाकांक्षाएँ हैं। कोहली को उन पर हँसी आती। लेकिन बाद में कोहली को वैसे ही हीन बुद्धि के कुछ ऐसे लोग मिले जो इस प्रकार की महत्त्वाकांक्षाओं में सफल हो गए थे। ऐसी ही महत्त्वाकांक्षाएँ उसके दिल में भी सजग हो उठीं। वह भी आनेवाले आम चुनाव में दिल्ली के किसी क्षेत्र से इलेक्शन लड़ने की सोचने लगा। वहाँ भिन्न-भिन्न लोगों से बातचीत करके उसको यह यकीन होता जा रहा था कि चुनाव में जीतने के लिए लोकप्रियता

ज़रूरी नहीं और विशेष योग्यता की तो बिलकुल ही ज़रूरत नहीं। निर्वाचन लड़ने के लिए पैसा चाहिए और जीतने के लिए उसी तरह के गुर, जैसे उसने उन ड्रामों को सफल बनाने के लिए इस्तेमाल किये थे।

चोपड़ा के सामने वाले कमरे में पण्डित रामलोचन रहते थे। एक बार केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली के स्वतन्त्र सदस्य रह चुके थे और कांग्रेस के उम्मीदवार ने १९४६ में उन्हें हराया था। हारने का कारण पण्डित रामलोचन के अनुसार लोकप्रियता का कम हो जाना नहीं था। वे तो इस कारण हारे थे कि उनका प्रतिपक्षी कहीं अधिक चालाक और मक्कार था। निर्वाचन-क्षेत्र में बीस प्रतिशत मत ठाकुरों के थे। इनमें से आधे से अधिक मत पण्डितजी ने ठाकुरों की पंचायत से मिलकर पक्के कर लिए थे। ठाकुरों के एक गाँव में प्रतिवोट पाँच-पाँच रुपये देने का निश्चय हुआ था। उनके प्रतिपक्षी ने दस-दस रुपये प्रति वोट का झाँसा दिया और इस तरह उसके एक हज़ार सात सौ वोट तोड़ लिए। लेकिन निर्वाचन के दिन वह उन्हें बसों में बिठाकर मतदान-केन्द्र पर ले जाने के बजाय इतना दूर छोड़ आया कि वे शाम तक लौटकर वोट न दे पाएँ। इस तरह ये वोट पं० रामलोचन को न मिले और उसके प्रतिपक्षी ने अपना रुपया भी बचा लिया।

पण्डित रामलोचन अब दिल्ली से निर्वाचन लड़ने के बारे में सोच रहे थे। वह नई दिल्ली में किसी कमरे की तलाश में थे जहाँ अपना दफ्तर बना सकें। कोहली के पास नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली दोनों जगह दफ्तर के लिए स्थान था। गोल मार्केट वाले कमरे में मुसलमानों के घरों से उड़ाया हुआ इतना सामान भरा पड़ा था कि निर्वाचन पर ख़र्च करने के लिए आठ-दस हज़ार रुपया उसे बेचने से मिल ही सकता था। पण्डित रामलोचन यू० पी० के अंग्रेज़ गवर्नर के मित्र थे। उन्हें एक हिन्दी दैनिक 'जन स्वतन्त्रता' के लिए अख़बारी कागज़ का कोटा मिला हुआ था। उस दैनिक समाचारपत्र की नीति युद्ध के लिए लोगों में उत्साह पैदा करना और राष्ट्रीय आंदोलन का विरोध करना था। सरकारी प्रभाव

से विज्ञापन भी पर्याप्त मात्रा में मिल जाते थे। अखबारी कागज़ कंट्रोल रेट पर नौ आने सेर के हिसाब से मिलता था, लेकिन छप जाने के बाद रद्दी के तौर पर रुपए-सवा रुपए सेर बिकता था। पं० रामलोचन उस दैनिक समाचारपत्र की दो सौ प्रतियाँ विज्ञापनदाताओं और सरकारी विभागों को भेजकर बाकी सारे-का-सारा कागज़ रद्दी के थोक व्यापारियों को रोज़-का-रोज़ उठवा देते थे। इस तरह सरकार भी खुश थी कि पं० रामलोचन अपने अखबार में राष्ट्रवादियों को खरी-खरी सुनाते हैं। युद्ध-काल के चार वर्षों में जब रद्दी का भाव कोरे अखबारी कागज़ से दो गुना रहा था तो रामलोचन ने लाखों रुपये रद्दी बेचकर कमा लिए थे। कोहली को इस तुलना में अपना परमिट दिलाने के बहाने कुछ हज़ार रुपया ठग लेना और फिर हफ्तों छिपे रहना बहुत छोटी-सी बात लगी और उसे अपने-आप पर शर्म आई।

रद्दी का भाव अब कोरे कागज़ की कीमत से कम था। लेकिन पं० रामलोचन अपना समाचारपत्र बेचने के लिए नहीं छापते थे। उनकी वर्तमान आय तीन हज़ार प्रतिमास थी। 'जन स्वतन्त्रता' को उसने साप्ताहिक पत्र के रूप में प्रकाशित करना शुरू कर दिया था। बड़ी-बड़ी कम्पनियों के विज्ञापन अब भी पूर्ववत् दैनिक के हिसाब से मिल रहे थे। वह इसकी भी दो सौ प्रतियाँ छापता था और विज्ञापन पहले की तरह पन्द्रह हज़ार विक्रीत प्रतियों के रेट पर मिल रहे थे। इसमें औसतन सोलह सौ रुपये के विज्ञापन होते थे और दो सौ प्रतियाँ छपवाने पर केवल सात-आठ सौ रुपये खर्च आता था। इस तरह विज्ञापनों से प्राप्त आधी से अधिक रकम पं० रामलोचन को बच जाती थी। सरकारी दफ्तरों और विदेशी दूतावासों से प्रचार-सम्बन्धी जो लेख मुफ्त प्राप्त होते थे उनको छाप दिया जाता था। ज़रूरत पड़ने पर अंग्रेज़ी समाचारपत्रों से काट-छाँटकर कुछ अनुवाद कर लिया जाता या उर्दू की कहानियों को देवनागरी में लिखकर छाप दिया जाता था। इस प्रकार सम्पादन पर भी कोई व्यय नहीं करना पड़ता था।

पण्डित रामलोचन को मामूली-सी अंग्रेज़ी आती थी। लेकिन रूस-यात्रा पर अंग्रेज़ी में उनके नाम से एक किताब छपी थी। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-सम्मेलन से लौटते हुए वह एक बार कुछ दिनों के लिए सोवियत यूनियन में रहे थे। वापस आने पर एक व्यक्ति उनसे मिला और सोवियत यूनियन पर एक किताब लिखने का परामर्श देने लगा। कुछ हज़ार रुपया उन्हें पेशगी भी दे गया। थोड़े दिन बाद यह कहकर वह एक मसौदा भी दे गया कि शायद इससे किताब लिखने में उन्हें मदद मिल जाएगी। वही मसौदा बाद में अक्षरशः पं० रामलोचन के नाम से छप गया और उस रूस-विरोधी किताब की पचास हज़ार प्रतियों के लिए उन्हें पेशगी रायल्टी मिल गई।

पण्डित रामलोचन बात-बात में यह शिकायत करते रहते थे कि लोगों को परमात्मा का डर नहीं रहा और धर्म तथा सद्भावना दुनिया से मिटती जा रही है। चोपड़ा और कोहली पहले यह समझते रहे थे कि इस शिकायत का कारण भोजन के बारे में उनकी तकलीफ़ है। वे ऐसी श्रेणी के ब्राह्मण थे जिनके संस्कारों के अनुसार बकरे का गोश्त तो खाया जा सकता था, लेकिन अण्डे और मुरगी का मांस वर्जित थे। कांस्टीट्यूशन हाउस की रसोई में किसी तरह का परहेज़ नहीं था। इसलिए बकरे के गोश्त का बहुत शौकीन होने पर भी वह वहाँ कुछ नहीं खा सकता था। कोहली और चोपड़ा को बाद में यह पता लगा कि पं० रामलोचन की इस शिकायत की वजह कोई और ही थी। सामने के महिला होस्टल की कई लड़कियों से उनका परिचय था। वह उनसे अक्सर अपने कमरे में आने के लिए कहते रहते। लड़कियाँ उनके दिए तोहफे तो रख लेतीं, लेकिन कमरे में न आतीं। इसी कारण पं० रामलोचन दुनिया से धर्म और सद्भावना के मिट जाने का रोना रोते रहते और कहते रहते कि लोग परमात्मा तक से नहीं डरते।

सालिगराम और भगवती के शरणार्थी विधवाओं के नाम पर चन्दा लेना बन्द करने के बाद चोपड़ा को भी उनसे पच्चीस रुपये

मिलने वन्द हो गए थे। दरअसल चोपड़ा को शुरू-शुरू में अंग्रेज़ी दैनिक में आने से कुछ लाभ नहीं हुआ था। 'नेशनल टाइम्स' में नौकरी करने के वाद चोपड़ा का खर्च वढ़ गया था। लेकिन श्रीमती भगवतीदेवी से ही नहीं और भी जगहों से जो छोटी-छोटी रकमें उर्दू दैनिक में काम करने की वजह से उसे मिलने लगी थीं, वन्द हो गई थीं। आय वढ़ाने का कोई तरीका तलाश करना चोपड़ा के लिए ज़रूरी हो गया था। उसे पता था कि यदि पश्चिमी राष्ट्रों के दूतावास से सीधे तौर पर नहीं तो अनेक कम्यूनिस्ट-विरोधी संस्थाओं द्वारा पत्रकारों को उनके पद के अनुसार रुपया मिलता रहता है। इस तरह गुप्त रूप में पत्रकारों को मिले पैसे का समाचारपत्रों की नीति पर जो प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता था, वह चोपड़ा को अंग्रेज़ी दैनिक में काम करने के वाद और भी साफ नज़र आने लगा। विदेशी खवरों का साम्राज्यवादी रंग में रँगना तो आम वात हो गई थी। पश्चिमी जर्मनी में उन दिनों चुनाव हो चुके थे। एक फ्रांसीसी समाचार एजेंसी की यह खवर किसी दैनिक ने प्रकाशित न की कि अमरीकी सरकार ने क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक पार्टी को जिताने के लिए तीस करोड़ डालर खर्च किए हैं। वहुत वड़े पैमाने पर झूठे वोट डाले गए हैं। सच्ची खवर का छापना तो दूर रहा, ऐसे लेख अखबारों में छपे, जिनमें यह कहा गया कि क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक पार्टी की जीत से पश्चिमी यूरोप में प्रजातन्त्र की वहुत महत्त्वपूर्ण जीत हुई है। अंग्रेज़ी समाचारपत्रों में सम्पादकीय टिप्पणियाँ प्रायः अमरीकी अखवारों और दूतावास से प्राप्त लिटरेचर पर आधारित होती थीं।

पत्रकारों को प्राप्त इस गुप्त पैसे से भारत-सम्बन्धी समाचारों पर भी प्रभाव पड़ता था। एक राज्य में नगरपालिकाओं के निर्वाचन हो रहे थे। कांग्रेस-विरोधी दलों को बहुधा उछाला जा रहा था। निर्वाचन के परिणाम आने पर प्रतिक्रियावादियों की हार हुई। समाचारपत्रों में इस समाचार को यह रंग देकर छापा गया कि जीत का कारण मतपत्रों की पेटियों की अदला-बदली है। जिन क्षेत्रों से कांग्रेसी उम्मीदवार हारे,

वहाँ जनता को कांग्रेस के विरुद्ध वताया गया। उन्हीं दिनों भारत की स्वास्थ्य-मन्त्री राजकुमारी अमृतकौर मास्को गई थीं। वहाँ से प्रेस कान्फ्रेंस की खवर आई। दिल्ली के सब दैनिकों ने केवल दो पंक्तियों में यह खवर दी कि राजकुमारी अमृतकौर ने मास्को में प्रेस कांफ्रेंस में भाषण दिया। यह किसी ने भी प्रकाशित नहीं किया कि उन्होंने क्या कहा। 'नेशनल टाइम्स' के रात की ड्यूटी पर लगे सहायक सम्पादक ने उस भाषण के कुछ अंश छपने के लिए भेज दिए थे, लेकिन सम्पादक का फोन आने पर वे अंश भी काट दिये गए।

चोपड़ा इस समय तक यह जान गया था कि भारत में ही नहीं, विदेशों में भी संवाददाताओं को समाचारपत्रों की इच्छानुसार समाचार गढ़ने पड़ते हैं। कश्मीर पर पाकिस्तान के आक्रमण के वाद एक अमरीकन दैनिक समाचारपत्र के संवाददाता ने कश्मीर में आँखों-देखा हाल अपने पत्र को भेजा। समुद्री तार आया कि उस खवर को न छापा जाए और उसके विपरीत पाकिस्तान के पक्ष में लिखकर खवर भेजें। इससे पहले भी एक तार आया था कि दिल्ली में ऐसे जलूस की उन्हें फोटो चाहिए जिसमें नेहरू के चित्र को उलटा लटकाया हुआ हो और जलूस के कट्टर-पंथी हिन्दू उपद्रव मचा रहे हों। उस विदेशी संवाददाता ने ऐसा फोटो वनवाने में चोपड़ा की सहायता ली थी।

'देशभगत' की तरह 'नेशनल टाइम्स' में भी नेहरू सरकार-विरोधी समाचारों को वहुत महत्त्व दिया जाता था। एक वार दिल्ली में करोल वाग के समीप पहाड़ी इलाके में एक गुफा में पुलिस को वहुत-से खाली ट्रंक आदि मिले। अनुमान था कि चोरों का दल उस स्थान को चोरी का सामान रखने और वाँटने के लिए प्रयोग में लाता रहा है। जिस दिन यह खवर आई, उसी दिन प्रधान मंत्री नेहरू ने दामोदर घाटी की वहुत विशाल पनविजली और सिंचाई की योजना का शिलान्यास किया था। सब अखवारों ने प्रधान मंत्री के भाषण और राष्ट्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उस योजना के शिलान्यास की खवर को अन्दर के पृष्ठों पर एक मामूली

खबर की तरह छापा और पहले पृष्ठ पर सबसे अधिक स्थान करोलबाग की चोरों की गुफा को मिला था। चोपड़ा को विशेष तौर पर वहाँ भेजा गया था और यह आदेश दिया गया था कि समाचार को विस्तार से तैयार करे। चोपड़ा ने इस समाचार को खूब चटपटे ढंग से लिखा था और अन्य पत्रों की तुलना में 'नेशनल टाइम्स' में यह खबर सबसे अधिक विस्तार से छपी थी। चोपड़ा ने जोड़ दिया था कि जानकार क्षेत्रों का ख़याल है कि यह स्थान कम्यूनिस्ट अण्डरग्राउण्ड के तौर पर इस्तेमाल हो रहा हो। इस तरह की खबर तैयार करने पर चोपड़ा की बहुत तारीफ की गई।

करोलबाग की गुफा के समाचार से चोपड़ा दिल्ली के पत्रकारों की निगाह में चढ़ गया था। इसी प्रकार की एक और खबर उसने उन्हीं दिनों और दी, जिसकी बहुत चर्चा हुई। चोपड़ा की तनख्वाह सौ रुपये प्रतिमास बढ़ा दी गई और ऐसी संस्थाओं से उसका सम्पर्क बढ़ने लगा, जिनसे उसे बाकायदा कुछ-न-कुछ पैसा मिलने की आशा हो सकती थी।

बद्रीनाथ से लौटते हुए कुछ यात्रियों की मृत्यु की एक खबर समाचारपत्रों में छपी। उसी दिन कुछ चीनी कम्यूनिस्ट प्रतिनिधियों के दिल्ली आने की खबर भी छपी थी। इन दो समाचारों से चोपड़ा को एक नई खबर सूझी। उसने शीर्षक जमाया—'चीनी कम्यूनिस्टों का बद्रीनाथ पर दावा।' समाचार में उसने लिखा कि दिल्ली में चीनी कम्यूनिस्टों के जो प्रतिनिधि आये हुए हैं, विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि चीनी कम्यूनिस्ट सरकार तिब्बत ही नहीं, बद्रीनाथ पर भी अपना दावा कर रही है। इस दावे के अनुसार बद्रीनाथ पर तिब्बती बौद्धों का विहार हुआ करता था और यह तिब्बती इलाका होने के कारण चीन में शामिल होना चाहिए। यह समाचार 'नेशनल टाइम्स' का हवाला देकर हिन्दुस्तान के लगभग सब अखबारों में अगले दिन छपा और कई विदेशी समाचार एजेंसियों ने बाहर के अखबारों में भी भेजा।

इस समाचार के छपने के कुछ दिन बाद डेमोक्रेटिक मार्क्सिस्ट

एसोसिएशन के कामरेड ए० एस० ब्राइट उससे मिलने आए। चोपड़ा को बातचीत के दौरान पता चला है कि इन सज्जन का नाम सरदार अमरसिंह चानना है। चानना पंजाबी क्षत्रियों की एक उपजाति है और इस पंजाबी शब्द चानना का अंग्रेज़ी में अनुवाद 'ब्राइट' करके सरदार अमरसिंह चानना ए० एस० ब्राइट बन बैठा है। बड़ी-बड़ी मूँछें, खुली-घनी दाढ़ी और बिखरे-लटकते बालों से वह अपना हुलिया कार्ल मार्क्स-जैसा बनाने की कोशिश में था। कामरेड ब्राइट ने चोपड़ा को जार्ज ओर्वेल का एक अंग्रेज़ी का उपन्यास दिया और उसे कहा कि अगर वह इसका उर्दू में अनुवाद कर सके तो पाँच रुपये प्रति पृष्ठ के हिसाब से एक हज़ार से ज़्यादा रुपए मिल जाएँगे। कामरेड ब्राइट ने चोपड़ा को कुछ और अंग्रेज़ी किताबें भी दीं और कहा कि पहली पुस्तक के बाद इन किताबों का भी उर्दू में अनुवाद उसे करना होगा। उसने तीन सौ रुपये पेशगी भी दे दिए। बाद में चोपड़ा को पता लगा कि यह उसकी मुट्ठी गरम करने का एक तरीका है। अनेक पत्रकारों को इसी प्रकार की किताबें अपनी-अपनी भाषाओं में अनुवाद करने के लिए उससे पहले भी दी जा चुकी हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संरक्षण सभा की डाइरेक्टर मिस भावना श्रीकन्त ने भी उसे चाय पर कई बार बुलाया और हर बार उसे कीमती विदेशी पत्र और किताबें मुफ्त दीं। उस छोटे-से दफ्तर में ज़रूरत से अधिक सामान भरा पड़ा था। एक टाइपिस्ट था और आधे दर्जन से अधिक टाइपराइटर और ढेरों स्टेशनरी थी। एक पत्रकार मित्र ने चोपड़ा को सुझाया कि माँगने पर अगर मिस श्रीकन्त किसी को पोर्टेबल टाइपराइटर दे दे तो वापस करने की ज़रूरत नहीं होती।

इन संस्थाओं के समाजवाद-विरोधी और पूँजीवाद-समर्थक होने की बात तो चोपड़ा की समझ में आती थी, लेकिन इनका नेहरू सरकार-विरोधी और भारतीय प्रतिक्रियावादी तत्त्वों को बढ़ावा देने का रवैया चोपड़ा समझ न सका। कान्स्टीच्यूशन हाउस में एक अफ़वाह थी कि

शीघ्र ही नेहरू सरकार के स्थान पर ऐसी सरकार स्थापित हो जाएगी जो धर्म-निरपेक्षता की नीति के बजाय हिन्दू संघटन की नीति अपनाएगी और शांति और तटस्थता की नीति छोड़कर भारत को अमरीकी गुट में शामिल कर देगी। इस राह में उन प्रतिक्रियावादियों को सबसे बड़ा रोड़ा महात्मा गांधी नजर आ रहे थे और वे सरेआम गांधीजी की हत्या की बात कर रहे थे। इस किस्म के विचारों के शरणार्थियों में फैलने की बात चोपड़ा की समझ में आ सकती थी। लेकिन वहाँ गांधीजी को मार देने की बात इस तरह नहीं होती थी जैसी कि कांस्टीच्यूशन हाउस और इस प्रकार के अन्य स्थानों पर सुनाई देती थी। हर दूसरा आदमी यह मत प्रकट करता कि गांधीजी को मार दिया जाना चाहिए।

पण्डित रामलोचन दिन-रात महात्मा गांधीजी को बुरा-भला कहते थे। फिर पं० रामलोचन ने वह कमरा छोड़ दिया और उसमें टेकचन्द दत्त आकर रहने लगा। वह महात्मा गांधी के बारे में रामलोचन से भी ज़्यादा अशिष्ट भाषा बरतता था। टेकचन्द दत्त का धन कमाने का तरीका रामलोचन से भी अधिक गन्दा था। एक फ़र्ज़ी नाम से हिन्दुस्तानी भाषाओं, विशेषकर उर्दू के पत्रों में एक विज्ञापन 'इसके पढ़ने से सबका भला होगा' शीर्षक से छपता था। उसमें किसी संन्यासी की बताई हुई दवा का प्रचार होता था। उसमें ऐलान किया जाता था कि इसे खाने से स्त्रियों के शर्तिया लड़का पैदा होगा। एक पुड़िया की कीमत दस रुपये थी। उम्मीद पूरी न होने पर दवाई की कीमत वापस करने का हवाला भी दिया जाता था। आधी स्त्रियों के लड़का हो ही जाता, बाकी अपनी कीमत वापस लेने के लिए उसे खत लिखते, लेकिन ठीक पता न दिए जाने के कारण उस तक न पहुँचते।

टेकचन्द दत्त का वहाँ आकर रहने का खास उद्देश्य था। वह एक जीवन बीमा कम्पनी खोल रहा था। डायरेक्टरों के बोर्ड के नाममात्र प्रधान के लिए किसी प्रतिष्ठित नेता की वह तलाश में था। उसका विचार था कि बीमा कम्पनी आसानी से दस-बीस लाख रुपये सालाना

प्रीमियम जमा कर सकती है और कम्पनी का मैनेजिंग डाइरेक्टर बन-कर वह इसका आधा हिस्सा किसी-न-किसी खर्च के बहाने मार सकता है।

टेकचन्द दत्त पाकिस्तान या श्री जिन्हा के विरुद्ध नहीं था। जिन्हा की वह हर समय तारीफ करता रहता था। महिलाओं के सियालकोट में मुसलमानों द्वारा अपहरण पर उसने जिन्हा को खत भी लिखा था कि पंजाब के दत्त ब्राह्मण यूनानी नस्ल से हैं और सिकन्दर के साथ भारत आए थे। वे आर्य नहीं हैं और मुसलमानों से उनकी बहुत-सी परम्पराएँ मिलती हैं। इसलिए दत्त अपहृत महिलाओं को लौटा दिया जाए और उनसे अन्य हिन्दू महिलाओं जैसा व्यवहार न किया जाए। जिन्हा ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया था, लेकिन इसके लिए वह गांधीजी को गालियाँ देता रहता था। हर समय वह बड़ी उत्तेजनापूर्ण बातें कह-कर लोगों को गांधीजी के विरुद्ध उकसाता रहता।

अमरीकन दूतावास को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की बैठकों की खबरें देनेवाला एक व्यक्ति कांस्टीच्यूशन हाउस छोड़कर चला गया था, क्योंकि उसकी असलियत का पता चल गया था। लेकिन उसकी जगह जो फ़ैशनेबल आदमी आया था, वह और भी अधिक जोश से नेहरू सरकार का तख्ता उलटना चाह रहा था और उसका रुपया बटोरने का तरीका भी बहुत अनोखा था। नेहरू सरकार की आन्तरिक और विदेश-नीति के विरुद्ध लेख या समाचारपत्रों को पत्र लिखने वाला कोई व्यक्ति वहाँ से चला जाता, तो उसकी जगह दूसरा आ जाता। मन्त्रियों या संविधान सभा के प्रमुख सदस्यों को व्यापारियों और अन्य परिचयाभिलाषियों की ओर से डिनर पार्टियों पर आमन्त्रित करने वाला अपना कमीशन लेकर हर बार कमरा बदल लेता। कभी किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था या विदेशी दूतावास से सम्बन्धित किसी व्यक्ति पर शक होता कि वह पत्रकारों, लेखकों और अन्य बुद्धिजीवियों को नेहरू सरकार के विरोध के लिए खरीद रहा है। कभी किसी भारतीय नरेश के प्रतिनिधि के बारे में बात

फैल जाती कि वह राजनीतिक व्यक्तियों को डिनर पार्टियों पर बुलाकर नेहरू सरकार के विरुद्ध वरगला रहा है।

कोहली को यहाँ इस बात का पता चला कि विभाजन द्वारा हिन्दुस्तान और पाकिस्तान ही नहीं बने, वल्कि रजवाड़ा-स्थान भी अस्तित्व में आ गया है और वहाँ के सब नरेश अब स्वतन्त्र हैं और मनमानी कर सकते हैं। कोहली को पहली बार यह अनुभव हुआ कि बिना श्रम किए ऐश उड़ाने पर भी कैसे अपनी नैतिक श्रेष्ठता और विशेष योग्यता का भ्रम पैदा किया जा सकता है।

यह सब देखकर कोहली सोचता कि सत्य कितना अस्थायी होता है। उसमें किस तरह रुपये की झंकार और शराब की बू हो सकती है। स्त्री के चेहरे की तरह सौन्दर्यवर्धक सामग्री से सत्य के चेहरे की सजधज और लावण्य को बढ़ाया जा सकता है। सचाई भी वेश्या की तरह है, जो हर नये आदमी के पास सुहागिन बनकर जाती है। सच का रंग कभी काला होता है और कभी गोरा। कभी सच धोती-कुर्ता पहने होता है और कभी पतलून-कोट-टाई।

इंसान के सामने एक सचाई को झूठा सिद्ध करके दूसरी सचाई की तरफ़ किस आसानी से उसे प्रेरित किया जा सकता है। जो लोग कल तक गांधी-भक्त थे, वे आज गांधीजी को मार दिया जाना ज़रूरी समझ रहे थे और जो कल 'नेहरू की जय' के नारे लगाते नहीं थकते थे, वे नेहरू सरकार का तख्ता उलटने के लिए उतावले हो रहे थे।

ऐसा क्यों है, कोहली सोचता। क्या इतनी कठिनाइयों के बाद प्राप्त हुई इस स्वतन्त्रता की हमें ज़रूरत नहीं? क्या हमें इस आज़ादी के स्थान पर किसी ऐसी आज़ादी की ज़रूरत है, जिसमें हर तरह की मनमानी की जा सके? कोहली को लगता जैसे हम सदा से ही स्वतन्त्र रहे हैं।

कभी-कभी कोहली को लगता कि सचाई ऐसी वस्तु नहीं, जो बाहर से बनी-बनाई मिले। जीवन-संघर्ष में से ही सचाई उभरती है, जीवन की

कसौटी पर ही इसे परखा जाता है ।

कोहली अपने अतीत पर निगाह डालता, तो उसे लगता कि जो कुछ वह करता रहा है, उसने कभी भी उसे सचाई नहीं माना । उसे झूठ जानते हुए भी करता रहा है और आत्म-ग्लानि अनुभव न करने पर भी वह उन कामों को बुरा मानता रहा है । इन कामों के बुरे होने के बारे में उसके दिल में कभी शक नहीं हुआ । लेकिन ये लोग हर मूल्य और हर सचाई को झुठला रहे हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संरक्षण सभा और जनतन्त्रात्मक मार्क्सवादी सभा दोनों ने कोहली की शर्तें मान लीं और यह काम शीघ्रातिशीघ्र करने के लिए उससे कहने लगे । चैक दूतावास के अधिकारी के बारे में दिया गया काम तो अवसर मिलने पर ही हो सकता था । कोहली ने दूसरे काम के लिए ज्योतिषी की तलाश शुरू की । इस सिलसिले में मिस श्रीकन्त ने कोहली की भेंट कुछ भारतीयों और विदेशियों से कराई । बातचीत में उन्होंने बताया कि ज्योतिषी की प्रेस कांफ्रेंस का प्रबन्ध इम्पीरियल इण्टरनेशनल होटल में किया जाएगा । इसमें भाग लेने के लिए अमरीका, पश्चिमी जर्मनी, जापान आदि से पत्र-प्रतिनिधि, टेलीविज़न वाले और कैमरामैन ख़ास तौर पर बुलाए जा रहे हैं । इस तरह पचास प्रमुख भारतीय पत्रकारों के अलावा सौ के लगभग विदेशी प्रतिनिधि भी होंगे । इसलिए प्रेस कांफ्रेंस में चाय आदि का प्रबन्ध डेढ़ सौ व्यक्तियों के लिए किया जाए । तीसरा महायुद्ध १६४८ में रूस के द्वारा शुरू होकर उसी वर्ष अमरीका की जीत से समाप्त हो जाएगा । इसके अलावा ज्योतिषी से यह भी कहलवाया जाए कि पंडित नेहरू के लिए १६४८ का वर्ष अत्यन्त अनिष्टकारक है । ग्रह इतने भारी हैं कि उनके जीवन के लिए घातक हो सकते हैं । उन्होंने कहा कि यदि ज्योतिषी पंडित नेहरू और उसकी सरकार के बारे में ऐसी बातें कहने को तैयार हो जाए, तो प्रेस कांफ्रेंस की शाम को ही हवाई जहाज़ से लन्दन या न्यूयार्क जाने के लिए उसकी सीटें रिज़र्व करा दी जाएँगी । इस तरह

अगली सुबह समाचारपत्रों में नेहरू सरकार के सम्बन्ध में भविष्यवाणी प्रकाशित होने से पहले वह भारत से बाहर चला जाएगा और सरकार चाहने पर भी उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकेगी। प्रेस कांफ्रेंस के लिए निमन्त्रणपत्र भी उस ज्योतिषी की ओर से ही जारी हों, ताकि उसके भारत से चले जाने के बाद किसी और का कुछ न बिगड़े।

ज्योतिषी की तलाश में कोहली मासिक पत्र 'आशाकिरण' के मालिक और सम्पादक श्री कृपासागर विद्यालंकार से मिला। उस पत्र में हर महीने अखिल भारतीय ज्योतिषी-मण्डल के अध्यक्ष की ओर से विज्ञापन छपता था। उसमें विस्तृत जन्म-कुण्डली बनाने के लिए सौ रुपये, एक प्रश्न का उत्तर देने के लिए पाँच रुपए और अनेक प्रकार की बातों के लिए भिन्न-भिन्न फ़ीस बताई जाती थी। श्री कृपासागर विद्यालंकार ने कोहली को ज्योतिषी का पता न बताया, लेकिन उस दफ़्तर के एक क्लर्क से कोहली को पता लगा कि इस ज्योतिषी-मण्डल या उसके अध्यक्ष का कोई अस्तित्व नहीं। जो लोग विभिन्न प्रकार की बातें पूछने के लिए विज्ञापित फीस भेजते हैं, उसे 'आशाकिरण' का मालिक ही रख लेता है। पहले से तैयार टेवों और प्रश्नोत्तरों में, दफ़्तर में नियुक्त एक पंडित से ही अवसरानुकूल परिवर्तन करवाकर भेज दिया जाता है। कोहली उस पंडित से मिला। उसको अंग्रेज़ी तो आती थी, लेकिन उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं था।

उन्हीं दिनों रामराज्य स्थापक सभा ने उर्दू के विरोध और हिन्दी के समर्थन में आन्दोलन चला रखा था। गिरफ्तार होने के लिए आ रहे स्वयंसेवक साधु थे। ये साधु पाँच-पाँच के जत्थे बनाकर प्रतिदिन चाँदनीचौक में 'जो बोले सो बलवान्, हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान' के नारे लगाते। वहाँ दफा १४४ लगी हुई थी। बहुत-से साधु बिल्कुल सीधे-सादे थे। उन्हें हिमालय और अन्य एकान्त स्थानों से बहकाकर यहाँ भेजा जाता था। कुछ से यह कहा जाता कि सरकार का राज केवल धरती पर है, अगर वे वृक्षों पर चढ़कर सरकार-विरोधी नारे लगाएँगे,

तो सरकार उन्हें बन्दी नहीं बना सकेगी। विरोधी नारे लगाते हुए वे हिरासत में ले लिए जाते। एक-एक सप्ताह की क़ैद के वाद उन्हें छोड़ दिया जाता और वे अपने-अपने स्थानों पर लौट जाते।

इस सत्याग्रह के सिलसिले में आया हुआ एक संन्यासी एक सप्ताह की क़ैद से मुक्त होने के वाद अपने स्थान पर लौटने के वजाय प्रधानमंत्री भवन के प्रवेश-द्वार के सामने सड़क के पार जा बैठा। वह प्रधानमंत्री के वँगले की ओर टकटकी लगाए देखता रहता। उसने यह घोषित कर दिया था कि वह अपने आत्मवल से प्रधानमंत्री नेहरू के हृदय को परिवर्तित कर देगा। वह अपने वक्तव्य अंग्रेज़ी में लिखकर समाचारपत्रों में भेज रहा था। समाचारपत्रों में एक-दो दिन खूव चर्चा रही। वहुत-से लोगों को उसके दर्शन करने आते देखकर पुलिस ने उसे वहाँ से हटा दिया।

कोहली जव उस साधु से मिला तो उसे मालूम हुआ कि वह फलित ज्योतिष का अच्छा जानकार है। वह साधु काफ़ी पढ़ा-लिखा था। वह किसी भारतीय नरेश के दरवार में अच्छे पद पर भी रह चुका था। उसका प्रभावशाली चेहरा जटाओं और लम्वी दाढ़ी तथा मोटी-मोटी मूँछों से वहुत रौवदार लगता था। आगामी विश्वयुद्ध के सम्वन्ध में जिस भविष्यवाणी की कोहली को ज़रूरत थी, उसका ज़िक्र कोहली ने उस साधु से किया। साधु ने वताया कि मंगल और शनि की जो स्थिति अगले वर्ष होगी, उससे दुनिया के एक वड़े भाग का विनाश अवश्यम्भावी है। लेकिन राहु-केतु अगले वर्ष आश्विन में जिस जगह पर हैं, उससे स्पष्ट है कि पाताल का कोई देश इस विनाश से वच रहेगा और विजय प्राप्त करेगा।

वह साधु अपने को स्वामी सच्चिदानन्द कहता था। कोहली ने उससे ये वातें एक प्रेस कान्फ्रेंस में कहने के लिए कहा और उसे वताया कि इसके लिए उसे काफ़ी पैसा मिलेगा। वह तुरन्त राजी हो गया। अगला साल नेहरू सरकार और स्वयं पण्डित नेहरू के लिए अनिष्टकारी है, यह कहने के लिए वह तैयार था। लेकिन वह लन्दन या न्यूयार्क के

वजाय पेरिस जाना चाहता था। चैत्र अर्थात् मार्च के वाद पण्डित नेहरू की जन्म-कुण्डली के अनुसार ग्रहों का वहुत अनिष्ट योग होगा और यह ज्येष्ठ तक वहुत भयंकर हो जाएगा, क्योंकि उस समय तक रोहिणी और अरुणी पास आकर नक्षत्र-मण्डल में जिस स्थान पर पहुँचेंगे, वह नेहरू सरकार के लिए घातक और स्वयं नेहरू के लिए मारक हो सकता है।

स्वामी सच्चिदानन्द की प्रेस कान्फ्रेंस वहुत सफल रही थी। स्वतन्त्रता संरक्षण सभा के परामर्श से प्रेस कान्फ्रेंस के निमन्त्रणपत्र में स्वामी सच्चिदानन्द के नाम से पहले 'श्री १०८' और वाद में 'ज्योतिपाचार्य' लिखवा दिया गया था। स्वामीजी ने सताईस नक्षत्रों, वारह राशियों और नौ ग्रहों के चक्र और उनकी दशाओं की अनिष्टि और भोग-काल की गतिविधि का वड़ा विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत किया। अमरीका से पूरा हवाई जहाज़ किराए पर लेकर पत्र-प्रतिनिधि वग़ैरह इस प्रेस कान्फ्रेंस के लिए आये थे। अपने समाचारपत्रों के लिए भारत के इस महान् ज्योतिषी की भविष्यवाणी की अत्यन्त दिलचस्प खवरें तैयार करने के लिए उन्हें पर्याप्त सामग्री मिल गई थी। उस ज्योतिषी की शक्ल ऐसी वना दी गई थी कि टेलीविज़न और फ़िल्म पर यही लगे कि यह भविष्यवाणी करने के लिए वह हिमालय के जंगलों से अभी-अभी आया है।

अमरीकी समाचारपत्रों में इस भविष्यवाणी को सोवियत-विरोधी प्रचार करने के लिए इस्तेमाल किया गया। ज्योतिषी की महानता का सव पत्र-प्रतिनिधियों ने खुलकर वर्णन किया। किसी ने लिखा कि वह भारत का अत्यन्त पूजनीय महापुरुष है। उसके पैरों की धोवन इतनी पवित्र मानी जाती है कि हर प्रकार की औषधि के तौर पर उसका इस्तेमाल किया जाता है। किसी ने लिखा कि हिमालय के जंगलों में अनेक वर्षों की तपस्या के बाद जव वह वाहर आया तो उसके शरीर पर वालिश्तभर ऊँची काई का जंगल उगा हुआ था।

आगामी युद्ध-सम्बन्धी भविष्यवाणी की तरह प्रधानमन्त्री नेहरू के वारे में की गई भविष्यवाणी इतनी लाभप्रद सिद्ध न हुई। सरकार के

डर से अधिकतर भारतीय समाचारपत्रों ने इसे पहले पृष्ठ या किसी और प्रमुख स्थान पर न छापा। कुछ दिनों के बाद प्रधानमन्त्री नेहरू ने अपने एक भाषण में इस भविष्यवाणी की ही नहीं, सारी ज्योतिष-विद्या की खिल्ली उड़ाई थी। लेकिन सरकार ने प्रधानमन्त्री की सुरक्षा के लिए विशेष प्रवन्ध करना शुरू कर दिया था।

इस प्रेस कान्फ्रेंस का आयोजन करने पर कोहली के हाथों काफ़ी पैसा लगा। लेकिन उसे इस नाटक को रचने पर बहुत घिन आई और पहली वार उसने आत्मग्लानि महसूस की। उसे लगा कि चारों तरफ़ गांधीजी को मार देने की जो वातें फैल रही हैं, यह भारत-विभाजन पर हुई घटनाओं की आकस्मिक प्रतिक्रिया नहीं। इसके पीछे एक बहुत बड़ी ताकत काम कर रही है। प्रेस कान्फ्रेंस में हिन्दुस्तानी पत्रकारों की वातों को सुनकर कोहली को विश्वास हो गया था कि नेहरू सरकार को उलट देने के लिए विशाल पैमाने पर साज़िश हो रही है और उसके लिए रुपया पानी की तरह वहाया जा रहा है। शरणार्थियों को उत्तेजित करना, हिन्दू धर्म और पाकिस्तान के विरोध के नाम पर लोगों को गांधीजी के विरुद्ध उभारना आदि वातों का लक्ष्य नेहरू सरकार को उलटना है।

कोहली के मस्तिष्क में ये विचार वहुत अस्पष्ट थे। देश के भले-बुरे की उसने कभी चिन्ता नहीं की थी, फिर भी उसका माथा ठनकने लगा था। उसे लग रहा था कि देश में चारों तरफ़ एक महामारी-सी फैल रही है, जिसमें जनता अपना मानसिक सन्तुलन खो रही है। चारों तरफ़ एक अँधेरा फैल रहा है।

चौदह

समस्त शरणार्थी वस्तियों और इलाकों में गांधीजी के विरोध में प्रदर्शन की फिर से तैयारियाँ हो रही थीं। हिन्दू सेवक संघ इस वार यह कोशिश कर रहा था कि दिल्ली और आसपास के शहरों में आकर बसे दस लाख शरणार्थियों में से एक लाख से अधिक को विरला भवन ले जाया जाए। गांधीजी के विरुद्ध प्रदर्शन ही न किया जाए, वल्कि कुछ शरणार्थियों से वहाँ भूख हड़ताल भी करा दी जाए। इस विचार से कि प्रदर्शन फिर ढीला न रह जाए, गांधीजी और नेहरू-सरकार के विरुद्ध बहुत घृणापूर्ण और हिंसाजनक प्रचार किया जा रहा था। उन सब स्त्रियों और पुरुषों को इकट्ठा किया जा रहा था जो पाकिस्तान से पंगु होकर आए थे, जिनके हाथ, पाँव या नाक काट दी गई थी, या जिनके शरीर पर गहरे घावों के चिह्न थे। ऐसे बूढ़े जिनका कोई नहीं रहा था, ऐसे वच्चे जिनके माता-पिता मार दिए गए थे, ऐसी स्त्रियाँ और लड़कियाँ जो निराश्रय रह गई थीं, ऐसी माताएँ जिनकी पुत्रियों को पाकिस्तान में अपहृत कर लिया गया था—सवको इस आन्दोलन में इकट्ठा किया जा रहा था। इस वार गांधीजी के वायकाट या दिल्ली छोड़ जाने तक ही वात सीमित थी, वल्कि गांधीजी और नेहरू सरकार के विरुद्ध भयंकर घृणा और उत्तेजना फैलाई जा रही थी।

कहीं कोई हिन्दू या सिक्ख आपसी लड़ाई में मारा जाता तो यह खबर फैला दी जाती कि किसी मुसलमान ने यह काम किया है। पुलिस कभी किसी मुसलमान की दुकान को लुटने से बचाती या किसी ऐसे राष्ट्रवादी मुसलमान का मकान उसे दिला देती, जो सारी उम्र कांग्रेस में रहकर जेल-यात्रा करता रहा था, तो इसे नेहरू सरकार का शरणार्थियों पर अत्याचार कहकर लोगों को उत्तेजित किया जाता। कभी यह अफ़वाह फैलाई जाती कि गांधी पुल वंगश और सदर वाजार का सारा इलाका शरणार्थियों से खाली कराकर मुसलमानों को वहाँ फिर से वसाने के लिए ज़िद कर रहे हैं। कभी यह खबर उड़ने लगती कि जामा मस्जिद और फतहपुरी के इलाकों से वहाँ वरसों और पुश्तों से रह रहे हिन्दुओं को निकालकर मुसलमानों को वसाया जा रहा है, ताकि वे वहाँ सुरक्षा में रह सकें। इस प्रकार के समाचार वहुत-से अखवारों में भी छप रहे थे।

हिन्दू सेवक संघ ने इस वार कोहली से इस सम्वन्ध में वातचीत करना उचित न समझा। लेकिन उसके वताए तरीके को अपनाकर उन्होंने आस-पास के शहरों और कस्वों से शरणार्थी दिल्ली लाने के लिए वसों और लारियों का प्रवन्ध कर लिया था। रेलगाड़ी द्वारा वे अपने समर्थकों को राजस्थान, मध्यभारत और महाराष्ट्र के विभिन्न भागों से लाने की तैयारी कर रहे थे। वे जगह-जगह गांधीजी के खिलाफ़ जहर फैला रहे थे।

हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ता तीसहज़ारी कैम्प में भी शरणार्थियों को भड़काने और विरला भवन पर प्रदर्शन के लिए पूरी तरह तैयार करने की कोशिश कर रहे थे। इस वार वे कैम्प में दीवान फ़ीरोज़चन्द के वजाय ज्ञानी धर्मसिंह को आगे कर रहे थे। ज्ञानी धर्मसिंह एक काफ़िले के साथ पाकिस्तान से पैदल आया था। शरीर का वहुत दुवला-पतला होने के कारण वह अधिक वोझ नहीं उठा सकता था और गुरु-ग्रन्थ को पाकिस्तान से साथ लाने के लिए अपने घर का सारा कीमती

सामान वहीं छोड़ आया था। अपनी झोंपड़ी में वह 'गुरु ग्रन्थ साहिव' का पाठ किया करता था। शरणार्थियों में उसको इज़्ज़त की नज़र से देखा जाता था।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति का उत्साह लोगों में मन्द पड़ गया था। आज़ादी मिल जाने के पश्चात् भी दैनिक जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया था। शरणार्थियों को सरकार की ओर से क्षतिपूर्ति के सम्वन्ध में जिस प्रकार की आशा थी, उसे पूरी होते हुए देर लग रही थी। इससे शरणार्थियों को वहुत कष्ट सहना पड़ रहा था और उनमें असन्तोष फैलता जा रहा था। हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ताओं ने कुछ ऐसी जगहों पर कव्ज़ा करने पर शरणार्थियों को उकसाया जहाँ उन्हें पूर्ण विश्वास था कि पुलिस रुकावट डालेगी। ऐसे अवसरों पर पुलिस को लाठी चलानी पड़ती। शहर-भर में और भी उत्तेजना फैलाई जाती और घायल स्त्री-पुरुषों को उठाकर जगह-जगह जलूस निकाले जाते।

हिन्दू सेवक संघ ने वावा निहालसिंह को भी अपने साथ मिलाने की कोशिश की। लेकिन उसने उनका साथ देने से इन्कार कर दिया। उसे यह देखकर दुःख होता था कि लोगों के जीवन की कटुता को किस तरह घृणा का रूप दिया जा रहा है। वह लोगों को महात्मा गांधी या पण्डित नेहरू के खिलाफ़ ग़लत वातें करने से मना करता। वह उनको समझाता कि अच्छे आदमी इतनी जल्दी वुरे नहीं वन जाते और नेता आदर्शों के प्रतीक होते हैं। नेता को खत्म करने से वे आदर्श भी खत्म हो जाते हैं।

सीतादेवी के कारण वावा निहालसिंह के जीवन में और भी स्थिरता आ गई थी। वह सुमित्रा को अपनी पोती और सीतादेवी को अपने पोते की वहू वताता। वह कहा करता कि उसके पड़पोता होने वाला है। पेट वढ़ने के साथ-साथ ममता जाग जाने से सीतादेवी की चेतना का एक अंश सजीव होने लगा था। इस कार्य में निहालसिंह और सुमित्रा योग दे रहे थे। सुमित्रा वच्चे के लिए छोटे-छोटे कपड़े लाती जिन्हें सीता अपने सीने से लगाने लगती। वहुत कोशिश के वाद वावा निहालसिंह ने

उसे सुई में धागा डालना सिखाया। फिर सीता अपने-आप ही कपड़े के टुकड़ों को ऊबड़-खाबड़ सीने लगी। आहिस्ता-आहिस्ता उसका हाथ सँभलने लगा और सिलाई साफ होती गई। लालकौर से सिलाई की मशीन लाकर सीतादेवी को हत्थी घुमाना और सिलाई करना सिखाना चाहा। शुरू-शुरू में कुछ कठिनाई हुई, लेकिन वावा निहालसिंह को पूरा विश्वास था कि वह वच्चे के कपड़े मशीन पर सीना भी शुरू कर देगी। वावा का खयाल था कि सीता की सूरत कुछ दिनों में ठीक हो जाएगी और सिलाई का काम सीखकर वह अपने और वच्चे के लिए कुछ कमाने योग्य हो जाएगी।

निहालसिंह को लगता कि यही उसका अपना परिवार है। लगन के साथ वह अपने काम-धन्धे में लगा रहता। वह रात के समय नहीं पढ़ सकता था। दिन को जव फुरसत मिलती, वह सुमित्रा की लाई हुई समाजवाद पर पुस्तकें पढ़ता रहता। काले गोल फ्रेम की ऐनक को नाक पर ज़रा नीचे करके वह उर्दू और पंजावी में किताबें और अखवार पढ़ता रहता था। समाजवाद पर जो किताबें पंजावी में मिल पातीं, सुमित्रा उन्हें वावा निहालसिंह के लिए ले आती।

उन किताबों के पढ़ने से वावा में नई-नई भावनाएँ पनप रही थीं। उसकी आँखों में एक नई चमक आ गई। ज़िन्दगी-भर वह द्वेष और स्वार्थ से दूर रहने की कोशिश करता रहा था। वह शेखूपुरे ज़िले का एक ज़मींदार था। अपनी ज़मींदारी खत्म करने के लिए उसने समाज-वाद का इन्तज़ार नहीं किया था। अगर कोई किसान उससे आकर कहता कि वह लगान नहीं दे सकता तो वह फ़ौरन अपने कारिन्दे को लगान न वसूल करने के लिए कह देता। अगर कोई उससे कर्ज़ लेना चाहता तो वह उसे फ़ौरन कर्ज़ दे देता। ऐसा करने के लिए वह अपनी ज़मीन के एक टुकड़े के बाद दूसरा टुकड़ा बेचता रहा। कभी कोई उसके घर से खाली हाथ नहीं गया था और न ही कभी किसी ज़रूरतमन्द की ज़रूरत पूरा करने से वह हिचकिचाया था। उसके मकान में एक बहुत बड़ा आँगन था

जिसमें आमने-सामने आठ-आठ कोठरियाँ थीं। बीच में कुआँ था, जिसके किनारे मौलसिरी का एक दरख़्त था। इस आँगन के सामने गुरुद्वारा था। गुरुद्वारे की तरह ही इस आँगन का भी कोई फाटक नहीं था। जिसकी इच्छा होती वग़ैर किसी से पूछे वहाँ आकर विश्राम करता या कुछ दिनों के लिए डेरा जमा लेता। भोजन से पहले दोनों समय निहालसिंह के चाकर वहाँ आकर देख जाते कि कितनों को भोजन चाहिए। उन कोठरियों में हिन्दू भी आकर रहते और मुसलमान भी। फ़क़ीर भी और आम मुसाफ़िर भी, साधु भी और चोर-उचक्के भी। १९२३ में वहाँ बबर अकालियों के हथियार बनाने का सामान पकड़ा गया था। १९३० में वहाँ से बम फटने की आवाज़ आने पर पुलिस ने सारा घर घेर लिया था। वहाँ अण्डरग्राउंड कम्यूनिस्ट भी आकर रहते थे और खुफ़िया पुलिस के आदमी भी। निहालसिंह के द्वार सबके लिए खुले थे और जो आता उसको भोजन, दूध-लस्सी और माँगने पर वस्त्र आदि भी मिल जाते थे। पाकिस्तान बनने तक उसकी बहुत-सी ज़मीन बिक चुकी थी। सैकड़ों व्यक्तियों ने उसका कर्ज़ वापस देना था, लेकिन उसने कभी किसी से कर्ज़ वापस नहीं माँगा था।

किताबों के पढ़ने से जो बहुत-से विचार निहालसिंह के मस्तिष्क में अस्पष्ट और धुंधले थे, अब स्पष्ट हो गए। उसका दिल इंसान के लिए प्यार से भर गया था। लोगों की हँसी की परवाह किये बिना वह अपने विचारों पर दृढ़ बना रहा। अब उसे पता लग गया था कि लोगों की गरीबी और दुखों का क्या कारण है, एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से अमानुषिक व्यवहार का क्या कारण है, क्यों आज नेकी और सद्भावना के बीज का फल कड़ुआ होता है। मानव के अतीत वर्तमान और भविष्य की उजली तस्वीर उसकी निगाहों में काँपती रहती थी। उसने अपने लिए ही नहीं, सबके लिए सदाचार और बन्धुत्व की राह को देख लिया था। प्रातः और संध्या गुरबानी के पाठ के बाद अरदास में वह सर्वत्र (सभी के) भले की ईश्वर के आगे हाथ जोड़कर कामना किया करता

था। वह समझने लगा था कि नेक-से-नेक और सच्चे-से-सच्चा आदमी भी क्यों आजकल नेकी और सचाई की राह पर नहीं चल सकता और कैसे उस राह पर मनुष्य निर्विघ्न आगे वढ़ सकता है। धर्म में उसका विश्वास और भी दृढ़ हो गया था। गुरवानी के पाठ के वाद अपनी अर-दास में वह नित्य पूर्वकाल के सिक्खों की कुर्वानियों और वलिदानों का ज़िक्र किया करता और उन शहीदों को याद किया करता जो अपने समय की नेकी और सच्चाई की तपती हुई रेत पर चले थे और उवलते हुए तेल में वैठकर वीरगति प्राप्त की थी। निहालसिंह का जी जीने की तृष्णा से ललचा उठा था। वह सव हिन्दुस्तानियों के कल्याण और सुख के लिए अपना जीवन कुर्वान करना चाहता था। पाकिस्तान वनने पर हुई लूटमार और मारकाट का खयाल आते ही उसका दिल दुःख और क्रोध से भर जाता था। लेकिन उसे यह भी पता चल गया था कि उससे भी वढ़कर अत्याचार और लूटमार आज भी प्रतिदिन हो रही है। लोग अभावों में पिसकर दम तोड़ रहे हैं। औरतें और वच्चे भूख और गरीवी से निढाल होकर शोषण के चक्र में पिस रहे हैं।

इन विचारों ने वावा निहालसिंह की नेकी और सद्‌भावना को एक नया रूप दिया। यह भावना पहले की तरह फूल की पत्ती-सी कोमल ही नहीं थी, वल्कि पत्ती की धार तेज़ हो गई थी। अन्याय से जूझने के लिए वह तड़प उठता। वह दिन देखने के लिए उसकी वूढ़ी आँखें तरस उठतीं, जव इस शहर की तंग गन्दी गलियों और अँधेरे वदवूदार मकानों से लोग अपने बीमार शरीरों को लेकर और चिथड़ों की जायदाद उठाए सड़कों पर सैलाव की भाँति उमड़ पड़ेंगे।

लेकिन यहाँ तो एक और ही किस्म का सैलाव आने वाला था, जिसके लिए हिन्दू सेवक संघ वहुत ज़ोर-शोर से तैयारी कर रहा था। वह यह समझने लगा था कि इतिहास पास के घण्टाघर की घड़ी की तरह सदा आगे ही नहीं वढ़ता, इसे पीछे भी किया जा सकता है। तीसहज़ारी कैम्प में ही नहीं, आसपास की शरणार्थी वस्तियों में

जहाँ-कहीं उसकी बूढ़ी टाँगें ले जातीं, वह हिन्दू सेवक संघ के प्रदर्शन के विरोध और गांधीजी के समर्थन में आवाज़े उठाता। उसके भाषण में अनघड़ विचार ही होते, लेकिन मुहावरों और आख्यानों से भरपूर उसका भाषण दिल में उतर जाता। बोलते-बोलते जब उसे अपने टूटे हुए अगले दाँतों का खयाल आता और वह उन पर ज़बान फेरने के लिए रुक जाता तो लोगों की आँखें शौक से चमक उठतीं। वह कांग्रेसियों से इस प्रदर्शन के विरुद्ध कमर कस लेने के लिए कहता रहता, लेकिन वे उसकी बात एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देते। कम्यूनिस्ट कार्यकर्ताओं की पकड़-धकड़ शुरू हो चुकी थी। वे लोग अब सुमित्रा या लालकौर के पास बहुत चोरी-छिपे आते थे। बाबा निहालसिंह उनसे भी कहता कि इस प्रदर्शन को असफल बनाने के लिए जी-जान से काम करें।

उन्हीं दिनों लालकौर को गिरफ्तार कर लिया गया। दिन में दो-तीन घण्टों के लिए वह कहीं जाया करती थी। एक दिन उसके जाने के डेढ़ घण्टे बाद उसकी झोंपड़ी पर पुलिस ने छापा मारकर तलाशी ली। वहाँ से कुछ भी बरामद न हुआ। जाते हुए वे यह बता गए कि लालकौर गिरफ्तार कर ली गई है। बाद में गिरफ्तारी का कारण पता लगा। अण्डरग्राउण्ड कम्यूनिस्ट उसे जो कागज़ात दे जाते थे उन्हें वह नई दिल्ली में स्थानीय कम्यूनिस्ट पार्टी के खुफ़िया दफ्तर में देने जाया करती थी। पुलिस को उस दफ़्तर का सुराग मिल गया था। जब पुलिस ने वहाँ छापा मारा तो उन्हें केवल जले हुए कागज़ ही मिले थे। पहले ही सूचना मिल जाने पर वहाँ छिपे लोग जगह छोड़कर चले गए थे। पुलिसवाले वहीं अन्दर बैठकर कम्यूनिस्ट नेताओं से मिलने आनेवालों का इन्तज़ार करने लगे। लालकौर ने दरवाज़ा खटखटाया और खुलने पर जब वह अन्दर दाखिल हुई तो उसे हिरासत में ले लिया गया।

चाननमल चोपड़ा ने बहन की ज़मानत देने या उसकी रिहाई के लिए कोई यत्न न किया। लालकौर के प्रति सहानुभूति प्रकट करने या उससे अपना कोई सम्बन्ध बताने से चोपड़ा पर भी कम्यूनिस्ट होने का

शक किया जा सकता था और उसकी नौकरी को खतरा हो सकता था।

तीसहज़ारी के मैदान में न्यायालयों के निर्माण का निश्चय हुए कई वर्ष हो चुके थे। भारत के विभाजन से पहले ही इस सम्वन्ध में प्रारम्भिक कार्यवाहियाँ की जा चुकी थीं। जव शरणार्थी लाखों की संख्या में दिल्ली आए तो शहर के विलकुल पास इस खुले मैदान में उनके लिए शिविर वंना दिया गया था। किंग्ज़वे के पास का सारा इलाका साफ़ कर वहाँ एक वहुत वड़ा शरणार्थी कैम्प वनने लगा था। तीसहज़ारी के शिविर से शरणार्थियों को किंग्ज़वे कैम्प जाने के लिए वहुत-सी सुविधाएँ दी जा रही थीं। शहर में अपने-अपने कारोवारों के निकट होने के कारण अधिकतर शरणार्थी तीसहज़ारी कैम्प को छोड़ना नहीं चाहते थे। दिल्ली सरकार ने पूरा आश्वासन दिलाया था कि यहाँ कचहरियाँ उस समय तक नहीं वनाई जाएँगी जव तक यहाँ वस रहे सव शरणार्थी अपनी इच्छानुसार ठीक प्रवन्ध हो जाने पर वहाँ से स्वयं नहीं चले जाते। लेकिन हिन्दू सेवक संघ यह प्रचार कर रहा था कि उस कैंप को ज़वर-दस्ती खाली करवा दिया जाएगा और अगर शरणार्थियों ने उसे खाली न किया तो सरकार आग लगवा देगी, ताकि सवको वह स्थान मजवूरन छोड़ना पड़े। वावा निहालसिंह को शक था कि हिन्दू सेवक संघ के कार्य-कर्ता खुद उस कैम्प में आग लगाने की तैयारी कर रहे हैं ताकि इसका दोष सरकार पर डालकर शरणार्थियों को भड़काने के लिए उन्हें एक और वहाना मिल जाए।

वावा निहालसिंह को पता था कि किस तरह हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ता हाथ धोकर उसके पीछे पड़े हुए हैं। कैम्प को और खासकर उसकी झोंपड़ी को आग लगाने या उस पर किसी से हमला कराने की उनकी योजना की भनक भी उसके कान में पड़ती रहती थी। सुमित्रा और सीतादेवी को वावा निहालसिंह ने लालकौर के वच्चों के पास उसकी झोंपड़ी में भेज दिया। कुछ समय पहले सुमित्रा को चोपड़ा की कोशिश

से दैनिक 'देशभगत' में नौकरी मिल गई थी और उसने प्रत्यक्ष रूप से जनवादी महिला समाज का काम करना छोड़ दिया था। अपनी राज-नीतिक गतिविधियों के कारण बाबा निहालसिंह को यह भी आशंका थी कि उसके पास रहने से सुमित्रा की नौकरी फिर खतरे में पड़ सकती है।

पन्द्रह

गांधीजी ने विड़ला भवन, नई दिल्ली में आमरण अनशन शुरू कर दिया था। भारत सरकार ने पाकिस्तान के हिसाव का पचास करोड़ रुपया अदा करने से इन्कार कर दिया, जिससे दोनों देशों में तनातनी और भी वढ़ गई थी। इस भुगतान को चुकता किए विना दोनों देशों में किसी प्रकार की मैत्री सम्भव नहीं थी। पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा और शरणार्थियों द्वारा छोड़ी सम्पत्ति या उसके मुआवज़े के लिए कोई वातचीत इसके विना नहीं हो सकती थी।

हिन्दू सेवक संघ ने 'गांधी को मरने दो' का नारा उठाया। गांधीजी की माँग के आगे सरकार के झुकने के विरुद्ध १५ जनवरी को एक विशाल प्रदर्शन की तैयारी शुरू की। इसका आयोजन दिल्ली प्रदेश के हिन्दू सेवक संघ के स्थान पर अब अखिल भारतीय हिन्दू सेवक संघ कर रहा था। गांधी-विरोधी प्रदर्शन को यह रूप देकर उन्होंने वहुत-से और लोगों का सहयोग प्राप्त कर लिया था। उत्तर भारत में जगह-जगह जलसे-जलूसों से इस प्रदर्शन के लिए उत्साह पैदा किया जा रहा था, और शहर-शहर, गाँव-गाँव में 'गांधी को स्वर्ग भिजवाओ, नेहरू को नर्क, नहीं तो हो जाएगा भारत का वेड़ा गर्क' का नारा वुलन्द किया जा रहा था। इस वार राजस्थान, मध्यभारत और अन्य राज्यों के वहुत-से

रजवाड़े और जागीरदार इस आन्दोलन की धन से सहायता ही नहीं कर रहे थे, वे अपने राज्यों में लोगों पर खुल्लमखुल्ला प्रभाव डालकर १५ जनवरी को अधिक-से-अधिक संख्या में लोगों को दिल्ली भिजवाने की कोशिश कर रहे थे।

दिनों-दिन आन्दोलन तेज़ होता गया। लोगों के दिलों में मन्द पड़ रही घृणा फिर धधक उठी और चारों ओर 'गांधी को मरने दो' के नारे सुनाई देने लगे।

इस तेज़ आँधी के आगे बाबा निहालसिंह अपने-आपको बिलकुल बेबस पा रहा था। जो लोग पहले उसकी बात सुनने को तैयार हो जाते थे, अब उससे बेकार बहस और नोक-झोंक करने लगते। लड़के उसे देखते ही 'गांधी को मरने दो' की आवाज़ें लगाने लगते। लेकिन औरों की फबतियाँ और बुरा-भला कहने की परवाह किए बग़ैर वह अपनी धुन में 'गांधी की जान बचाओ—अपना ईमान बचाओ' की पुकार लगाता शरणार्थी बस्तियों में गांधी-विरोधी प्रदर्शन की निन्दा करता फिरता। इन सारी बस्तियों में मुश्किल से कुछ सौ ऐसे व्यक्ति थे जो सक्रिय रूप से उसकी मदद करने को तैयार थे।

वकालत अच्छी तरह चल जाने के बाद फ़ीरोज़चन्द ने राजनीतिक कार्यों में रुचि लेना बन्द कर दिया था और वह बहुत धार्मिक वृत्ति का हो गया था। किसी एक धर्म में नहीं, सब धर्मों में उसकी अपार श्रद्धा हो गई थी। परमात्मा को प्रसन्न करने के हर तरीके वह अपना रहा था। सुबह वह ज्ञानी धर्मसिंह की झोंपड़ी में 'गुरु ग्रन्थ' की बानी सुनता और उसके बाद पास के शिवाले में जाकर पूजा करता, या समय होता तो सनातन धर्म मन्दिर में मूर्तियों पर फूल चढ़ा आता। रविवार को वह नियमित रूप से आर्य समाज मन्दिर जाकर हवन और वेद-मन्त्र उच्चारण में भाग लेता। मंगल की शाम को हनुमान मन्दिर जाता और बृहस्पतिवार को जीतगढ़ की पहाड़ी के पास पीर के मजार पर दिया जला आता। अब उसके जीवन का लक्ष्य परमात्मा को खुश रखना था

और इसके लिए वह सब तरीके अपना रहा था। उसने मूँछें फिर बढ़ा ली थीं।' पगड़ी, लम्बा कोट और पाजामा पहनना शुरू कर दिया था। बेटी से मन-मुटाव खत्म हो गया था। सुमित्रा लालकौर के बच्चों के साथ रहती रही, लेकिन वह माँ-बाप के पास भी आने-जाने लगी थी।

मुसलमानों के प्रति घृणा फैलाना फ़ीरोज़चन्द ने बन्द कर दिया था। गांधीजी को भी वह अब बुरा-भला नहीं कहता था। वह बाबा निहाल-सिंह को समझाता कि अपनी जान इस तरह हलकान करने से कोई लाभ नहीं होगा। परमात्मा ने मौत जिस घड़ी और जिस ढंग से होनी लिखी है, अटल है। मनुष्य में इतनी ताकत नहीं कि अपनी या किसी और की मौत की घड़ी निर्धारित कर सके। वह बाबा निहालसिंह से बार-बार यही कहता कि यदि गांधीजी का देहान्त अनशन द्वारा लिखा है, तो इसको कोई टाल नहीं सकता और ऐसा नहीं लिखा तो 'गांधी को मरने दो' की चीख-पुकार गांधीजी का बाल-बाँका नहीं कर सकती।

फ़ीरोज़चन्द को राजनीति से अरुचि ही नहीं हुई थी, वह राज-नीतिज्ञों के भी बहुत खिलाफ़ हो गया था। उसका विचार था कि ये राजनीतिज्ञ सदा से ही संसार की सब मुसीबतों के जन्मदाता हैं। वे समाज को तोड़ते-फोड़ते रहते हैं ताकि दिखा सकें कि कितनी अच्छी तरह इसे दोबारा जोड़ सकते हैं। वे दुनिया की बागडोर सँभाले हुए हैं और मनुष्य की स्थिति दिनों-दिन बिगड़ती रही है। वह चाहता था कि अगर राजनीतिज्ञ दुनिया को चालीस-पचास वर्ष भी अपनी हालत पर छोड़ दें तो सब कठिनाइयाँ आपसे-आप दूर हो जाएँगी। गांधीजी को महात्मा से अधिक वह राजनीतिज्ञ मानता था और अनशन से वह बहुत चिन्तित नहीं था। बाबा निहालसिंह को फ़ीरोज़चन्द ने समझाया कि १५ जनवरी को जलूस के विरोध में कोई कार्रवाई करना लाभदायक नहीं होगा। हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ता हाथ धोकर उसके पीछे पड़े हुए हैं। वह १५ जनवरी के प्रदर्शन का विरोध करेगा तो उनको उसे हानि

पहुँचाने का मौका मिल जाएगा। फ़ीरोज़चन्द ने उसे सलाह दी कि वह अपने प्रदर्शन की तैयारी १५ जनवरी के बाद किसी और दिन करे और गांधीजी की जान बचाने के लिए उत्सुक सभी लोगों का जलूस बनाकर बिड़ला भवन जाए। इस तरह गांधीजी को पता लगेगा कि दिल्ली में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो उनकी जान को बहुत कीमती समझते हैं और चाहते हैं कि सरकार उनकी बात मान ले।

फ़ीरोज़चन्द एक बार गांधीजी की प्रार्थना-सभा में गया था। यह सभा बिड़ला भवन में नहीं, किंग्ज़वे कैम्प में हुई थी। दिल्ली आने के बाद गांधीजी हफ्ते में एक बार प्रार्थना शहर के किसी अन्य भाग में करने लगे थे। मुसलमानों को आश्वस्त करने के लिए उन्होंने कुछ सभाएँ हिन्दू-मुसलमानों की मिली-जुली आबादी वाले इलाकों में कीं। फिर शरणार्थियों की सबसे बड़ी बस्ती किंग्ज़वे कैम्प में उन्होंने अपनी सभा करने का निश्चय प्रकट किया। रविवार को ग्यारह बजे के करीब किंग्ज़वे कैम्प के संचालकों को सूचना मिली कि गांधीजी आज शाम वहाँ आकर प्रार्थना करेंगे और प्रवचन देंगे। इसके लिए यथासम्भव प्रबन्ध करने के लिए कहा गया। यह खबर जब किंग्ज़वे कैम्प में फैली तो हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ताओं ने ऐलान कर दिया कि गांधीजी को यहाँ प्रार्थना नहीं करने दी जाएगी। वे कार्यकर्ता लोगों को उकसा रहे थे, आसपास के कैम्पों और मुहल्लों से अपने समर्थक वहाँ बुला रहे थे और ईंट-पत्थर, सोडे की बोतलें, लाठियाँ आदि एकत्रित कर रहे थे। इससे कैम्प के संचालक बहुत चिन्तित हुए। तीसरे पहर तक हिन्दू सेवक संघ के दो-तीन सौ स्वयंसेवक प्रार्थना-सभा वाले सारे स्थान पर छा गए। देखकर कैम्प-संचालकों ने पुलिस को फ़ोन किया, लेकिन उन्होंने कैम्प के संचालकों की बात पर कान न धरा। स्थिति बिगड़ती देखकर किंग्ज़वे कैम्प के संचालकों ने बिड़ला भवन फ़ोन कर कार्यालय में प्रबन्धकों को समझाने की बहुत कोशिश की कि उस शाम गांधीजी वहाँ प्रार्थना-सभा न करें और उनका उस दिन वहाँ आना अत्यन्त संकटपूर्ण हो सकता

है, लेकिन वे लोग गांधीजी को वहाँ आने से रोकने में अपनी बेबसी जता रहे थे। बहुत भाग-दौड़ के बाद कैम्प-संचालकों ने कुछ सौ सहयोगी एकत्रित किए, विशेषकर स्त्रियाँ, ताकि वे मंच के आसपास बैठकर विरोधियों को गांधीजी के निकट आने से रोक सकें। हिन्दू सेवक संघ के बुलावे पर फ़ीरोज़चन्द कुछ साथियों-सहित वहाँ पहुँच गया था। कुछ स्वयंसेवकों के पास छुरे-चाक़ू देखकर उसका भी माथा ठनकने लगा था।

प्रार्थना से कुछ समय पहले इन सभाओं में नियमित रूप से सम्मिलित होने वाले पाँच-छः दर्जन लोग वहाँ आ पहुँचे थे। उनमें कुछ शरणार्थी और कुछ हिन्दू-पठान और हट्टे-कट्टे जाट-सिक्ख थे। उन्होंनेआते ही मंच खाली कराया। ईंट-पत्थर वहाँ से उठवा दिए। डंडे, सोडे की बोतलें वग़ैरह जिसके हाथ में देखीं, छीन लीं। गांधीजी आए तो उनके साथी मंच पर उनके इर्द-गिर्द बैठ गए। इससे पहले कि कोई हो-हल्ला करने की कोशिश करता, रामधुन गाई जाने लगी। आरम्भ में गाने की आवाज़ धीमी थी और इसमें अधिकतर लोग भाग नहीं ले रहे थे, लेकिन उत्तरोत्तर यह आवाज़ ऊँची होती गई। कुछ लोगों ने शोर करने की कोशिश की, लेकिन इससे कोई विघ्न न पड़ा और गांधीजी और उनके साथी दृढ़तापूर्वक रामधुन गाते रहे। जब वे 'ईश्वर अल्लाह तेरे नाम' अलापने लगे तो एकाएक हुल्लड़ मच उठा और आवाज़ें आने लगीं : 'अल्लाह यहाँ नहीं पाकिस्तान में जाए'। इसमें हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ता और बहुत-से शरणार्थी भी भाग लेने लगे। इस शोर से रामधुन की आवाज़ मन्द पड़ गई। शोर को बढ़ते देखकर गांधीजी लाठी थामकर खड़े हो गए और फिर लाठी को नीचे कर हाथ जोड़कर 'ईश्वर-अल्लाह तेरे नाम, रघुपति राघव राजा राम' को बार-बार दोहराने लगे। यह देखकर आसपास बैठे हुए नर-नारी भी पूरा ज़ोर लगाकर इसे दोहराने लगे। धीरे-धीरे प्रतिरोध कम होने लगा और कुछ देर बाद समाप्त हो गया।

फ़ीरोज़चन्द उस दिन किंग्ज़वे कैम्प की प्रार्थना-सभा में गांधीजी

का विरोध करने गया था। तो भी इस बात से वह बहुत प्रभावित हुआ कि गांधीजी का अपमान और प्रार्थना-सभा का खण्डन करने के लिए बहुत-से लोगों के तुले होने पर भी वे उनकी शक्ति के सामने लाचार और बेबस हो गए थे। उस समय तो नहीं, बाद में वह गांधीजी के आत्मबल और आध्यात्मिक शक्ति का कायल हो गया। फ़ीरोज़चन्द को अब पक्का विश्वास हो गया था कि गांधीजी को हानि पहुँचाना तो दूर, कोई उनका बाल बाँका नहीं कर सकेगा। फ़ीरोज़चन्द बाबा निहालसिंह को यकीन न दिला सका कि गांधीजी को अनशन द्वारा कष्ट नहीं पहुँच सकता और साम्प्रदायिकता से पागल लोग गांधीजी को हानि नहीं पहुँचा सकते। गांधीजी की व्यक्तिगत महानता में विश्वास होने पर भी उसे जनता की सामूहिक शक्ति में विश्वास था।

बाबा निहालसिंह और उसके साथी १६ जनवरी को जलूस बनाकर बिड़ला भवन जाने की तैयारी करने लगे, ताकि गांधीजी की बात मानकर उनकी जीवन-रक्षा के पक्ष में वहाँ प्रदर्शन करें। उसने पोस्टर छपवाकर आसपास के इलाकों में लगवाए जो फ़ौरन फाड़ दिये गए। दस्ती इश्तहार छपवाए जो बाँटने वालों के हाथों से छीन लिये गए। बाबा निहालसिंह ने देखा कि इतना होने पर भी बहुत-से लोग सहयोग के लिए आगे आ रहे हैं। इनमें अधिकतर ऐसे थे जो राजनीति में बिलकुल रुचि नहीं रखते थे। कांग्रेसजनों को जब वह अपने साथ शामिल होने के लिए कहता तो उनमें से बहुत तो उसकी बात तक न सुनते। कम्यूनिस्टों का सहयोग प्राप्त करने के लिए वह उनके नेताओं से मिलने उर्दू बाज़ार उनके बड़े दफ्तर में गया। वहाँ उसे कोई ज़िम्मेदार व्यक्ति न मिला। अण्डरग्राउण्ड होने के कारण उनमें से कोई पार्टी के दफ्तर में नहीं आता था।

तीसहज़ारी कैम्प में बाबा निहालसिंह की प्रतिष्ठा के कारण वहाँ हिन्दू सेवक संघ के प्रदर्शन के लिए बहुत उत्साह नहीं था। उन्हीं दिनों एक घटना से वहाँ के लोग भी गांधी-विरोधी प्रदर्शन में बढ़-चढ़कर

हिस्सा लेने के लिए तैयार हो गए। एक दिन पाकिस्तानी फ़ौजी हिन्दुस्तानी पुलिस के साथ वहाँ आए और ज़बरदस्ती करतारसिंह की पत्नी को अपने साथ ले गए। करतारसिंह की घरवाली सतवंत कौर दस-ग्यारह वर्ष पूर्व मुसलमान थी। लायलपुर में अपने गाँव के एक मुसलमान ज़मींदार की लड़की शमशाद बेगम से करतारसिंह का प्रेम हो गया था और वह उसके साथ भागकर लाहौर आ गई थी, जहाँ उसने सिक्ख धर्म ग्रहण करके करतारसिंह से विवाह कर लिया था। उनके अब तीन लड़के और एक लड़की थी। दोनों आपस में बहुत प्रेम करते थे। करतारसिंह ने ट्रक ड्राइवरी छोड़कर जब बस खरीदी और बहुत पूजा-पाठ करने लगा, तो सतवंत कौर पहले से भी अधिक गुरुबानी का पाठ करने और गुरुद्वारे जाने लगी थी। पाकिस्तान बनने पर अपहृत स्त्रियों में उसके मुसलमान पिता ने उसका नाम भी दे दिया था और हिन्दुस्तानी पुलिस बिना किसी प्रकार की पूछ-ताछ के वहाँ आकर उसकी मरज़ी के विरुद्ध उसे पाकिस्तानी फ़ौज के हवाले करने को तैयार हो गई थी।

सतवन्त कौर ने पाकिस्तान जाने से साफ़ इन्कार कर दिया और अपने तीनों केशधारी पुत्रों को साथ लिये कृपाण निकालकर झोंपड़ी के दरवाज़े पर खड़ी हो गई। करतारसिंह साथ के किसी सिक्ख से कृपाण ला म्यान से निकालकर मरने-मारने के लिए तैयार हो गया। दाएँ हाथ की एक अँगुली कटी होने के कारण उसने कृपाण की मूठ दोनों हाथों से पकड़ रखी थी। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। देखते-ही-देखते वहाँ कैम्प के सब लोग आ जमा हुए। लाठी, सोटा, चारपाइयाँ तोड़कर उनके बाँस, जो भी किसी के हाथ आया, लेकर वहाँ आ खड़ा हुआ। बच्चों और पति से इस तरह छीनकर एक स्त्री को बल-पूर्वक पाकिस्तान भिजवाना देखकर लोगों की आँखों में खून उतर आया था। पुलिस ने भी राइफ़लें तानकर उनके आगे संगीनें लगा ली थीं। फ़ोन करके कुमुक और एक मजिस्ट्रेट को वहाँ बुला लिया गया था। मजिस्ट्रेट ने यह

वादा किया कि सतवन्त कौर को पाकिस्तानी फ़ौज के हवाले नहीं किया जाएगा और उसे दिल्ली में स्त्रियों की जेल में रखा जाएगा। करतार-सिंह अर्ज़ी दे कि पाकिस्तान बनने से दस वर्ष पहले से यह स्त्री उसकी पत्नी बनकर उसके साथ रह रही है। इस प्रार्थना-पत्र के बाद फ़ौरन सतवन्त कौर अपने पति के पास आ जाएगी। रोती-पीटती, चीखती-चिल्लाती सतवन्त कौर को भारतीय पुलिस ले गई। अगले दिन यह जानकर कि उसी रात पाकिस्तानी फ़ौज उसे पाकिस्तान भिजवाने के लिए अपने साथ ले गई है, समस्त शरणार्थी बस्तियों में हाहाकार मच गया और लोगों के गम और गुस्से की कोई हद न रही।

१५ जनवरी का जलूस बहुत ज़ोर-शोर से निकला। इस बार किसी ने हिन्दू सेवक संघ के हज़ारों कार्यकर्ताओं और रजवाड़ों से भेजे गए किराये के टट्टुओं को रेलगाड़ी से दिल्ली आने से नहीं रोका। किसी ने इस बार इनके हाथ से काले झंडे-झंडियाँ नहीं छीनी। बरसात के गन्दे-गँदले पानी की तरह सड़कों पर बहती हुई भीड़ सब दिशाओं से कनॉट प्लेस में आ एकत्रित हुई। एक बहुत बड़े नाले की तरह यह भीड़ सड़कों पर उमड़ पड़ी। वह बिड़ला भवन जाकर रुकी। इसने बिड़ला भवन को चारों ओर से घेर लिया।

बिड़ला भवन के चारों ओर सड़कों पर हज़ार-हज़ार गज़ तक फैले हुए इस जोहड़ के बँधे हुए पानी में से बेहद सड़ाँध आ रही थी। घृणा की यह दुर्गन्ध अनशन से निढाल गांधीजी को घन्टों सताती रही। 'गांधी को मरने दो' और 'जिसके सिर पर गांधी टोपी, उसकी बुद्धि बिल्कुल खोटी' के नारों की बदबू घण्टों उस स्थान पर छाई रही।

अगले दिन समाचारपत्रों में इस गांधी-विरोधी जलूस और प्रदर्शन का लम्बा-चौड़ा वृत्तान्त था और बहुत-से पत्रों ने इसमें दो लाख से भी अधिक लोगों के भाग लेने का ज़िक्र किया था। नर-नारियों और बच्चों के उत्साह की बहुत-सी कहानियाँ भी लिखी गई थीं और यह भी लिखा था कि इनमें से बहुत-से लोग वहाँ धरना देकर बैठ गए थे। यहाँ तक

कि रात के बारह बजे सरकार को भारतीय दण्ड-विधान की धारा १४४ लगाकर लोगों को वहाँ से हटाना पड़ा। दैनिक 'देशभगत' में आचार्य रामचन्द्र के सम्पादकीय लेख पहले से भी अधिक ज़हर में डूबे होते थे, लेकिन गांधीजी का अनशन प्रारम्भ होने के पश्चात् सुशीला ने समाचारों में गांधी-विरोध को कम करने की कोशिश की थी। शाम को वह देर तक दफ्तर में बैठी रहती और किसी सहायक सम्पादक को आचार्यजी के आदेश का पूरी तरह पालन न करने देती। उस दिन 'देशभगत' में जलूस और प्रदर्शन में सम्मिलित लोगों की संख्या को बीस हज़ार बताया गया था। खबर में यह भी था कि जानकार सूत्रों का खयाल है कि इस प्रदर्शन को सफल बनाने के लिए बहुत-से रजवाड़ों और बड़े-बड़े जागीरदारों ने बीस लाख से भी अधिक रुपये दिए थे। यह रुपया राज्यों से हज़ारों लोगों को दिल्ली लाने के लिए खर्च किया गया। खबर में यह भी बताया गया कि विश्वास किया जाता है कि कुछ विदेशी दूतावासों ने इस प्रदर्शन में बहुत दिलचस्पी दिखाई है। 'देशभगत' की इस खबर में यह भी लिखा हुआ था कि हिन्दू सेवक संघ के बाहर से आए कार्यकर्ताओं को उनके नेताओं ने बिड़ला भवन पर धरना देने के लिए कहा और उनमें से कुछ वहाँ आधी रात तक बैठे रहे, लेकिन धारा १४४ लागू होने का ऐलान होते ही वे गिरफ्तारी के डर से तुरन्त बिखर गए।

बहुत चाहने पर भी बाबा निहालसिंह गांधीजी की प्रार्थना-सभा में कभी नहीं जा सका था। पाकिस्तान से यहाँ आने के बाद वह कनॉट-प्लेस से परे कभी नहीं गया था और बिड़ला भवन तो बहुत दूर था। एक बार उसने दीवान फ़ीरोज़चन्द से बिड़ला भवन चलने के लिए कहा। फ़ीरोज़चन्द ने उसे टालते हुए उत्तर दिया कि आदमी-आदमी में उन्नीस-बीस से अधिक फ़र्क नहीं होता। किसी मनुष्य के वचन सुनने से बेहतर है कि ईश्वर में ध्यान लगाओ। निहालसिंह ने कहा कि आदमी-आदमी में बूंद और समुद्र से भी अधिक अन्तर हो सकता है। एक मनुष्य का हृदय बिन्दु से भी छोटा और दूसरे का सागर से भी विशाल हो

सकता है। ऊँचा उठकर मनुष्य आसमान में तारों से परे देख सकता है और नीचा रहकर वह ज़मीन के कीचड़ पर नज़र जमा सारी सृष्टि को ही भूल सकता है।

१६ जनवरी को गांधीजी के पक्ष में होनेवाले प्रदर्शन के लिए तीसहज़ारी कैम्प के सन्तासिंह ताँगेवाले ने बाबा निहालसिंह को अपने टाँगे में जलूस के साथ-साथ बिड़ला भवन तक ले जाने के लिए हामी भर ली थी। वह प्रदर्शन के पक्ष में नहीं था, इसलिए वह बाबा निहालसिंह को बिड़ला भवन से एक-दो फर्लांग इधर ही छोड़ने को तैयार था। पहले दिन के गांधी-विरोधी प्रदर्शन में उसने भाग लिया था। तीसहज़ारी कैम्प के अधिकतर लोग उस प्रदर्शन में शामिल थे। केवल करतारसिंह उनमें नहीं था। वह बच्चों को भाई के सुपुर्द कर केश कटवा पत्नी की तलाश में पाकिस्तान जाने के लिए वहाँ से एकदम ग़ायब हो गया था।

यह जलूस तीसहज़ारी के पुल से चला तो इसमें सौ से कम आदमी और दो स्त्रियाँ थीं—सुमित्रा और उसकी माँ लछमन देई। वे फ़ीरोज़चन्द के मना करने पर भी सन्तासिंह के ताँगे में आ बैठी थीं। प्रदर्शनकारियों में से कुछ ने साफ़-साफ़ कह दिया था कि जहाँ पुलिस रोकेगी वे रुक जाएँगे और जिस सड़क पर पाँच या पाँच से अधिक लोगों का जलूस निकालने पर प्रतिबन्ध लगा है, वहाँ नहीं जाएँगे। कुतुब रोड से होता हुआ यह छोटा-सा जलूस कनॉट प्लेस पहुँचा और इसमें दो-तीन सौ मुसलमान 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगाते हुए आ शामिल हुए। उनके नेता लम्बी दाढ़ी वाले मुसलमान ने अपना नाम मुहम्मदअली बताया।

इस जलूस में अधिकतर लोग अधेड़ उम्र के या बूढ़े थे। हिन्दू, सिक्ख ही नहीं, मुसलमान भी सब ऐसे थे, जिन्होंने कभी किसी प्रकार के आन्दोलन में भाग नहीं लिया था। सीधे-सादे सादा-दिल लोग जो नेकी-बदी के अपने-अपने अनुभवों के अनुसार जीवन बिता रहे थे, उनके

चेहरे भावना-रहित और ईमानदार थे। दम्भहीन सलवटों से भरे कपड़े, जैसे वे काम-धन्धों से अभी-अभी उठकर आ रहे हों।

मन्द गति से बढ़ता हुआ तीन-चार सौ लोगों का यह काफ़िला दो-दो चार-चार की कतारें बनाए क्वीन्सवे की लम्बी सड़क पर आगे बढ़ता जा रहा था। कनॉट प्लेस पार करने के बाद बाबा निहालसिंह टाँगे से उतरकर जलूस के साथ पैदल चलने लगा। तीसहज़ारी से उनके पीछे दो-तीन दर्जन सिपाही थे। सिपाही कनॉट प्लेस में दो-तीन सौ हो गए थे। उन पर कोई फबती कस देता, लेकिन अधिकतर दोनों किनारों पर खड़े लोग उनसे सहानुभूति और गांधीजी के प्रति आदर प्रकट कर रहे थे। जलूस क्वीन्सवे के अन्त पर पहुँचकर रुक गया। वहाँ से बिड़ला भवनवाली सड़क की नाकाबन्दी हो रही थी और बहुत बड़ी संख्या में पुलिस खड़ी थी।

बाबा निहालसिंह ने पुलिस-अधिकारियों से कहा कि वे जलूस तोड़-कर गांधीजी के अन्य दर्शकों की तरह एक-एक दो-दो होकर बिड़ला भवन जाएँगे, लेकिन पुलिस ने उनका घेरा डाल दिया। बाबा निहालसिंह ने और साथियों से सलाह करके वापस जाने का फ़ैसला किया। मुहम्मद-अली अपने मुसलमान साथियों और अन्य लोगों को धारा १४४ की परवाह न करके आगे बढ़ने के लिए ललकारने लगा। गला फाड़-फाड़-कर 'गांधीजी की जान बचाओ' का नारा लगाता वह पुलिस की हदबन्दी तोड़कर आगे बढ़ा और औरों को भी पीछे आने के लिए कहने लगा। इस पर पुलिस ने लाठी चलाई। मुहम्मद अली एक तरफ़ जा खड़ा हुआ था। उसे कोई चोट न आई, परन्तु कई मुसलमान, हिन्दू और सिक्ख घायल हुए। बाबा निहालसिंह पीछे खड़ा था। भागते हुए लोगों का धक्का लगने से वह गिर पड़ा और उसके कन्धे और पीठ पर सख्त चोट आई। कुछ समय बाद सन्तासिंह ताँगा ले आया और उठाकर तीसहज़ारी कैंप लौट आया।

बाबा निहालसिंह को बहुत दुःख हो रहा था। इसलिए नहीं कि

प्रदर्शन पूरी तरह सफल नहीं हुआ था या उसे चोट लगी। उससे एक दिन पहले हज़ारों आदमियों के एक बहुत बड़े जमघट ने बिड़ला भवन के चारों ओर खड़े होकर 'गांधी को मरने दो' के नारे लगाए थे। बाबा निहालसिंह चाहता था कि अनशन से क्लान्त और शिथिल गांधीजी के कानों में 'गांधीजी की जान बचाओ' की आवाज़ भी पड़ जाती, ताकि इस मरणासन्न अवस्था में उन्हें पता लगता कि ऐसे भी लोग हैं जो उनके साथ हैं और जिनको उनका जीवन बहुत प्रिय है।

आख़िर सरकार ने गांधीजी की बात मान ली और उनका अनशन समाप्त हुआ। इस पर हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ता और भी ज़ोरों से गांधीजी के विरुद्ध उत्तेजना फैलाने लगे और 'गांधी को मरने दो' के नारे ने 'गांधी को मार दो' का रूप ले लिया। कन्धे और पीठ पर चोट लगने से निहालसिंह कहीं आ-जा नहीं सकता था। शय्या पर लेटे-लेटे उसे दिन में कई बार यही नारे सुनाई देते और वह अपनी बेबसी पर तड़पकर रह जाता। मिलने आये लोग उससे कहते कि हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ता आपस में कह रहे हैं कि वह दिन दूर नहीं जब गांधीजी की हत्या कर दी जाएगी। गांधीजी की प्रार्थना-सभा में बम फटने के बाद यह अफ़वाह और भी तेज़ हो गई थी।

हिन्दू सेवक संघ के कार्यकर्ता अब खुल्लमखुल्ला कह रहे थे कि शीघ्र ही देश को ग़ांधीजी से छुटकारा मिल जाएगा और उसके बाद नेहरू सरकार भी अधिक देर टिकी नहीं रहेगी। गांधीजी के अनशन के सफलतापूर्वक भंग होने पर पाकिस्तान को पचास करोड़ का भुगतान कर दिया गया था। इस पर जनता में असन्तोष फैलाने की हर तरह से कोशिश की जाने लगी थी। कुछ दिनों बाद यह भी कहा जाने लगा कि गांधीजी का काम तमाम होने की ख़बर मिलते ही शहर के प्रत्येक भाग में केन्द्रीय स्थानों पर भगवे झंडे फहरा दिये जाएँगे। सब लोग जमा होकर आसपास की सब सरकारी इमारतों और दफ्तरों को अपने अधिकार में ले लें और

पुलिस और सेना को साथ मिलाकर मुस्लिम-पक्षीय नेहरू सरकार के स्थान पर हिन्दू-राष्ट्रीय सरकार स्थापित कर दें। शरणार्थियों में यह चर्चा भी चल रही थी कि कश्मीर में पाकिस्तानी हमलावरों के दाँत खट्टे करने के बाद भारतीय सेना उनको बिलकुल पछाड़कर आगे बढ़ते जाना चाहती थी, लकिन पंडित नेहरू ने रोक दिया। यह घोषणा की जाने लगी कि हिन्दू-राष्ट्रीय सरकार बनते ही पाकिस्तान को खतम कर दिया जाएगा और सब शरणार्थियों को उनके घर, जायदाद और ज़मीनें लौटा दी जाएँगी।

शय्या पर लेटा-लेटा बाबा निहालसिंह यह सब देख और सुनकर छटपटा उठता। उसका विश्वास था कि जनता की सामूहिक शक्ति असीम है, लेकिन यह शक्ति देश को कल्याण के बजाय इस तरह विनाश की राह पर ले जा सकती है। यह भविष्य और अतीत या दो परस्पर-विरोधी विचारधाराओं का संघर्ष ही नहीं, यह दो विभिन्न नैतिक भावनाओं की लड़ाई है। एक नैतिकता के सामने बड़ी-से-बड़ी भलाई और ऊँचे-से-ऊँचा व्यवहार है, दूसरे के सामने नीच-से-नीच बुराई और दुष्टता भी अनुचित नहीं। उसका दिल नहीं मानता था कि गांधीजी-जैसे धर्मात्मा को कोई मार देने की बात सोच सकता है या दिन दहाड़े भारत की राजधानी में ही उनकी हत्या की जा सकती है। कोई व्यक्ति इसकी चर्चा करता तो उसको ढाढस देने के लिए वह चेहरे पर मुस्कान ले आता। लेंकिन यह सन्तोष या निश्चिन्तता की मुस्कान न होती। यह मुस्कान उसके दिल में टीस-सी पैदा करती और वह हाथ मलकर रह जाता, यहाँ तक कि उससे मिलने वाले को लगता कि यह मुस्कान मानसिक पीड़ा को छिपाने के लिए नकाब है।

प्रजातन्त्रात्मक संस्कृति-मंडल, स्वतन्त्रता संरक्षण सभा आदि के दफ्तरों में कोहली ने भी यह चर्चा सुनी कि गांधीजी ने अनशन समाप्त कर दिया है। तो क्या अब वे अधिक देर नहीं रहेंगे और उसके बाद नेहरू सरकार के भी दिन गिने हुए हैं? नेहरू मंत्रीमंडल में फूट होने की

आम चर्चा थी। कोई कहता, पंडित नेहरू के हटाए जाने के वाद फलाँ मन्त्री भारत का प्रधान मन्त्री वनेगा। वह सवसे लोकप्रिय है, क्योंकि वह फ़ाइलों पर अपने फ़ैसले पैंसिल से लिखता है। अगर किसी फ़ैसले से उसके समर्थकों की संख्या में कमी होने लगती है तो वह उसको रवड़ से मिटाकर पैंसिल से दूसरा फ़ैसला लिख देता है। कोई कहता कि उससे अधिक फलाँ दक्षिणपन्थी कांग्रेसी नेता की प्रधानमन्त्री वनने की अधिक सम्भावना है, क्योंकि पश्चिमी राष्ट्रों के समीप होने के अतिरिक्त उसने सोमनाथ के मन्दिर का पुर्ननिर्माण कराकर हिन्दू कट्टरपंथियों में अपनी साख विठा ली है। कोई कहता कि उन दोनों से अधिक फलाँ नेता का प्रधानमन्त्री वनना अधिक सम्भव है, क्योंकि एक ज्योतिषी के अनुसार उसकी जन्मपत्री छत्रपति शिवाजी की जन्मपत्री से विलकुल मिलती है। कोहली को यह देखकर हैरानी होती कि गांधी-भक्त और प्रसिद्ध कांग्रेसी होने के लम्बे-चौड़े दावे करने वाले अव किस तरह हिन्दू सेवक संघ से सम्पर्क वनाने लगे हैं और प्रतिक्रियावादियों का पलड़ा भारी होता देखकर नेहरू सरकार के विरुद्ध साँठ-गाँठ कर रहे हैं। यह देखकर कोहली को और भी आश्चर्य होता कि अपने निजी स्वार्थ को राष्ट्र या जनता का हित समझना और अपने प्रत्येक कार्य को तर्कसंगत सिद्ध करना कितना आसान होता है।

सुशीला से भेंट की आशा लेकर गांधीजी की प्रार्थना-सभा में अक्सर जाने से कोहली के दिल में गांधीजी के लिए असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। सुशीला प्रार्थना-सभा में सक्रिय भाग लेने लगी थी। उसकी आकृति अव असाधारण तौर पर शान्त थी। वह पहले से बहुत दुवली-पतली हो गई थी। उसकी आँखें जलती हुई लगतीं। कोहली को देखकर वह आँखों को इस तरह पोंछती जैसे आँखें डबडबा रही हैं। वह उससे सदा दूर रहती। गांधीजी के प्रति सुशीला की श्रद्धा देखकर कोहली के दिल में आता, काश मेरी रीफ्यूजी वैलफ़ेयर एसोसिएशन के लाख न सही एक सौ सदस्य ही होते, तो मैं उनको गांधीजी की रक्षा में लगा देता!

प्रार्थना-सभा से वाहर आने पर जब वह शहर की विगड़ी हुई हवा देखता तो वह हिन्दू सेवक संघ से मेलजोल वढ़ाने लगता और उनको अपने एक लाख सदस्यों के पूरे सहयोग का आश्वासन देकर साख पैदा करने की कोशिश करता। वह ऐसे लोगों पर दिल-ही-दिल में हँसा करता था, जो सुवह एकाध घंटा रामनाम जपने या पूजा-पाठ करने के वाद अपने-अपने कारोवारों के झूठ-फरेव में खो जाते हैं। लेकिन उसे अव यह स्वाभाविक लगने लगा था कि राजनीतिक क्षेत्र में स्वार्थ-सिद्धि के लिए अपने निजी विचारों से उलट काम किया जाए।

सोलह

एकाएक चारों ओर खामोशी छा गई। डूबते हुए सूरज की किरणों के निष्ताप प्रकाश में शिशिर की चाँदनी रात-सी यह खामोशी थी। जगह-जगह लोग इस तरह जड़ हो गए थे मानो निर्जन स्थान में मिट्टी के पुतले एक-दूसरे के साथ खड़े कर दिये गए हैं। एकाएक हर चीज, तीसरे पहर का प्रकाश तक, बनावटी लग रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि यह सूरज की रोशनी नहीं, मैग्नेशियम के जलाने से हुआ क्षणिक प्रकाश है जो आँख झपकने में ही बुझ जाएगा और फिर चारों तरफ़ अन्धकार छा जाएगा।

गांधीजी की हत्या का समाचार शहर में फैला तो लोग हक्के-बक्के रह गए। लोग यह खबर सुन इस तरह खड़े-के-खड़े रह गए जैसे उन पर बिजली आ गिरी है। यह खामोशी कुछ लोगों में शोक और बेबसी के कारण थी, लेकिन कुछ लोगों का क्रोध भी इसमें छिपा हुआ था। एक मनुष्य की मृत्यु से इतना शोक हो सकता है कि दुनिया-भर का दिल बुझ जाए और हरेक की आँखें भीग जाएँ।

देखते-ही-देखते बहुत-से लोग दुकानें बन्द करके और घरों से निकल-कर बाज़ारों में आ खड़े हुए। कुछ मकानों पर पत्थर फेंकने या शीशे तोड़ने की-सी आवाजें आईं। कुछ लोग क्रोध के आवेश में लाठी या सोटा

उठाकर हिन्दू सेवक संघ के प्रमुख कार्यकर्ताओं के घरों व दुकानों की ओर लपके, लेकिन उनमें से बहुतों को गांधी टोपी पहने और उदास चेहरे लिये देखकर उनका गुस्सा ठंडा पड़ गया। हिन्दू सेवक संघ के सक्रिय कार्यकर्ता और नेता कहीं नज़र नहीं आ रहे थे। गांधीजी की हत्या का समाचार फैलते ही वे कहीं गायब हो गए थे। बाज़ारों में कहीं-कहीं वृक्षों या खम्भों के ऊपर भगवा झंडा बाँधकर कोई-कोई भागता हुआ नज़र आता था। जिस पेड़ पर से झंडा आसानी से उतारा न जा सका, लोग उससे इस तरह दूर रहते मानो उस पर कोई प्रेतनी वास करती है।

आचार्य रामचन्द्र को गांधीजी की हत्या की ख़बर दफ्तर में तुरन्त ही मिल गई थी। उन्होंने गांधीजी की दो बड़ी तस्वीरें मँगवाकर बरामदे के बाहर कनॉट प्लेस की ओर लटकवा दीं। तस्वीरों के ऊपर राष्ट्रीय झण्डे झुका दिये गए। उन्होंने अपने एक कांग्रेसी मित्र को दफ्तर में बुला भेजा और गांधी टोपियाँ मँगवाकर सारे कर्मचारियों को पहनवा दीं। आचार्यजी ने जल्दी-जल्दी एक सम्पादकीय लिखवाया। आरम्भ इस प्रकार था : "शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले, वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशाँ होगा।" अन्त में उन्होंने गांधीजी का वह कथन दिया जिसमें कहा गया था : "हम सभी को इतना अधिक वीर होना चाहिए कि शहीद की मौत मर सकें।" लेकिन यह उद्धरण देते हुए उन्होंने उसका वह भाग काट दिया जिसमें गाँधीजी ने कहा था : "परन्तु हममें शहीद होने की तृष्णा नहीं होनी चाहिए।" सम्पादकीय में गांधीजी की हत्या पर शोक तो प्रकट नहीं किया गया था, लेकिन जी खोलकर उनका गुणगान किया था। उनके शहीद होने से उनको और समस्त देश को जो मिला है, उसका भी वर्णन किया गया था। आचार्य जी ने मोटे खद्दर के कपड़े, जो वह स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व पहना करते थे, घर से मँगवाए और उनको पहनकर और सुशीला को साथ ले बिड़ला भवन चले गए और वहाँ राष्ट्रीय नेताओं के बीच जा बैठे।

बाज़ार में दुकानों को बन्द होते और लोगों को जगह-जगह एकत्रित होते देखकर कोहली नीचे उतरा। गांधीजी की हत्या की खबर सुनकर वहाँ के एक परिचित दुकानदार की गांधी टोपी उतारकर उसने पहन ली, किसी और के हाथ से राष्ट्रीय झण्डा लेकर स्वयं पकड़ लिया और जो दुकानें अभी खुली थीं उनको बन्द कराने लगा। आसपास के इलाकों में भी कांग्रेसी तथा अन्य लोग हड़ताल करा रहे थे। इन सबका एक बहुत बड़ा जलूस बन गया था। कोहली नेतृत्व कर रहा था।

अधिकतर लोग अपनी-अपनी दुकानों और घरों के आगे खड़े थे। सब व्यक्ति अनुभव कर रहे थे कि वे स्वयं गांधीजी के अज्ञात हत्यारे हैं। आत्मग्लानि उनके दिलों को कोंच रही थी। किसी को भी अपनी आत्मा शुद्ध और अपना अन्तःकरण निर्मल नहीं लग रहा था। उनमें से प्रत्येक यह अनुभव कर रहा था कि वह केवल गांधीजी की हत्या के लिए ही नहीं, पिछले कुछ महीनों की तमाम घटनाओं के लिए भी उत्तरदायी है।

कोई चुपचाप आँसू बहा रहा था और कोई रो-सुबक रहा था। बहुत-से लोग लम्बे-लम्बे डग भरते बिड़ला भवन की ओर जा रहे थे। तेज़-तेज़ कदमों से बिड़ला भवन को जाते शोक-संतप्त लोगों का सड़कों पर ताँता-सा लगता जा रहा था। वे सब इतने खामोश थे कि उनके कदमों की आवाज़ तक सुनाई दे रही थी। लेकिन चलने की यह आवाज़ सिपाहियों की परेड या १५ जनवरी के प्रदर्शन की तरह नहीं थी। इस पदचाप में गहरी उदासी, दबी-दबी आहें थीं। लोग व्यक्तिगत सीमाएँ तोड़ एक होकर इस दुख में शामिल थे।

ज्ञानी धर्मसिंह बाबा निहालसिंह के झोंपड़े में छिपने के लिए आया तो बाबा को गांधीजी की हत्या की खबर मिली। उसकी आँखें भीग गईं और उसके सामने अँधेरा-सा छा गया। वह झोंपड़ी के बाहर आ खड़ा हुआ। आँसुओं से भीगी दाढ़ी को मुट्ठी में पकड़े वह स्तब्ध खड़ा था। आकाश अबोध बच्चे की आत्मा की भाँति स्वच्छ था। कुछ समय

पहले वसन्त की फुहार से सब गर्द धुल चुकी थी। दरख्त, पौधों के पत्ते और कोंपलें हरी चमक लिये हुए थीं। बहुत-से लोग झोंपड़ों से बाहर आ खड़े हुए थे। सब शोकाकुल थे, बहुत-से आँसू बहा रहे थे। इनमें से अधिकांश ने १५ जनवरी के गांधी-विरोधी प्रदर्शन में भाग लिया था। अब इन सबको इस प्रकार शोकग्रस्त देखकर बाबा निहालसिंह सोचने लगा, क्या इन लोगों के दिल से साम्प्रदायिकता का मैल धुल गया है? क्या सचमुच हर ओर छा रही नफरत का गुबार बैठ गया है और वातावरण एकाएक स्वच्छ हो गया है ? क्या इन सब लोगों की आत्मा शुद्ध हो गई है ? क्या उस महापाप का आँसुओं से प्रायश्चित्त हो सकता है ? कुछ लोग निहालसिंह के पास आ गरदन झुकाकर मौन खड़े हो गए थे। निहालसिंह रह-रहकर सोच रहा था, क्या सचमुच इस व्यथा और आत्मग्लानि ने उन सबमें मनुष्यता को फिर जगा दिया है ? फ़ीरोज़चन्द भी निहालसिंह के पास आ खड़ा हुआ था। उसका चेहरा उतरा हुआ था और आँखें डबडबा रही थीं। वह बिलकुल मौन और स्तब्ध था।

इतने में मैदान के सामने के झोंपड़ों के पास दर्जन के लगभग पुलिस के आदमी दिखाई दिए। वे वहाँ खड़े लोगों से कुछ पूछताछ कर रहे थे। वहाँ खड़े एक व्यक्ति ने हाथ उठाकर उँगली से पाँच झोंपड़ों की ओर संकेत किया। उनमें एक बाबा निहालसिंह का झोंपड़ा भी था। पुलिसवाले सबसे पहले उधर ही चले आए और उनके पास आकर पूछने लगे कि दीवान फ़ीरोजचन्द कौन है ? सब खामोश रहे। दूसरी बार पूछे जाने पर फ़ीरोज़चन्द ने हामी भरी और अपने-आपको गिरफ्तारी के लिए पेश कर दिया।

बाबा निहालसिंह धीरे-धीरे चलता तीसहज़ारी के तिराहे के पास आ खड़ा हुआ। लोगों के झुण्ड-के-झुण्ड रामधुन गाते नई दिल्ली में गांधीजी के अन्तिम दर्शनों के लिए चले जा रहे थे। बहुत-से लोग दो-दो चार-चार की टोलियों में भी थे। एक कोने में घसियारिनें घास के ढेर लगाए बैठी थीं। उनके सामने घोड़ों के हस्पताल की दीवार पर कुछ लड़के

सिनेमा के इश्तहार चिपका रहे थे। स्टेशन जाते हुए टाँगे-मोटरों को छोड़कर सब लोग नई दिल्ली की तरफ़ ही जा रहे थे।

आठ-दस हज़ार लोगों के जलूस का नेतृत्व करते कोहली को नई दिल्ली की तरफ़ जाते देखकर बाबा निहालसिंह फिर सोचने लगा, क्या सचमुच लोगों के दिलों को सब मैल अकस्मात धुल गया है ? कोहली ने कोट-पतलून पहन रखा था, लेकिन उसके सिर पर गांधी टोपी थी जो थोड़ी-सी तंग थी। उसकी शक्ल-सूरत नकली लग रही थी। गोधूलि के मन्द प्रकाश में बाबा निहालसिंह को सब आकार बड़े-बड़े दीख रहे थे, हर चीज़ की रफ़्तार तेज़ लग रही थी। वह रह-रहकर यही सोच रहा था कि क्या इन लोगों के दिल बदल गए हैं और उनमें मनुष्यता सजग हो गई है, या यह केवल जीवन की तुच्छता और स्वार्थपरता के कुछ क्षणों के लिए ऊपर उठकर विस्तृत दृष्टिकोण से जीवन को देखने का प्रयास-मात्र है ?

क्या लोगों के दिलों में जो अकस्मात परिवर्तन हुआ दीख रहा है, उसका कारण गांधीजी की सत्यता, उनके विचारों की शक्ति या उनका महान् आत्मबल है ? बाबा निहालसिंह सोचने लगा। वह जानता था कि व्यक्ति के लिए सत्य उसके वर्गीय हितों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है और मनुष्य के विचारों की जड़ें उसकी अपनी श्रेणी की मनोवृत्ति में बहुत गहरी होती हैं।

परन्तु गांधीजी की सचाई निजी सचाई न रहकर एक व्यापक सचाई बन जाती है जो शक्तिहीन लोगों को बल देती रही है और जो प्रत्येक नर-नारी को सबके कल्याण का उपदेश देती है। इसी तरह गांधीजी के विचार भी अनेक बार वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में मानवीय समस्याओं का हल सुझा देते थे। लेकिन लोगों के अकस्मात हृदय-परिवर्तन के इन तर्कों से बाबा निहालसिंह की सन्तुष्टि न हुई। उसके दिल में आया कि जनता में भी अवश्य कोई ऐसा गुण है जो गंगा के पवित्र पानी की तरह आगे की ओर बहता है, पीछे नहीं मुड़ता।

कितनी ही तेज़ आँधी हो और कितना ही घोर अन्धकार दुनिया पर छा जाए, उसका मुकावला करने के लिए एक छोटी-सी ज्योति पर्याप्त है। क्योंकि मनुष्य प्रकाश के विना जिन्दा नहीं रह सकता, इसलिए वह इस रोशनी को वुझने नहीं देता। मानवत्व अक्षय हैं, जीवन अटल है, अमर है। लेकिन अत्यन्त अल्प आयु में भी एक मनुष्य अपने मानव-गुणों को इतना उजला वना सकता है कि वह जीवन की नित्यता में नक्षत्र की तरह चमक उठे।

वावा निहालसिंह की डवडवाई हुई आँखों के सामने एक क्षीण व्यक्ति नहीं, एक महान् शक्ति मूर्तिमान हो उठी, जिसने अपना सव-कुछ जन-कल्याण के लिए अर्पित कर दिया था। अपनी नित्य की अरदास में उसे अनेक वलिदानों का ध्यान आया। अंग-अंग का काटा जाना, जीते-जी दीवार में चुने जाना, उवलते हुए तेल के कड़ाहे में फेंका जाना, सीस को हत्थेली पर रखकर अकेले ही युद्ध में जूझ जाना। वह जन-कल्याण के लिए कोई वहुत वड़ी कुरवानी करने के लिए जीना चाहता था। गांधीजी के वारे में सोचते-सोचते वावा निहालसिंह के दिल में रह-रहकर यह खयाल आया कि भविष्य से प्यार करने के लिए निजी जीवन को कितना कठोर वनाना पड़ता है, अपने संकल्प को सुदृढ़ करना पड़ता है और अपने विचारों को जनहित के लिए किस तरह ढालना पड़ता है। यही गांधीजी की शक्ति थी जो हत्या के पश्चात् और भी प्रखर हो उठी है। शक्ति जो पंखड़ी-सी कोमल होने पर भी तेज़ थी। विचारों को पंखड़ी से भी अधिक कोमल होना चाहिए, साथ ही उनमें अति तीक्ष्ण धार भी होनी चाहिए, गांधीजी की साधुता से भी तेज़ धार, ताकि उसे कोई ज़रा-सीं हानि तक न पहुँचा सके।


राजकमल